

गुजरात राज्याना शिक्षण विभागांना पत्र क्रमांक  
भशअ/1116/1052-54/ए ता.28-11-2016थी भंजूर

# हिन्दी

( प्रथम भाषा )

कक्षा 12



## प्रतिज्ञापत्र

भारत मेरा देश है ।

सभी भारतवासी मेरे भाई-बहन हैं ।

मुझे अपने देश से प्यार है और इसकी समृद्धि तथा बहुविध  
परंपरा पर गर्व है ।

मैं हमेशा इसके योग्य बनने का प्रयत्न करता रहूँगा ।

मैं अपने माता-पिता, अध्यापकों और सभी बड़ों की इज्जत करूँगा-  
एवं हरएक से नम्रतापूर्वक व्यवहार करूँगा ।

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि देश और देशवासियों के प्रति एकनिष्ठ रहूँगा ।  
उनकी भलाई और समृद्धि में ही मेरा सुख निहित है ।

मूल्य: ₹ 62.00



गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल  
'विद्यायन' , सेक्टर 10-ए, गांधीनगर-382 010

© गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, गांधीनगर

इस पाठ्यपुस्तक के सभी अधिकार गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल के अधीन हैं।  
इस पाठ्यपुस्तक का कोई भी अंश किसी भी रूप में गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक  
मंडल के नियामक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता।

<p><b>विषय परामर्शन</b> डॉ. दयाशंकर त्रिपाठी</p> <p><b>लेखन-संपादन</b> डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता (कन्वीनर) श्री राजेशसिंह क्षत्रिय डॉ. कोकिलाबहन पारेख डॉ. नंदिता शुक्ला</p> <p><b>समीक्षा</b> डॉ. कान्तिलाल परमार डॉ. नयना डेलीवाला डॉ. गीतादेवी सिंह कुरील डॉ. गीताबहन जगड़</p> <p><b>संयोजन</b> डॉ. कमलेश एन. परमार (विषय-संयोजक : हिन्दी)</p> <p><b>निर्माण-संयोजन</b> श्री आशिष एच. बोरीसागर (नायब नियामक : शैक्षणिक)</p> <p><b>मुद्रण-आयोजन</b> श्री हरेश एस. लीम्बाचीया (नायब नियामक : उत्पादन)</p>	<p style="text-align: center;"><b>प्रस्तावना</b></p> <p>एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार किए गए नये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अनुसंधान में गुजरात माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड द्वारा नया पाठ्यक्रम तैयार किया गया है, जिसे गुजरात सरकार ने स्वीकृति दी है।</p> <p>नये राष्ट्रीय अभ्यासक्रम के परिपेक्ष में तैयार किए गए विभिन्न विषयों के नये अभ्यासक्रम के अनुसार तैयार की गई <b>कक्षा 12 हिन्दी (प्रथम भाषा)</b> की यह पाठ्यपुस्तक विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए मंडल हर्ष का अनुभव कर रहा है। नई पाठ्यपुस्तक के निर्माण प्रक्रिया में संपादकीय पेनल ने विशेष ख्याल रख कर हस्तप्रत तैयार की है। एन.सी.ई.आर.टी. एवं अन्य राज्यों के अभ्यासक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को देखते हुए गुजरात के नये पाठ्यपुस्तक को गुणवत्ताक्षी कैसे बनाया जाय, इस पर संपादकीय पेनल ने सराहनीय प्रयत्न किया है।</p> <p>इस पाठ्यपुस्तक को प्रकाशित करने से पहले इसी विषय के निष्णातों तथा इस स्तर पर अध्यापनरत अध्यापकों की ओर से सर्वांगीण समीक्षा की गई है। समीक्षा शिविर में मिले सुझावों को इस पाठ्यपुस्तक में शामिल किया गया है। पाठ्यपुस्तक की मंजूरी क्रमांक प्राप्त करने की प्रक्रिया के दौरान गुजरात माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शिक्षण बोर्ड के द्वारा प्राप्त हुए सुझावों के अनुसार इस पाठ्यपुस्तक में आवश्यक संशोधन-परिवर्धन करके प्रकाशित किया गया है।</p> <p>नये अभ्यासक्रम का एक उद्देश्य है, इस स्तर के छात्र व्यावहारिक भाषा का उपयोग करने के साथ-साथ अपनी भाषा अभिव्यक्ति को विशेष असरकारक बनाएँ। साहित्यिक स्वरूप एवं सर्जनात्मक भाषा के परिचय के साथ-साथ हिन्दी भाषा की खूबियों को समझकर अपने स्व-लेखन में प्रयोग करना सीखें, इसलिए भाषा-अभिव्यक्ति एवं लेखन के लिए छात्रों को पूर्ण अवकाश दिया गया है।</p> <p>इस पाठ्यपुस्तक को रुचिकर, उपयोगी एवं क्षतिरहित बनाने का पूरा प्रयास मंडल द्वारा किया गया है, फिर भी पुस्तक की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए शिक्षा में रुचि रखनेवालों से प्राप्त सुझावों का मंडल स्वागत करता है।</p> <p style="text-align: center;"><b>डॉ. एम. आई. जोषी</b>                      <b>डॉ. नीतिन पेशाणी</b> नियामक                                      कार्यवाहक प्रमुख दिनांक. : 17-01-2018                      गांधीनगर</p>
--	--

**प्रथम संस्करण : 2017, पुनः मुद्रण : 2018**

**प्रकाशक** : गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल, 'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर की ओर से डॉ. एम. आई. जोषी, नियामक  
**मुद्रक** :

## मूलभूत कर्तव्य

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह\* -

- ( क ) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;
- ( ख ) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;
- ( ग ) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;
- ( घ ) देश की रक्षा करे और आवाहन किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;
- ( ङ ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो; ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;
- ( च ) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;
- ( छ ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;
- ( ज ) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;
- ( झ ) सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;
- ( ञ ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;
- ( ट ) माता-पिता या संरक्षक, छः से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने बालक या प्रतिपाल्य को यथास्थिति शिक्षा का अवसर प्रदान करे।

---

\* भारत का संविधान : अनुच्छेद 51-क

---

## अनुक्रमणिका

### पद्य विभाग

1.	दोहे और पद	कबीर	1
2.	वनपथ पर	तुलसीदास	3
3.	दोहे	दयाराम	6
4.	कवित्त और सवैया	पद्माकर	8
5.	मुफलिसी	नजीर अकबराबादी	10
6.	श्रद्धा का उद्बोधन	जयशंकर प्रसाद	13
7.	जाग तुझको दूर जाना	महादेवी वर्मा	17
8.	उनको प्रणाम !	नागार्जुन	20
9.	सतपुड़ा के जंगल	भवानी प्रसाद मिश्र	23
10.	रोटी	केदारनाथ सिंह	28
11.	जाने कैसी हवा चली अब के अपने गाँव में	भगवानदास जैन	31
12.	पहाड़ पर लालटेन	मंगलेश डबराल	33
13.	बोलना	अरुण कमल	36
14.	आदमी को लीलती हैं खानें	मदन कश्यप	38
15.	फ़र्क	नीलेश रघुवंशी	42

### गद्य विभाग

1.	पूस की रात	(कहानी)		प्रेमचंद	44
2.	नाखून क्यों बढ़ते हैं ?	(निबंध)		पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी	50
3.	मातृभूमि का मान	(एकांकी)		हरिकृष्ण 'प्रेमी'	55
4.	मकदूम बख्श	(संस्मरण)		सेठ गोविन्द दास	61
5.	पत्नी	(कहानी)		जैनेन्द्र कुमार	64
6.	राजस्थान के एक गाँव की तीर्थयात्रा	(यात्रा-वर्णन)		भीष्म साहनी	69
7.	स्त्री-शिक्षा	(निबंध)		नर्मद	75
8.	महाशूद्र	(कहानी)		मोहनदास नैमिशराय	80
9.	इंटेलेक्चुअल्स पार्लर	(व्यंग्य)		भगवती प्रसाद द्विवेदी	86
10.	पर्यावरण और सनातन-दृष्टि	(पर्यावरण लेख)		छगन मोहता	90
11.	अग्निपथ	(कहानी)		मालती जोशी	94
12.	योग्यता और व्यवसाय का चुनाव	(निबंध)		माधव राव सप्रे	101
13.	कमलादेवी चट्टोपाध्याय	(जीवनी)		(संकलित)	105
14.	काला पहाड़	(उपन्यास-अंश)		भगवानदास मोरवाल	110
15.	मुर्दहिया	(आत्मकथा-अंश)		तुलसीराम	119
●	जनसंचार माध्यम : परिचय				126
●	हिन्दी साहित्य का इतिहास				140

### पूरक वाचन

1.	सुदामाचरित	(कविता)		नरोत्तमदास	168
2.	कर्मफल	(कहानी)		यशपाल	170
3.	कहाँ से आए छूत-अछूत	(कविता)		सूरजपाल चौहान	173
4.	कृष्ण विवर	(विज्ञान-लेख)		डॉ. जयंत नारलीकर	175



( जन्म : सन् 1398 ई ; निधन : सन् 1518 ई. )

भक्तिकाल की निर्गुण मार्गी संत-परंपरा के प्रवर्तक संत कवि कबीर का जीवनवृत्त प्रामाणिक रूप से प्राप्त नहीं है। अधिकांश विद्वान काशी के लहरतारा नामक स्थान को इनका जन्मस्थल मानते हैं। उनके जन्म और माता-पिता को लेकर बहुत विवाद है। परन्तु इस बात में कोई विवाद नहीं है कि कबीर जुलाहा थे, क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में स्वयं को कई बार जुलाहा कहा है। तत्कालीन भेदभावपूर्ण समाज-व्यवस्था के कारण कबीर विधिवत् शिक्षा नहीं पा सके किंतु बहुश्रुत होने के कारण उन्हें अथाह ज्ञान प्राप्त था। जनश्रुतियों के आधार पर स्वामी रामानंद को उनका मंत्रगुरु माना जाता है। प्रेम का ढाई अक्षर पढ़कर वे पंडित हो गए थे। उनकी आत्मा में सच्चाई और वाणी में विश्वास था। यही कारण है कि उनकी कविता सीधे हृदय को छूती है। कबीर के राम दशरथ-पुत्र राम न होकर निर्गुण-निराकार राम हैं।

कबीर ने एक ओर धार्मिक बाह्याडंबरों और सामाजिक रूढ़ियों पर तीखी चोट की है तो दूसरी ओर आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन के मार्मिक गीत गाये हैं। उनके हृदय में गहरा मानवीय प्रेम और करुणा है। उनकी भाषा साधारण बोलचाल की भाषा है जो 'सधुक्कड़ी' कहलाती है। उन्होंने साखी, सबद, रमैनी और उलटबासियाँ लिखी हैं। 'रमैनी' और 'सबद' में गेय पद हैं। उनकी कविता में बुनकर - व्यवसाय से जुड़े शब्दों का रचनात्मक प्रयोग हुआ है। कबीर-वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है।

संकलित पाँच दोहों में से **पहले** दोहे में मन को वश में करके ही सारी सिद्धियाँ पाई जा सकती हैं, इस तथ्य की अभिव्यक्ति है। **दूसरे** दोहे में माला फेरने के बदले मन को ईश्वर की ओर केन्द्रित करने को कहा गया है। **तीसरे** दोहे में कहा गया है कि यदि कर्म ऊँचे नहीं हैं तो ऊँचे कुल में जन्म लेने का कोई मतलब नहीं है। **चौथे** दोहे में संत की उस महानता का वर्णन है जो पेट में समाए उतना ही ग्रहण करता है, बाकी सब बाँट देता है। **पाँचवें** दोहे में कहा गया है कि बुरे कर्मों का सदा बुरा फल मिलता है।

संकलित पद में आत्मा में ही परमात्मा के होने का रहस्य उद्घाटित करते हुए ईश्वर रूपी प्रियतम को पाने के लिए अज्ञान के परदे को दूर करने को कहते हैं। धन-यौवन का अहंकार त्याग एकाग्र चित्त होकर ज्ञान का दीपक जलाने से ही परमात्मा के मिलन से उत्पन्न अनहद आनंद की अनुभूति हो सकती है।

### दोहे

तन कौं जोगी सब करैं, मन कौं बिरला कोइ।

सब सिधि सहजै पाइये, जे मन जोगी होइ ॥ 1 ॥

कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।

मन न फिरावै आपनौ, कहा फिरावै मोहि ॥ 2 ॥

ऊँचै कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।

सोवन कलस सुरे भर्या, साधू निंघा सोइ ॥ 3 ॥

संत न बांधै गांठड़ी, पेटि समाता लेइ।

साईं सूं सनमुख रहै, जहाँ मागै तहां देइ ॥ 4 ॥

करता था तौ क्यों रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ।

बोवै पेड़ बबूल का, अंब कहाँ तै खाइ ॥ 5 ॥

## पद

घूँघट का पट खोल रे, तोको पीव मिलेंगे ।  
घट-घट में वह साँई रमता, कटुक वचन मत बोल रे ॥  
धन जोबन का गरब न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे ।  
सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे ॥  
जोग जुगुत सों रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे ।  
कह कबीर आनंद भयो, बाजत अनहद ढोल रे ॥

## शब्दार्थ-टिप्पणी

बिरला कोई-कोई सिद्धि सिद्धि काठ काष्ठ कहि कहकर तोहि तुझे फिरावै फेरना, फेरने का काम करना करणी करनी, कर्म सोवन स्वर्ण सुरे मदिरा, शराब निंद्या निंदा गांठडी गठरी पेटि पेट सनमुख सामने अंब आम पीव प्रियतम पट पर्दा घट हृदय चोल शरीर रूपी वस्त्र पचरंग पाँच तत्वों वाला दियना दीपक आसन आशा जोग योग-साधना जुगुत युक्ति अनहद असीमित नाद (योग-साधना के समय आत्मा को जब परमात्मा की प्राप्ति होती है, तब मस्तिष्क में जो योग नाद होता है, उसे अनहद ढोल कहते हैं।)

## स्वाध्याय

### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) सारी सिद्धियाँ कैसे प्राप्त की जा सकती हैं ?
- (2) काठ की माला के माध्यम से कबीर क्या समझाते हैं ?
- (3) कर्म के विषय में कबीर क्या कहते हैं ?
- (4) संत गठरी क्यों नहीं बाँधता है ?
- (5) कटुक वचन क्यों नहीं बोलना चाहिए ?
- (6) अनमोल प्रियतम कहाँ और कैसे प्राप्त होता है ?

### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) 'घूँघट का पट खोल रे' पद का भावार्थ स्पष्ट करते हुए उसमें निहित आध्यात्मिक संदेश को समझाकर लिखिए।
- (2) 'बोवै पेड़ बबूल का, अंब कहाँ तै खाइ।' पंक्ति का विचार-विस्तार कीजिए।
- (3) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

'धन जोबन का गरब न कीजै, झूठा पचरंग चोल रे।

सुन्न महल में दियना बारिले, आसन सों मत डोल रे ॥'

## योग्यता-विस्तार

- 'लागा चुनरी में दाग' पद ढूँढ़कर पढ़िए।
- सन् 1950 में बनी 'जोगन' फिल्म में 'घूँघट का पट खोल रे' को गीत के रूप में फिल्माया गया है, इंटरनेट के माध्यम से उसे ढूँढ़कर देखिए।

●

तुलसीदास

( जन्म : सन् 1532 ई ; निधन : सन् 1623 ई. )

भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा की रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास का जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के राजापुर गाव में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी तथा पिता का नाम आत्माराम बताया जाता है। बचपन में ही माता-पिता का निधन हो गया था। अतः उन्हें भीषण दरिद्रता और दीनता से संघर्ष करना पड़ा। अपने गुरु बाबा **नरहरि दास** से उन्होंने संस्कृत काव्य एवं शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। कहा जाता है कि आरंभिक दिनों में तुलसी अपनी पत्नी रत्नावली के प्रति अत्यंत आसक्त थे किंतु बाद में पत्नी द्वारा ही प्रताड़ित होने पर संसार से विरक्त हो रामभक्ति की ओर उन्मुख हुए। 'रामचरित मानस' कवि की अनन्य भक्ति भावना और सृजनात्मकता का सर्वोच्च शिखर है।

तुलसी मानवतावादी होने के साथ-साथ समन्वयवादी भी थे। अपनी उदारमता चित्रवृत्ति के कारण उन्होंने सभी क्षेत्रों में समन्वय की सफल चेष्टा की। प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों, अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। सगुण के साथ-साथ निर्गुण के प्रति भी वे उदार थे। लोकमंगल की उदात्त भावना से अनुप्रणिता उनकी चेतना 'रावणत्व' पर 'रामत्व' की विजय का संदेश देती है। तुलसी का स्पर्श पाकर कविता सचमुच धन्य हो गई। 'रामचरित मानस' जैसे उत्तम महाकाव्य के अतिरिक्त 'कवितावली', 'गीतावली', 'दोहावली', 'कृष्णगीतावली', 'विनय पत्रिका' तथा 'बरवै रामायण' आदि उनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं।

संकलित छंद 'कवितावली' के अयोध्याकांड से लिए गए हैं, जिनमें राम के वन-गमन संबंधी प्रसंगों का वर्णन है। पहले छंद में कोमलांगी सीता की विडंबना का अनुभावों द्वारा चित्रण हुआ है। हठाग्रह कर वन को जाने वाली सीता कुछ कदम चलने पर ही थक जाती हैं, कुछ कह नहीं पातीं, राम सबकुछ समझ जाते हैं और प्रिया की व्याकुलता देख आँखों से आँसू बह निकलते हैं। मनोभावों का मनोहारी चित्र इसमें अंकित है। दूसरे छंद में वनमार्ग में ग्राम वधुएँ वनवास दिए जाने को लेकर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं। तीसरे में ग्राम वधुएँ राम की आकर्षक छवि से अभिभूत हो सीता से पूछती हैं कि साँवरे से दिखने वाले आपके क्या लगते हैं? चौथे छंद में सीता चतुर ग्राम वधुओं के प्रश्न का अंग-भंगिमा द्वारा उत्तर देकर स्त्री-सहज चातुर्य का परिचय देती हैं।

पुरतें निकसीं रघुबीर-बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।  
झलकीं भरि भालकनी जल की, पुटि सूख गए मधुराधर वै ॥  
फिरि बूझति हैं 'चलनो अब केतिक' पर्नकुटी करिहो कित द्वै।  
तिय की लखि आतुरता पिय की आँखियाँ अति चारु चलीं चल च्वै ॥ 1 ॥

रानी मैं जानी अजानी महा पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है।  
राज हु काज अकाज न जान्यो, कछो तिय तो जिन कान कियो है ॥  
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?  
आँखिन में, सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनवास दियो है ॥ 2 ॥

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहैं।  
तून सरासन बान धरे, 'तुलसी' बन मारग में सुठि सोहैं ॥  
सादर बारहिं बार सुभाव, चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।  
पूछति ग्रामबधू सिय सों "कहौ साँवरे से, सखि रावरे को हैं ?" ॥ 3 ॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकी जानी भली।  
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥  
तुलसी तेहि औसर मोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली।  
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै, बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥ 4 ॥

### शब्दार्थ-टिप्पणी

पुर तें नगर से (शृंगवेर पुर से) धरि धारण करके, रख करके धीर धैर्य दए रखना मग मार्ग डग कदम भरिभाल पूरे मस्तक पर जल की कनी पसीने की बूँदें वै दोनों पुठि होंठ केतिक कितनी (दूर) कित हवै कहाँ पर तिय पत्नी चारु सुंदर च्वै चलीं बहने लगिं (अश्रुपात) अजानी अज्ञानी, नासमझ पवि वज्र पाहन पाषाण, पत्थर काज अकाज भला-बुरा कान कियो है सही मान लिया है प्रीतम स्नेही जन जोग योग्य किमि कै कैसे (किस हृदय से) बिलोचन आँख तून तरकस सरासन धनुष सुठि सुंदर सुभाव स्वभावतः त्यों ओर बैन वचन सयानी चतुर लाहु लाभ अनुराग-तड़ाग प्रेम के सरोवर में उदै उदय बिगसीं खिलीं मंजुल सुंदर

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) वनपथ पर सीता को होनेवाली कठिनाइयों के बारे में लिखिए।
- (2) राम से सीता ने क्या प्रश्न किया ?
- (3) सीता की आतुरता देखकर राम की क्या प्रतिक्रिया होती है ?
- (4) 'धरि धीर दए' का आशय क्या है ?
- (5) रानी-राजा के विषय में ग्राम वधुएँ क्या कहती हैं ?
- (6) वनपथ पर राम किस तरह सुशोभित हो रहे हैं ?
- (7) सीता ग्रामवधुओं के प्रश्न का उत्तर संकेत में क्यों देती हैं ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) प्रथम सवैया में कवि ने राम-सीता के किस प्रसंग का वर्णन किया है ?
- (2) राम के वनवास के बारे में ग्रामवधुएँ क्या प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं ?
- (3) ग्रामवधुओं ने सीता से क्या प्रश्न किया ?
- (4) सीता ने ग्रामवधुओं के प्रश्न का उत्तर किस तरह दिया ?



- (5) 'वनपथ पर' प्रसंग से पाँच पंक्तियाँ ढूँढ़कर लिखिए, जिनमें राम के रूप सौंदर्य का वर्णन किया गया है ?
- (6) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :
- 'अनुराग-तड़ाग में भानु उदै, बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली।'

### योग्यता-विस्तार

'सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकी जानी भली।

तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥'

- उपर्युक्त पंक्तियों की तुलना 'रामचरित मानस' की निम्नलिखित पंक्तियों से कीजिए :  
बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौह करि बाँकी ॥  
खंजन मंजु तिरिछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयानी ॥

●

गुजराती कवि दयाराम का जन्म गुजरात के डभोई जिले के चांदोद नामक स्थान पर हुआ था, जो नर्मदा-किनारे एक तीर्थस्थल के रूप में प्रसिद्ध है। उनके पिता का नाम प्रभुराम नागर था। अल्पायु में ही अनाथ हो जाने के कारण प्रारंभिक जीवन संघर्षपूर्ण रहा। वे पुष्टि मार्गीय वैष्णव इच्छाराम भट्ट के शिष्य थे अतः वैष्णव भक्ति का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कई बार भारत-भ्रमण किया। इस दौरान ब्रज-प्रदेश के अष्टछाप कवियों की कृष्ण भक्ति-कविता ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। ब्रज में ही उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के तत्कालीन आचार्य वल्लभलालजी गोस्वामी से दीक्षा ग्रहण की तथा आजीवन पुष्टिमार्ग पर चलते रहे।

दयाराम भक्त कवि होने के साथ-साथ मानवीय प्रेम के भी गायक हैं। वे बहुभाषाविज्ञ एवं बहुश्रुत थे। दयाराम की अनेक प्रसिद्ध कृतियों में से 'रसिकवल्लभ', 'नीति भक्तिना पदो' तथा 'सतसैया' मुख्य हैं। दयाराम रचित 'सतसई' ब्रज भाषा की श्रेष्ठ रचना है, जिसमें बिहारी सतसई' की तरह श्रृंगार, भक्ति, नीति, दर्शन आदि अनेक विषयों का दोहा छंद में निरूपण किया गया है। दयाराम गुजरात के ब्रज-भाषा साहित्य के एक प्रमुख रचनाकार माने जा सकते हैं।

'दयाराम सतसई' में से संकलित दोहों में से पहले दोहे में प्रेम रूपी अमृत की प्राप्ति के लिए प्राणों से भी प्यारी प्रतिष्ठा को भी त्याग देने को कहा गया है। दूसरे दोहे में कहा गया है कि जब प्रेम का बाण मन को बेधता है तब लोकलाज, कुल, वेद-मर्यादा सब एक तरफ रह जाते हैं। तीसरे मुक्तक में प्रेम को अमृत, द्राक्ष और मिसरी से भी ज्यादा मीठा बताया गया है। चौथे छंद में प्रेमामृत के स्वाद की तुलना गूँगे के गुड़ से की गई है। पाँचवें दोहे में प्रेम को उभय पक्षी बताते हुए कवि कहता है कि जिस तरह एक हाथ से ताली नहीं बजती उसी तरह प्रेम का निर्वाह एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है। छठे छंद में कहा गया है कि तन-मन को तपाये बिना प्रेमरस का स्वाद चख पाना संभव नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे दीपक जले बिना स्नेह रूपी तेल का पान नहीं कर पाता।

सब तें प्यारे प्रान, पत प्यारी हैं प्रानतें।  
सहि ताहु की हान, चाखें प्रेम-पियुष जो ॥ 1 ॥

लोक लाज कुल बेद, छूटे सबे बिबेक बल।  
परे हृदे जब छेद, दुसह प्रेम के बानकों ॥ 2 ॥

ऐसो मीठो नहि पियुष, नहि मिसरी नहि दाख।  
तनक प्रेम माधुर्य पें, नोंछावर अस लाख ॥ 3 ॥

प्रेमामृत को स्वाद कस, को कबु कह्यों न जांइ।  
अनुभविकों हिय जान ही, मुक मिसरी की नांइ ॥ 4 ॥

प्रीत निभाई द्वें सकें, इकसु न निबहन हारि।  
देखी सुनि न कहुं बजी, एक हाथ सूं तारि ॥ 5 ॥

प्रेम नेम यह वह लहें, दहें मन्न निति देह।  
बरें बिना दीपहु न ज्यों, पावत पिवन सनेह ॥ 6 ॥

### शब्दार्थ-टिप्पणी

पत प्रतिष्ठा सहि सहने के लिए हांन हानि बेद वेद छूटे धरा रह जाता है हृदे हृदय बान बाण पियुष अमृत दाख द्राक्ष कस कैसा कबु कभी भी अनुभाविकों अनुभवी का मुक गूँगा द्वें दोनों इकसु एक के तारि ताली लहें प्राप्त करता है दहें जलाए मन्न मन देह तन, शरीर बरें जले दीपहु दीपक सनेह स्नेह (तेल)

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) प्रेम-पीयूष का आस्वाद कौन कर सकता है ?
- (2) प्रेम का बाण कलेजे में लगने पर क्या होता है ?
- (3) प्रेम के मिठास के संबंध में कवि ने क्या कहा है ?
- (4) 'मुक मिसरी की नांइ' उदाहरण द्वारा कवि क्या कहना चाहता है ?
- (5) प्रेम को उभयपक्षी क्यों बताया गया है ?
- (6) प्रेम के नियम की क्या विशेषता है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) दोहों के आधार पर दयाराम के प्रेम संबंधी विचार अपने शब्दों में लिखिए।
- (2) निम्नलिखित दोहे की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :  
प्रेम नेम यह वह लहें, दहें मन्न निति देह।  
बरें बिना दीपहु न ज्यों, पावत पिवन सनेह ॥

### योग्यता-विस्तार

- 'दयाराम सतसई' से प्रेम-संबंधी अन्य पाँच दोहे ढूँढ़कर लिखिए।
- दयाराम के संकलित दोहों से मिलते-जुलते भावोंवाले कबीर और बिहारी के कुछ दोहों का संकलन कीजिए।



पद्माकर

( जन्म : सन् 1753 ई ; निधन : सन् 1833 ई. )

रीतिकाल के अंतिम दौर के कवि पद्माकर का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले में हुआ था। ये मूलतः तैलंग ब्राह्मण थे, परंतु इनके पिता मोहनलाल भट्ट बाँदा के निवासी थे। साहित्यिक वातावरण में पालन-पोषण होने के कारण इन्होंने अल्पकाल में ही संस्कृत एवं हिन्दी का अच्छा अभ्यास कर लिया था। पद्माकर कई राजदरबारों में रहे और इनका वैभव-विलास किसी राजा से कम नहीं था। जीवन के अंतिम दिनों में विरक्त होकर कानपुर के निकट गंगा-तट पर रहने लगे और वहीं अंतिम साँस ली।

पद्माकर कवि के साथ-साथ आचार्य भी थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथों में 'राम रसायन', 'जगद्धिनोद', 'पद्माभरण', 'गंगालहरी', 'हितोपदेश', 'प्रबोध पचासा', 'जयसिंह बिरुदावली' मुख्य हैं। इनकी कविता में शृंगार एवं भक्ति दोनों का निरूपण हुआ है। ब्रज भाषा का माधुर्य, अनुप्रास की छटा, वर्णन में चित्रात्मकता इनकी कविता के प्रमुख गुण हैं। सवैया और कवित्त रचने में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

संकलित **कवित्त** में वसंत की अनन्य शोभा का चित्रण है। ब्रज के बागों में, वन और उद्यानों में, कुंजों और कछारों में अर्थात् हर दिशा में चारों ओर वसंत की सुंदरता व्याप्त है।

संकलित **सवैया** में फागुन में कृष्ण के साथ गोपी के होली खेलने का वर्णन है। कृष्ण को अबीर-गुलाल से रंगकर गोपी उन्हें अगले वर्ष फिर से होली खेलने आने का शरारत भरा निमंत्रण देती है। गेयता इस छंद की प्रमुख लाक्षणिकता है।

### कवित्त

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,  
 क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्त है।  
 कहै पद्माकर परागहू में पौनहूँ में,  
 पानन में पीक में पलाशन पगन्त है।  
 द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में,  
 देखो दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।  
 बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,  
 बनन में बागन में बगरो बसन्त है।

### सवैया

फाग के भीर अभीरन में गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी।  
 भाई करी मन की पद्माकर ऊपर नाइ अबीर की झोरी।  
 छीनि पितम्बर कम्मर तैं सु बिदा दर्ई मीड़ि कपोलनि रोरी।  
 नैन नचाइ कह्यो मुसक्याइ लला फिरि आइयो खेलन होरी

### शब्दार्थ-टिप्पणी

कूलन किनारा केलि क्रीडा, खेल कछारन नदी या समुद्र किनारे की भूमि पौनहूँ पवन दुनी दुनिया दीपत चमक, शोभा दिगन्त दिशा बीथिन मार्ग बगरो बिखरा हुआ भीर भीड़ अभीरन ग्वाले गहि पकड़कर मीड़ि मलकर कपोल गाल

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) कवित्त में किसके विविध रूपों की बात की गई है ?
- (2) 'बनन मैं बागन मैं बगरो बसन्त है' पंक्ति में कौन-सा अलंकार है ?
- (3) किसे कहाँ से पकड़कर गोपी भीतर ले गई ?
- (4) कृष्ण के साथ गोपी ने क्या किया ?
- (5) अंत में गोपी कृष्ण को फिर आने के लिए किस तरह निमंत्रण देती है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) कवित्त के आधार पर वसंत ऋतु की अनन्य शोभा का चित्रण कीजिए।
- (2) होली के प्रसंग का वर्णन अपने शब्दों में लिखिए।
- (3) निम्नलिखित पंक्तियों का ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

छीनि पितम्बर कम्मर तैं सु बिदा दई मीड़ि कपोलनि रोरी।

नैन नचाइ कह्यो मुसक्याइ लला फिर आइयो खेलन होरी ॥

### योग्यता-विस्तार

- कवित्त और सवैये के वाचन का एक पारंपरिक ढंग है। लय सहित इनके वाचन का अभ्यास करें।
- निराला की प्रस्तुत कविता पढ़िए और संकलित कवित्त-सवैये के संदर्भ में विचार कीजिए :

फूटे हैं आमों में बौर  
भौर वन-वन टूटे हैं।  
होली मची ठौर - ठौर,  
सभी बंधन छूटे हैं।

फागुन के रंग राग,  
बाग-वन फाग मचा है,  
भर गए मोती के झाग,  
जनों के मन लूटे हैं।

माथे अबीर से लाल,  
गाल सेंदुर के देखे,  
आँखें हुई हैं गुलाल,  
गेरू के ढेले कूटे हैं।



( जन्म : सन् 1735 ई ; निधन : सन् 1880 ई )

उर्दू शायर नज़ीर अकबराबादी का जन्म दिल्ली में हुआ था। उनका मूल नाम वली मुहम्मद था। पिता का नाम मुहम्मद फारूक था। उनकी माता आगरा के किलेदार नवाब सुल्तान ख़ाँ की बेटी थीं। नज़ीर के जन्म के बाद दिल्ली में लगातार मुसीबतें आती रहीं। सन् 1939 में नादिरशाह का आक्रमण हुआ। इसके बाद अहमदशाह अब्दाली ने तीन बार हमला किया। अतः बाईस-तेईस साल की उम्र में नज़ीर अपनी माता एवं नानी के साथ दिल्ली से अकबराबाद (आगरा) चले गए और मृत्युपर्यंत वहीं रहे। वे स्वभाव से संतोषी एवं मस्त-मन थे अतः नवाबों के बुलावे पर भी नहीं गए।

नज़ीर ने बहुत लिखा लेकिन सब कुछ सहेज कर नहीं रख पाए। उनकी कविता सही मायने में जीवन का दर्पण है। वे एक ऐसे उदार उर्दू शायर थे जिन्होंने एक ओर जन-संस्कृति को आत्मसात किया और दूसरी ओर बोलचाल के हिन्दी शब्दों को सहजता से स्वीकार किया। उन्होंने अलंकारिक चमत्कृति से दूर रहकर प्रत्यक्ष काव्य-कला के दर्शन कराए। उनके शिष्यों द्वारा सुरक्षित उनकी कुछ कृतियाँ मिलती हैं - 'एक कुल्लियात उर्दू का' जिसमें नज्मों और ग़ज़ल हैं, 'एक दीवान फारसी नज्मों का।' फारसी गद्य में रचित नौ रचनाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है। दिल्ली छोड़ने के बाद अकबराबाद में रहने के कारण वे अकबराबादी कहलाए।

प्रस्तुत कविता में 'मुफ़लिसी' अर्थात् गरीबी को जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप बताया गया है। मुफ़लिसी आदमी को कैसे-कैसे सताती है, तड़पाती-तरसाती है, इसका हृदय-स्पर्शी वर्णन कवि ने किया है। जीते जी आदमी को रोज-मर्रा के जीवन के लिए जरूरी चीजें तो नसीब नहीं ही होती हैं, मरने पर कफ़न और लकड़ी तक नहीं मिलती। रोटी के लिए संघर्ष करता हुआ आदमी, आदमी न रहकर जानवर बन जाता है। मुफ़लिसी आदमी को घर से बेघर कर देती है और लोग एक-एक कर मुँह मोड़ लेते हैं।

जब आदमी के हाल पे आती है मुफ़लिसी

किस-किस तरह से उसको सताती है मुफ़लिसी

प्यासा तमाम रोज़ बिठाती है मुफ़लिसी

भूखा तमाम रात सुलाती है मुफ़लिसी

यह दुख वो जाने जिस पे कि आती है मुफ़लिसी।

मुफ़लिस की कुछ नज़र नहीं रहती है आन पर

देता है अपनी जान वो एक-एक नान पर

हर आन टूट पड़ता है रोटी के ख़ान पर

जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं इक उस्ताख़ान पर

वैसा ही मुफ़लिसों को लड़ाती है मुफ़लिसी।

लाजिम है गर गमी में कोई शोरगुल मचाय  
मुफलिस बगैर गम के ही करता है हाय-हाय  
मर जाय गर कोई तो कहाँ से उसे उठाय  
इस मुफलिसी की खारियां क्या-क्या कहूँ मैं हाय

मुर्दे को बेकफन के गड़ाती है मुफलिसी।

बीवी की नथ न लड़के के हाथों कड़े रहे  
कपड़े मियां के बनिये के घर में पड़े रहे  
जब कड़ियां बिक गईं तो खंडहर में पड़े रहे  
जंजीर नै किवाड़ न पत्थर गड़े रहे

आखिर को ईट-ईट खुदाती है मुफलिसी।

बेटे का ब्याह हो तो न भाई न साथी है  
नै रोशनी न बाजे की आवाज आती है  
मां पीछे एक मैली चदर ओढ़े जाती है  
बेटा बना है दूल्हा तो बाबा बराती है

मुफलिस की यह बरात चढ़ाती है मुफलिसी।

दरवाजे पर ज़नाने बजाते हैं तालियां  
और घर में बैठी डोमनी देती हैं गालियां  
मालिन गले की हार हो दौड़ी ले डालियां  
सक्का खड़ा सुनाता है बातें रिजालियां

यह ख्वारी यह खराबी दिखाती है मुफलिसी।

कोई “शूम, बेहया” कोई बोला निखट्टू है  
बेटी ने जाना बाप तो मेरा निखट्टू है  
बेटे पुकारते हैं कि “बाबा निखट्टू है”  
बीवी ये दिल में कहती “है अच्छा निखट्टू है”

आखिर निखट्टू नाम धराती है मुफलिसी।

चूल्हा तवा न पानी के मटके में आबी है  
पीने को कुछ, न खाने को और न रकाबी है  
मुफलिस के साथ सब के तई बेहिजाबी है  
मुफलिस की जोरू सच है कि हां सबकी भाभी है

इज्जत सब उसके दिल की गंवाती है मुफलिसी।

मुफलिस किसी का लड़का जो ले प्यार से उठा  
बाप उसका देखे हाथ का और पांव का कड़ा  
कहता है कोई “जूती न लेवे कहीं चुरा”  
नटखट, उचक्का, चोर, दगाबाज, गठकटा

सौ-सौ तरह के ऐब लगाती है मुफलिसी।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

मुफलिसी गरीबी आन मर्यादा, लिहाज नान रोटी खान थल उस्तखान हड्डी ख्वारी बर्बादी नै न डोमनी डोम जाति की स्त्री सक्का भिश्ती रिजालियां बेहूदा आबी आब (पानी) ही बेहिजाबी खुलापन

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) आदमी को भूखा-प्यासा सोने के लिए कौन मजबूर कर देता है ?
- (2) मुफलिस 'आन' की परवाह किए बिना क्या करता है ?
- (3) गरीबी का असर मुर्दे पर किस रूप में दिखाई देता है ?
- (4) मुफलिसी में मिया-बीवी-बच्चे और घर का क्या हाल होता है ?
- (5) मुफलिस के घर की शादी दूसरों से किस तरह भिन्न होती है ?
- (6) मुफलिस किसी का लड़का प्यार से उठा ले तो लोग उसे किस नजर से देखते हैं ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) 'मुफलिसी' कविता का केन्द्रीयभाव अपने शब्दों में लिखिए।
- (2) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

'लाजिम है गर गमी में कोई शोरगुल मचाय  
मुफलिस बगैर गम के ही करता है हाय-हाय'

### योग्यता-विस्तार

- नजीर अकबराबादी की 'बंजरानामा' कविता ढूँढ़कर पढ़िए और कक्षा में सुनाइए।





छायावाद के चार आधार-स्तंभों में से एक-प्रसादजी का जन्म काशी के एक संपन्न सुँघनी साहू घराने में हुआ था। बाल्यकाल में ही माता-पिता का साया सिर से उठ जाने के कारण उनकी शिक्षा आठवीं कक्षा से आगे न बढ़ सकी। उन्होंने घर पर ही उर्दू, फारसी और संस्कृत का अध्ययन किया। उन्हें साहित्य के साथ-साथ इतिहास, दर्शन, वेद, पुराण एवं उपनिषदों का भी अच्छा ज्ञान था। प्रसादजी ने कविता के साथ-साथ नाटक, कहानी, निबंध और उपन्यास जैसी विधाओं में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इस दृष्टि से वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार माने जा सकते हैं।

‘कामायनी’ नामक महाकाव्य उनकी काव्य-यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ‘कामायनी’ एक श्रेष्ठ रूपक है जिसमें मनु और श्रद्धा के मिलन से मानव-सृष्टि के प्रवर्तन की कथा है। ‘कानन-कुसुम’, ‘लहर’, ‘झरना’, ‘आँसू’ उनकी अन्य मुख्य काव्य-कृतियाँ हैं। उन्होंने ‘कंकाल और तितली’ जैसे उपन्यास एवं ‘आकाश दीप’, ‘इंद्रजाल’, ‘प्रतिध्वनि’ जैसे कहानी-संग्रहों की रचना की। उन्होंने ‘चंद्रगुप्त’, ‘स्कंदगुप्त’ तथा ‘ध्रुवस्वामिनी’ जैसे ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर हिन्दी नाटक को समृद्ध किया। उनकी कविता में प्रेम, सौंदर्य, भावुकता का स्वर मुखर है जबकि अन्य विधाओं में यथार्थ के स्वर भी सुने जा सकते हैं। प्रसादजी की भाषा तत्सम्-प्रधान एवं समास-बहुल होती है।

प्रस्तुत पद्यांश ‘कामायनी’ के ‘श्रद्धा’ सर्ग से लिया गया है। श्रद्धा ‘कामायनी’ का प्रमुख चरित्र है जो प्रतीक है हृदय का, प्रेमका, सकारात्मक सोच और विश्वास का। वह जल-प्लावन से पीड़ित हताश मनु में नई आशा और आस्था का संचार करती है। वह परिवर्तन को प्रकृति एवं संसार का सहज क्रम बताते हुए रात्रि के बाद प्रभात, दुःख के बाद सुख के आगमन को सहज होने की बात करती है। वह प्रेम को विधाता का मंगल वरदान बताती हुई मनु के प्रति समर्पित हो नव-जीवन के आरंभ का संकेत देती है। श्रद्धा के साहचर्य से मनु के थके-हारे मन में एक नई आशा, आस्था और विश्वास का उदय-उन्मेष होता है।

“दुःख की पिछली रजनी बीच

विकसता सुख का नवल प्रभात;

एक परदा यह झीना नील

छिपाये है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,

जगत की ज्वालाओं का मूल;

ईश का वह रहस्य वरदान

कभी मत इसको जाओ भूल;

विषमता की पीड़ा से व्यस्त

हो रहा स्पंदित विश्व महान;

यही दुःख सुख विकास का सत्य

यही भूमी का मधुमय दान।

नित्य समरसता का अधिकार,  
उमड़ता कारण जलधि समान;  
व्यथा से नीली लहरों बीच  
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान।

लगे कहने मनु सहित विषाद :-  
“मधुर मारुत से ये उच्छ्वास  
अधिक उत्साह तरंग अबाध  
उठाते मानस में सविलास।

किंतु जीवन कितना निरुपाय !  
लिया है देख नहीं संदेह;  
निराशा है जिसका परिणाम,  
सफलता का वह कल्पित गोह।”

कहा आगंतुक ने सस्नेह :-  
अरे, तुम इतने हुए अधीर !  
हार बैठे जीवन का दाँव  
जीतते मर कर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन सत्य  
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;  
तरल अकांक्षा से है भरा  
सो रहा आशा का आह्लाद।

प्रकृति के यौवन का श्रंगार  
करेंगे कभी न बासी फूल;  
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र  
आह उत्सुक है उनकी धूल।

पुरातनता का यह निर्मोह  
सहन करती न प्रकृति पल एक;  
नित्य नूतनता का आनंद  
किए है परिवर्तन में टेक।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि  
डाल पद-चिह्न चली गंभीर;  
देव, गंधर्व, असुर की पंक्ति  
अनुसरण करती उसे अधीर।

“एक तुम, यह विस्तृत भू खंड”  
प्रकृति वैभव से भरा अमंद;  
कर्म का भोग, भोग का कर्म  
यही जड़ का चेतन आनंद।

अकेले तुम कैसे असहाय  
यजन कर सकते? तुच्छ विचार !  
तपस्वी ! आकर्षण से हीन  
कर सके नहीं आत्म विस्तार।

दब रहे हो अपने ही बोझ  
खोजते भी न कहीं अवलंब;  
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न  
उत्कृष्ट होऊँ मैं बिना बिलम्ब ?

समर्पण लो सेवा का सार  
सजल संसृति का यह पतवार,  
आज से यह जीवन उत्सर्ग  
इसी पद तल में विगत विकार।

दया, माया, ममता लो आज,  
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;  
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ  
तुम्हारे लिए खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य,  
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;  
विश्व भर सौरभ से भर जाय  
सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

रजनी रात स्पंदित हिलता हुआ, गतिशील भूमा पृथ्वी मधुमय अमृत मय समरसता समन्वय, मेल गेह घर अवसाद दुःख यजन विधिवत् संसृति जगत

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) 'दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात' का आशय बताइए।
- (2) श्रद्धा ने पृथ्वी का मधुमय दान किसे बताया है ?
- (3) समुद्र के दृष्टांत द्वारा श्रद्धा क्या कहती है ?
- (4) मनु जीवन को निरुपाय बताते हुए क्या कहते हैं ?
- (5) श्रद्धा मनु को प्रेरित करने के लिए क्या कहती है ?
- (6) प्रकृति अपने यौवन का शृंगार किससे करती है ?
- (7) श्रद्धा पुरातन का मोह त्याग करने के लिए क्यों कहती है ?
- (8) किसके विनाश को श्रद्धा ने परिवर्तन के प्रमाण रूप में बताया है ?
- (9) जड़ (प्रकृति) चेतन-आनंद क्या है ?
- (10) श्रद्धा स्वयं को कैसे उन्नत करना चाहती है ?
- (11) मनु को श्रद्धा अपने हृदय के खजाने से क्या देना चाहती है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) मनु दुःखी होकर क्या कहने लगे ?
- (2) श्रद्धा परिवर्तन का दर्शन समझाते हुए क्या कहती है ?
- (3) श्रद्धा स्वयं को सहचर के रूप में स्वीकार करने के लिए मनु से क्या कहती है ?
- (4) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :
  - (अ) बनो संसृति के मूल रहस्य,  
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;  
विश्व भर सौरभ से भर जाय  
सुमन के खेलो सुंदर खेल।
  - (ब) पुरातनता का यह निर्मोह  
सहन करती न प्रकृति पल एक;  
नित्य नूतनता का आनंद  
किए है परिवर्तन में टेक।

### योग्यता-विस्तार

- 'कामायानी' का श्रद्धा सर्ग पढ़िए।

●

महादेवी वर्मा

( जन्म : सन् 1907 ई ; निधन : सन् 1987 ई. )

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ था। उनकी शिक्षा प्रयाग में हुई और प्रयाग महिला विद्यापीठ में लम्बे समय तक प्रधानाचार्या के पद पर रहीं। उनकी कविता में छायावाद और रहस्यवाद दोनों घुल-मिल गए हैं। प्रकृति में अलौकिक चेतना का आरोपण इस बात का प्रमाण है। बौद्ध दर्शन के दुःखवाद से प्रभावित होने के कारण मधुमय वेदना और करुणा उनकी कविता का प्राण तत्व बन गया है। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा' आदि प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। 'यामा' के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उनकी अधिकांश कविताएँ गीतिमय हैं।

एक सफल कवयित्री होने के साथ-साथ वे एक अच्छी गद्यकार भी हैं। उनकी कविता में भावावेग की अभिव्यक्ति है तो गद्य में यथार्थ का स्वर मुखर है। अपने रेखाचित्रों में उन्होंने समाज के दीन-हीन, शोषित उपेक्षित वर्ग के प्रति गहरी संवेदनशीलता का परिचय दिया है। पशु-पक्षियों तक उनकी संवेदना का विस्तार देखा जा सकता है। अपने जीवन पथ पर साथ चले साथी सर्जकों एवं महानुभावों से जुड़ी अंतरंग स्मृतियों को उन्होंने अपने संस्मरणों में बड़ी सहृदयता से सँजोया है। 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र', 'पथ के साथी' तथा 'मेरा परिवार' उनकी श्रेष्ठ गद्य-रचनाएँ हैं। कविता की तुलना में उनकी गद्य-भाषा अधिक सरल और सहज है।

प्रस्तुत कविता का स्वर महादेवीजी की अन्य कविताओं से अलग है। यहाँ भावुकता के बदले यथार्थ की अभिव्यक्ति है। इस कविता में आलस्य और प्रमाद से ग्रस्त उनींदा पथिक को जागने और कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होने को कहा गया है। यदि हमारी संकल्प शक्ति दृढ़ है तो न तो संसार का कोई भी आकर्षण हमें बाँध सकता है, न तो प्रभंयकारी ताकतें हमारे मार्ग की बाधा बन सकती हैं और न ही मृत्यु का भय हमें भयभीत कर सकता है। कर्तव्य-पथ पर बढ़ते रहने की अटूट लगन हार को भी विजय में बदल सकती है। जिस प्रकार पतंगा दीपक पर अपने को बलि चढ़ाकर अमर हो जाता है, उसी तरह लक्ष्य - सिद्धि के लिए प्राण न्यौछावर कर देने वाला अमर हो जाता है। इस कविता में कवयित्री व्यक्ति-मन के स्पंदन के साथ-साथ विश्व-क्रंदन को सुनती हुई दिखाई देती हैं। ओजपूर्ण शब्द की लय इस कविता में सुनाई देती है।

चिर सजग आँखें उनींदा आज कैसा व्यस्त बाना !

जाग तुझको दूर जाना !

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले !

या प्रलय के आँसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले;

आज पी आलोक को डोले तिमिर की घोर छाया,

जाग या विद्युत-शिखाओं में निटुर तूफान बोले !

पर तुझे है नाश-पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना !

जाग तुझको दूर जाना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ?  
पन्थ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?  
विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,  
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस - गीले ?  
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !  
जाग तुझको दूर जाना !

वज्र का उर एक छोटे अश्रुकण में धो गलाया,  
दे किसे जीवन - सुधा दो घूँट मदिरा माँग लाया ?  
सो गई आँधी मलय की वात का उपधान ले क्या ?  
विश्व का अभिशाप क्या चिर नींद बनकर पास आया ?  
अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना ?  
जाग तुझको दूर जाना !

कह न टंडी साँस में अब भूल वह जलती कहानी,  
आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी;  
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,  
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !  
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !  
जाग तुझको दूर जाना !

### शब्दार्थ-टिप्पणी

**बाना** भेस, वेश-विन्यास **उनींदी** नींद से भरी, अलसाई हुई **नाश-पथ** जिस राह पर चलने का परिणाम स्वयं के लिए कष्टकारक हो। **विद्युत-शिखा** बिजली की रेखा **मधुप** भौरा, भ्रमर **कारा** बंधन **अमरता** अमरत्व **मानिनी** मान करने वाली, गर्वीली **मृदुल** कोमल.

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) किसे दूर जाने की स्मृति दिलाई जाती है ? इसकी आवश्यकता क्यों हुई है ?
- (2) कौन-सी अनहोनी घटनाएँ होने पर भी पथिक को रुकना नहीं है ?

- (3) पथिक के लिए कौन-कौन से प्रलोभन बंधन रूप हो सकते हैं ?
- (4) पथिक का लक्ष्य क्या है ? उसके संबंध में कवयित्री ने क्या-क्या उपमाएँ दी हैं ?

## 2. उत्तर लिखिए :

- (1) 'जाग तुझको दूर जाना' कविता में मानव को उसकी अमरता का स्मरण कराते हुए, संसार के क्षणिक सुख-दुःख में भी अपने अमरत्व के प्रति जाग्रत रहने के लिए कहा गया है, समझाइए।

- (2) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

'हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका,  
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी !  
है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना !  
जाग तुझको दूर जाना !'

### योग्यता-विस्तार

- महादेवी वर्मा की 'प्राण रहने दो अकेला' कविता ढूँढ़कर पढ़िए और 'जाग तुझको दूर जाना' कविता से तुलना कीजिए।



नागार्जुन

( जन्म : सन् 1911 ई. ; निधन : सन् 1998 ई. )

प्रगतिशील रचनाकर बाबा नागार्जुन का मूल नाम है वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री'। वे बिहार के दरभंगा जिले के तरौनी गाँव के निवासी थे किंतु उनका जन्म उनके ननिहाल शतलखा गाँव में हुआ था। उनकी स्कूली शिक्षा नहीं हुई किंतु उन्हें हिन्दी और संस्कृत के अलावा कई भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। वे किसान आंदोलन में सक्रिय रहे और जेल भी गए। उन्होंने तिब्बत, श्रीलंका और रूस की यात्राएँ कीं। हिन्दी के साथ-साथ मैथिली, बंगला और संस्कृत में भी कविताएँ लिखी हैं।

नागार्जुन की कविता का दायरा बहुत व्यापक है। प्रकृति और प्रेम से लेकर समाज और राजनीति तक उनका क्षेत्र फैला हुआ है। कथ्य एवं शिल्प में कई प्रयोग करने के बावजूद उनकी प्रतिबद्धता गाँव-शहर के उस अभावग्रस्त सामान्य जन के प्रति ही रही है जिसने जीवन-संघर्ष से कभी हार नहीं मानी। मार्क्सवाद और बौद्ध दर्शन दोनों का उन पर गहरा प्रभाव था। जनतंत्र और समाजवाद में उनकी गहरी आस्था थी। 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली', 'प्यासी पथरायी आँखें', 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', 'भष्मांकुर', हजार-हजार बाँहों वाली', 'पुरानी जूतियों का कोरस', 'इस गुब्बारे की छाया में' उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। 'रति नाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसर नाथ', 'वरुण के बेटे' और 'दुखमोचन' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनके मैथिली काव्य संग्रह 'पत्रहीन नग्न गाछ' को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

प्रस्तुत कविता में उन लोगों के प्रति आदर और श्रद्धा व्यक्त की गई है जो अपनी सारी शक्ति और सामर्थ्य के साथ बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए लड़ रहे थे, जूझ रहे थे। किंतु परिस्थिति वश, अदृष्ट ताकतों ने उन्हें सफलता तक नहीं पहुँचने दिया। जिन लोगों ने बड़े-बड़े बलिदान दिए लेकिन विज्ञापन से दूर रहे और दुनिया उनको भूल गई। ऐसे सब लोगों को कवि प्रणाम कर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता है। मनुष्य-मात्र की कर्मठता के प्रति कवि की गहरी प्रतिबद्धता इस कविता में व्यक्त होती है।

जो नहीं हो सके पूर्ण-काम  
मैं उनको करता हूँ प्रणाम।  
कुछ कुंठित औ' कुछ लक्ष्य-भ्रष्ट  
जिनके अभिमंत्रित तीर हुए;  
रण की समाप्ति के पहले ही  
जो वीर रिक्त तूणीर हुए!  
उनको प्रणाम !  
जो छोटी-सी नैया लेकर  
उतरे करने को उदधि-पार;  
मन की मन में ही रही, स्वयं  
हो गए उसी में निराकार!  
उनको प्रणाम !



जो उच्च शिखर की ओर बढ़े  
रह-रह नव-नव उत्साह भरे;  
पर कुछ ने ले ली हिम-समाधि  
कुछ असफल ही नीचे उतरे!

उनको प्रणाम !

एकाकी और अंकिचन हो  
जो भू-परिक्रमा को निकले;  
हो गए पंगु, प्रति-पद इतने  
इतने अदृष्ट के दाव चले!

उनको प्रणाम !

कृत-कृत्य नहीं जो हो पाए;  
प्रत्युत फाँसी पर गए झूल  
कुछ ही दिन बीते हैं, फिर भी  
यह दुनिया जिनको गई भूल!

उनको प्रणाम !

थी उग्र साधना, पर जिनका  
जीवन-नाटक दुःखांत हुआ;  
या जन्म-काल में सिंह लग्न  
पर कुसमय ही देहांत हुआ!

उनको प्रणाम !

दृढ़ व्रत औ' दुर्दम साहस के  
जो उदाहरण थे मूर्ति-मंत;  
पर निरवधि बंदी जीवन ने  
जिनकी धुन का कर दिया अंत!

उनको प्रणाम !

जिनकी सेवाएँ अतुलनीय  
पर विज्ञापन से रहे दूर;  
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके  
कर दिए मनोरथ चूर-चूर!

उनको प्रणाम !

### शब्दार्थ-टिप्पणी

कुंठित कुंद, भोथरा लक्ष्य-भ्रष्ट निशाना चूक गए अभिमंत्रित मंत्रसिद्ध तूणीर तरकस उदधि समुद्र अकिंचन दरिद्र  
पंगु लँगड़ा अदृष्ट भाग्य प्रत्युत बल्कि दुर्दम जिसका दमन करना या दबाना कठिन हो मूर्ति-मंत साक्षात् निरवधि अनंत

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) 'पूर्ण-काम' शब्द से कवि का क्या आशय है ?
- (2) छोटी-सी नाव लेकर समुद्र पार करना किसका सूचक है ?
- (3) कवि किन असफल लोगों को प्रणाम कर रहा है ?
- (4) दुनिया किसको भूल चुकी है ?
- (5) जो सफल नहीं हो पाए उनका क्या हुआ ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) कविता का केन्द्रीय भाव अपने शब्दों में लिखिए।
- (2) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

जिनकी सेवाएँ अतुलनीय  
पर विज्ञापन से दूर रहे  
प्रतिकूल परिस्थितियों ने जिनके  
कर दिए मनोरथ चूर-चूर !  
उनको प्रणाम !

### योग्यता-विस्तार

- एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा नागार्जुन पर बनाई गई फिल्म देखिए।



भवानी प्रसाद मिश्र

( जन्म : सन् 1914 ई. ; निधन : सन् 1985 ई. )

नई कविता के सफल गीतिकार भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के टिगरिया गाँव में हुआ था। उन्होंने संस्कृत उर्दू, मराठी, बंगला और फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। 'दूसरा सप्तक' में उनकी कविताएँ संकलित हुईं। अध्यापन, संपादन और आकाशवाणी उनके कार्यक्षेत्र रहे। 'संपूर्ण गाँधी साहित्य' के संपादक मंडल के सदस्य भी रहे।

मिश्रजी की रचनाओं में वैचारिक प्रबुद्धता और संवेदना का अद्भुत सामंजस्य देखा जा सकता है। सादगी और ताजगी दोनों उनकी कविता में घुलमिल गए हैं। एक ओर प्रकृति के सुंदर गीतिमय चित्र को दूसरी ओर जीवन मूल्यों के विघटन की पीड़ा उनकी कविता में देखने को मिलती है। 'गीत फरोश', 'अनाम तुम आते हो', 'बुनी हुई रस्सी', 'खुशबू के शिलालेख', 'चकित है दुःख', 'गाँधी पंचशती', 'त्रिकाल संध्या' तथा 'फसलें और फूल' आदि उनके चर्चित काव्य संग्रह हैं। 'बुनी हुई रस्सी' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। उन्हें गालिब पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

'सतपुड़ा के जंगल' मिश्रजी की बड़ी प्रसिद्ध कविता है जिसमें सतपुड़ा के घने जंगलों की प्रकृति और संस्कृति को अपनी समग्रता और विविधता के साथ चित्रांकित किया गया है। सतपुड़ा के जंगलों की अनन्य सुंदरता, समग्र प्राणी जगत की गतिविधियाँ और वहाँ के गोंड आदिवासी लोगों की लोक संस्कृति के रंगों का नाद एवं लय-सौंदर्य के साथ खूबसूरत चित्रण किया गया है।

सतपुड़ा के घने जंगल

नींद में डूबे हुए-से,

ऊँघते अनमने जंगल।

झाड़ ऊँचे और नीचे

चुप खड़े हैं आँख मीचे,

घास चुप है, काश चुप है

मूक शाल, पलाश चुप हैं;

बन सके तो धँसो इनमें,

धँस न पाती हवा जिनमें,

सतपुड़ा के घने जंगल

नींद में डूबे हुए-से

ऊँघते, अनमने जंगल!

सड़े पत्ते, गले पत्ते,  
हरे पत्ते, जले पत्ते,  
वन्य पथ को ढँक रहे-से,  
पंक-दल में पले पत्ते,  
चलो इन पर चल सको तो,  
दलो इनको दल सको तो,  
ये घिनौने-घने जंगल,  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते, अनमने जंगल!

अटपटी-उलझी लताएँ,  
डालियों को खींच खाएँ  
पैरों को पकड़ें अचानक,  
प्राण को कस लें कँपाएँ  
साँप-सी काली लताएँ  
बला की पाली लताएँ  
लताओं के बने जंगल,  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते, अनमने जंगल!

मकड़ियों के जाल मुँह पर,  
और सिर के बाल मुँह पर,  
मच्छरों के दंश वाले,  
दाग काले-लाल मुँह पर,  
वात-झंझा वहन करते,  
चलो इतना सहन करते,  
कष्ट से ये सने जंगल,  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते, अनमने जंगल!

अजगरों से भरे जंगल  
अगम, गति से परे जंगल,  
सात-सात पहाड़ वाले,  
शेर वाले बाघ वाले,  
गरज और दहाड़ वाले,  
कंप से कनकने जंगल,  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते, अनमने जंगल!

इन वनों के खूब भीतर,  
चार मुर्गे, चार तीतर,  
पाल कर निश्चिंत बैठे,  
विजनवन के बीच बैठे  
झोपड़ी पर फूस डाले,  
गोंड तगड़े और काले,  
जब कि होली पास आती,  
सरसराती घास गाती,  
और महुए से लपकती,  
मत्त करती बास आती,  
गूँज उठते ढोल इनके,  
गीत इनके, बोल इनके।

सतपुड़ा के घने जंगल  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते अनमने जंगल,  
जागते अँगड़ाइयों में  
खोह-खड्डों खाइयों में  
घास पागल, काश पागल,  
शाल और पलाश पागल,  
लता पागल, वात पागल,  
डाल पागल, पात पागल,  
मत्त मुर्गे और तीतर,  
इन वनों के खूब भीतर।

क्षितिज तक फैला हुआ-सा,  
मृत्यु तक मैला हुआ-सा,  
क्षुब्ध, काली लहर वाला,  
मथित, उत्थित जहर वाला,  
मेरु वाला, शेष वाला,  
शंभु और सुरेश वाला,  
एक सागर जानते हो ?  
उसे कैसा मानते हो ?  
ठीक वैसे घने जंगल  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते अनमने जंगल ।

धँसो इनमें डर नहीं है,  
मौत का यह घर नहीं है,  
उतरकर बहते अनेकों,  
कल-कथा कहते अनेकों,  
नदी-निर्झर और नाले,  
इन वनों ने गोद पाले,  
लाख पंछी सौ हिरन-दल,  
चाँद के कितने किरण दल,  
झूमते बन-फूल, फलियाँ,  
खिल रहीं अज्ञात कलियाँ,  
हरित दूर्वा, रक्त किसलय,  
पूत, पावन, पूर्ण रसमय,  
सतपुड़ा के घने जंगल,  
लताओं के बने जंगल ।

#### शब्दार्थ-टिप्पणी

पंक कीचड़ बला पृथ्वी वात वायु झंझा तेज आँधी मत्त मदमस्त बास महक खोह गुफा मथित मथा हुआ उत्थित उन्नत  
मेरु एक पर्वत दूर्वा एक घास किसलय नया निकला हुआ कोमल पत्ता पावन पवित्र

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) 'ये घिनौने-घने जंगल' ऐसा कवि ने क्यों कहा है ?
- (2) जंगल में फैली लताएँ किन-किन रूपों में हैं ?
- (3) गोंड आदिवासी कहाँ और किस तरह जी रहे हैं ?
- (4) वन की गोद में क्या-क्या पल रहे हैं ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) सतपुड़ा के घने जंगल का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
- (2) भाव स्पष्ट कीजिए :

'धँसो इनमें डर नहीं है,  
मौत का यह घर नहीं है  
उतर कर बहते अनेकों,  
कल-कथा कहते अनेकों,  
नदी-निर्झर और नाले  
इन वनों ने गोद पाले'

### योग्यता-विस्तार

- भवानी प्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' कविता ढूँढ़कर पढ़िए और कक्षा में सुनाइए।
- 'वन-संपदा' विषय पर निबंध लिखिए।



केदारनाथ सिंह

( जन्म : सन् 1934 ई. )

नई कविता की दूसरी पीढ़ी के सशक्त कवि केदारजी का जन्म उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के चकिया गाँव में हुआ था। उनकी कविताओं को प्रकाशन का पहला अवसर 'तीसरा सप्तक' में मिला। जल्द ही उन्होंने अपने समकालीनों के बीच अपना एक अलग काव्य-मुहावरा बना लिया। उनकी कविता में गाँव और शहर, लोक संस्कृति और शिष्ट संस्कृति अपने संपूर्ण वैविध्य के साथ चित्रित हैं। अपनी धरती और अपना परिवेश ही उन्हें सृजनात्मक ऊर्जा प्रदान करता है।

कविता के साथ-साथ संगीत उन्हें बेहद प्रिय है। अपनी धरती के राग-रंग उनकी कविता में बिखरे पड़े हैं। 'अभी बिलकुल अभी', 'जमीन पक रही है', 'यहाँ से देखो', 'अकाल में सारस', 'मेरे समय के शब्द' आदि उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं। 'अकाल में सारस' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। इसके अतिरिक्त कुमारन आशान कविता पुरस्कार, ओडिशा का जीवन-भारती सम्मान, म.प्र. का मैथिली शरण गुप्त स्मृति-सम्मान तथा दिनकर स्मृति पुरस्कार उन्हें प्राप्त हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र में लम्बे समय तक उन्होंने अध्यापन कार्य किया।

'रोटी' कविता आग पर पकती हुई रोटी की गजब की ताकत का एक अद्भुत आलेखन है। आग पर पकती हुई वह समूची आग को सुगंध में बदल देती है। वह मनुष्य मात्र में वैचारिक सोच और शक्ति का संचार करती है। वह हर बार ज्यादा स्वादिष्ट और खूबसूरत लगती है क्योंकि उसे खाना शुरू करते ही मनुष्य में नित नवीन संघर्ष की ऊर्जा उत्पन्न होने लगती है। कवि के विचार से वह भूख के बारे में आग का बयान है जो दीवारों पर लिखा जा रहा है और आप देखेंगे कि दीवारें भी धीरे-धीरे स्वाद में बदल रही हैं।

उसके बारे में कविता करना  
हिमाकृत की बात होगी  
और वह मैं नहीं करूँगा  
मैं सिर्फ आपको आमन्त्रित करूँगा  
कि आप आयेँ और मेरे साथ सीधे  
उस आग तक चलें  
उस चूल्हे तक—जहाँ वह पक रही है  
एक अद्भुत ताप और गरिमा के साथ  
समूची आग को गन्ध में बदलती हुई  
दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज  
वह पक रही है  
और पकना  
लौटना नहीं है जड़ों की ओर



वह आगे बढ़ रही है  
धीरे-धीरे  
झपट्टा मारने को तैयार  
वह आगे बढ़ रही है  
उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद  
और विचारों तक  
मुझे विश्वास है  
आप उसका सामना कर रहे हैं  
मैंने उसका शिकार किया है  
मुझे हर बार ऐसा ही लगता है  
जब मैं उसे आग से निकलते हुए देखता हूँ  
मेरे हाथ खोजने लगते हैं  
अपने तीर और धनुष  
मेरे हाथ मुझी को खोजने लगते हैं  
जब मैं उसे खाना शुरू करता हूँ  
मैंने जब भी उसे तोड़ा है  
मुझे हर बार वह पहले से ज़्यादा स्वादिष्ट लगी है  
पहले से ज्यादा गोल  
और खूबसूरत  
पहले से ज्यादा सुर्ख और पकी हुई

आप विश्वास करें  
मैं कविता नहीं कर रहा  
सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ  
वह पक रही है  
और आप देखेंगे — यह भूख के बारे में  
आग का बयान है  
जो दीवारों पर लिखा जा रहा है  
आप देखेंगे  
दीवारों धीरे-धीरे  
स्वाद में बदल रही हैं।

शब्दार्थ-टिप्पणी

हिमाकृत बेवकूफी, मूर्खता, अहमक होने की अवस्था सुर्ख लाल

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

- (1) कवि कहाँ तक चलने को कहता है ?
- (2) चूल्हे में क्या पक रहा है ? कैसे ?
- (3) आग कैसे आगे बढ़ रही है ?
- (4) कवि को ऐसा क्यों लगता है कि मैंने उसका शिकार किया है ?

2. उत्तर लिखिए :

- (1) रोटी को दुनिया की सबसे आश्चर्यजनक चीज क्यों कहा गया है ?
- (2) 'उसकी गरमाहट पहुँच रही है आदमी की नींद और विचारों तक' - समझाइए।
- (3) लोग भूख का सामना कैसे कर रहे हैं ?
- (4) 'रोटी' कविता आग पर पकती हुई रोटी की गजब की ताकत का अद्भुत आलेखन है, समझाइए।
- (5) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

मेरे हाथ खोजने लगते हैं

अपने तीर और धनुष

मेरे हाथ मुझी को खोजने लगते हैं

जब मैं उसे खाना शुरू करता हूँ।

योग्यता-विस्तार

- 'अकाल और उसके बाद' कविता पढ़िए।
- 'मानवीनी भवाई' (गुजराती) फिल्म देखिए।



भगवानदास जैन

( जन्म : सन् 1938 ई. )

गुजरात के हिन्दी रचनाकार भगवानदास जैन का जन्म अहमदाबाद में हुआ था। उनके पूर्वज मध्यप्रदेश के सागर के निवासी थे। उन्होंने गुजरात विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय के साथ एम. ए. किया और कुछ ही समय के बाद अहमदाबाद की सरदार वल्लभभाई आर्ट्स कॉलेज में हिन्दी के अध्यापक के रूप में सेवारत हो गए। निवृत्त भी वहीं से हुए। कविता से उनका जुड़ाव शुरू से ही रहा। गजल उनकी सबसे प्रिय विषय रही। गजल - लिखने के साथ-साथ गजल-गायिकी भी उनका शौक रहा है।

अब तक उनके सात संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'रोशनी की तलाश', 'आस्था के स्वर' कविता संग्रह हैं। 'जिंदा है आइना', 'कठघरे में हूँ', 'देख नज़ारे नई सदी के', 'जिंदगी के बावजूद' तथा 'नई परवाज' उनके गजल-संग्रह हैं। उनके दो गजल संग्रह हिन्दी साहित्य अकादमी, गुजरात द्वारा पुरस्कृत हैं। उनकी अनेक रचनाएँ भारत की कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। उन्होंने कई कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी किया है। उनकी गजलों युग बोध से अनुप्राणित हैं। व्यवस्था के प्रति आक्रोश और पीड़ितों के प्रति संवेदनशीलता उनकी गजलों की प्रमुख पहचान है। उर्दू के निकट होते हुए भी गजलों में हिन्दी शब्दों को सहजता से सँजोया गया है।

प्रस्तुत गजल में अकाल की मार से पीड़ित गाँव की बेहाली का बेबाक वर्णन हुआ है। चारों ओर मँहगाई, भुखमरी, उदासी और सन्नाटा छाया हुआ है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सब बदहाल हैं। न जाने कैसी हवा चली है कि यहाँ के परिवेश में ही नहीं, दिलों में भी जहर घुल गया है। कवि के विचार से शायद यह सब कुछ शहरी संस्कृति के प्रभाव और दबाव से हो रहा है। कोई अपना दुखड़ा भी किसके सामने रोये, दिल पत्थर और चेहरे नकली हो गए हैं।

जाने कैसी हवा चली अब के अपने गाँव में।  
बगिया दुखी उदास कली अब के अपने गाँव में।

हार चुके तकते-तकते हम तो निष्ठुर आसमाँ,  
पर किस्मत फूली न फली अब के अपने गाँव में।

आए शहर के देवता स्वाँग रचाए मेघ का,  
हर बस्ती लाचार जली अब के अपने गाँव में।

सपने चकनाचूर हुए फैले हैं यूँ हादसे,  
सन्नाटा है गली-गली अब के अपने गाँव में।

होली के वे रंग गए कहाँ दिवाली के दिये,  
कहीं न ताशे या डफली अब के अपने गाँव में।

दाने और खिलौने भी महँगे हुए बजार में,  
सिसकें भूखे लला-लली अब के अपने गाँव में।

बचपन लकवा पीड़ित है भ्रान्त जवानी हो गई,  
हाँफ रही बूढ़ी पसली अब के अपने गाँव में।

पानी और हवा में क्या घुला दिलों में विष यहाँ,  
तड़प रहीं मछली-तितली अब के अपने गाँव में।

दुखड़ा अपना रोएँ हम बोलो किसके सामने,  
दिल पत्थर चेहरे नकली अब के अपने गाँव में।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

स्वांग वेश सन्नाटा नीरवता, निःशब्दता

मुहावरे

किस्मत न फूलना नसीब न होना पत्थर दिल निर्दय

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) अपने गाँव में कौन-कौन दुःखी हैं? क्यों?
- (2) लोग क्यों हार चुके हैं?
- (3) आसमाँ कैसा हो गया है?
- (4) शहर से आया देवता किसका स्वाँग रचा के आया है?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) कवि के गाँव में सन्नाटा क्यों है?
- (2) गजल का भाव स्पष्ट कीजिए।
- (3) ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :  
बचपन लकवा पीड़ित है भ्रान्त जवानी हो गई,  
हाँफ रही बूढ़ी पसली अबके अपने गाँव में।

### योग्यता-विस्तार

- भगवानदास जैन की अन्य गजलें ढूँढ़कर पढ़िए।

●

मंगलेश डबराल

( जन्म : सन् 1948 ई. )

आठवें दशक के महत्वपूर्ण कवि मंगलेश डबराल का जन्म उत्तराखण्ड के टिहरी जिले के काफलपानी गाँव में हुआ था। वे लम्बे समय तक 'हिन्दी पेट्रियट', 'प्रतिपक्ष', 'पूर्वग्रह', 'जनसत्ता' और 'सहारा समय' जैसे पत्र-पत्रिकाओं में काम करते रहे। नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से भी जुड़े। उन्होंने अनेक विदेशी कविताओं और उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। अमेरिका, बल्गारिया, मोरीशस, रूस तथा जर्मनी में काव्य-पाठ किए। देश-विदेश की अनेक भाषाओं में उनकी कविताओं के अनुवाद हुए हैं।

मंगलेश डबराल की कविता में आम आदमी के जीवन-संघर्ष की सहज अभिव्यक्ति है, बिना किसी वाद-प्रतिवाद के। कवि की प्रतिबद्धता उस साधारण जन के प्रति है जो जीवन की छोटी-छोटी जरूरतों के लिए चौतरफा लड़ाई लड़ रहा है। उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं - 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'आवाज भी एक जगह है', 'मुझे दिखा एक मनुष्य'। उनके तीन गद्य संग्रह हैं - 'एक बार आयोवा', 'लेखक की रोटी' और 'कवि का अकेलापन'। कवि को शमशेर सम्मान, पहल सम्मान और साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

प्रस्तुत कविता में पहाड़ के इर्द-गिर्द रहने वाले अभावों से पीड़ित लोगों की बेबसी का बेबाक चित्रण है। इन लोगों में धीरे-धीरे उभर रही विद्रोही चेतना की ओर कविता संकेत करती है। दूर पहाड़ पर जल रही लालटेन धीरे-धीरे एक आग में बदल जाती है, जिसके प्रकाश में अभाव और अज्ञान में डूबे लोगों को अपनी जिन्दगी की सच्ची तसवीर दिखाई देती है। गिरवी रखे खेत, रोती-बिलखती स्त्रियों के उतरते गहने, भूख, बाढ़ और महामारी से तड़पते-मरते लोग उन्हें उस प्रकाश में साफ-साफ दिखाई देते हैं। क्रमशः भूख एक सशक्त पंजे में बदलने लगती है, इच्छाएँ पत्थरों पर अपने दाँत पौने करने लगती हैं। अर्थात् अमानवीय ताकतों के विरुद्ध मानवीय विद्रोह उभरने लगता है। कवि ने अन्याय-अत्याचार के प्रतिकार के लिए विद्रोह को अनिवार्य बताते हुए लालटेन को विद्रोही चेतना के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है।

जंगल में औरतें हैं  
लकड़ियों के गट्ठर के नीचे बेहोश  
जंगल में बच्चे हैं  
असमय दफनाये जाते हुए  
जंगल में नंगे पैर चलते बूढ़े हैं  
डरते-खाँसते अंत में गायब हो जाते हुए  
जंगल में लगातार कुल्हाड़ियाँ चल रही हैं  
जंगल में सोया है रक्त  
धूप में तपती हुई चट्टानों के पीछे

वर्षों के आर्तनाद हैं  
और थोड़ी-सी घास है बहुत प्राचीन  
पानी में हिलती हुई  
अगले मौसम के जबड़े तक पहुँचते पेड़  
रातोंरात नंगे होते हैं  
सूई की नोक जैसे सन्नाटे में  
जली हुई धरती करवट लेती है  
और एक विशाल चक्के की तरह घूमता है आसमान

जिसे तुम्हारे पूर्वज लाये थे यहाँ तक  
वह पहाड़ दुख की तरह टूटता आता है हर साल  
सारे वर्ष सारी सदियाँ  
बर्फ की तरह जमती हैं निःस्वप्न आँखों में  
तुम्हारी आत्मा में  
चूल्हों के पास पारिवारिक अंधकार में  
बिखरे हैं तुम्हारे लाचार शब्द  
अकाल में बटोरे गये दानों जैसे शब्द

दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर  
एक तेज़ आँख की तरह  
टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई  
देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत  
बिलखती स्त्रियों के उतारे गये गहने  
देखो भूख से बाढ़ से महामारी से मरे हुए  
सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों से  
दोनों हाथों से बेशुमार बर्फ झाड़कर  
अपनी भूख को देखो  
जो एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है  
और इच्छाएँ दाँत पैंने कर रही हैं  
पत्थरों पर

शब्दार्थ-टिप्पणी

आर्तनाद पीड़ा से निकली आवाज़ बेशुमार बहुत मुस्तैद कटिबद्ध, तेज़

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

- (1) औरतें क्यों बेहोश हैं ?
- (2) बच्चों को असमय क्यों दफनाया जा रहा है ?
- (3) जंगल में कुल्हाड़ियाँ क्यों चल रही हैं ?
- (4) कैसा सन्नाटा है ? क्यों ?
- (5) लालटेन किस तरह जलती है ?
- (6) पहाड़ के ईद-गिर्द रहने वालों की बेबसी का वर्णन कीजिए।

2. उत्तर लिखिए :

- (1) महामारी से लोगों की दशा कैसी थी ?
- (2) 'पहाड़ पर लालटेन' कविता का केन्द्रीय भाव स्पष्ट कीजिए।
- (3) ससंदर्भ समझाइए :

चूल्हों के पास पारिवारिक अंधकार में  
बिखरे हैं तुम्हारे लाचार शब्द  
अकाल में बटोरे गये दानों जैसे शब्द।

योग्यता-विस्तार

- मंगलेश डबराल की अन्य कविताएँ इंटरनेट के माध्यम से पढ़िए।



अरुण कमल

( जन्म : सन् 1954 ई. )

आठवें दशक के कवि अरुण कमल का जन्म बिहार के रोहतास जिले के नासरीगंज में हुआ था। वे व्यवसाय से अंग्रेजी के अध्यापक हैं। अपने आसपास के परिवेश अर्थात् लोकजीवन और लोक संस्कृति को पूरी ईमानदारी से प्रतिध्वनित करने वाले इस कवि की कविता में जीवन के प्रति गहरी प्रतिबद्धता देखने को मिलती है। उनकी कविता अपने समय के सच का सामना करने वाली कविता है। उनकी भाषा में जनभाषा के रंग हैं और एक आडंबर मुक्त बिम्बधर्मिता है।

‘अपनी केवल धार’, ‘सबूत’, ‘नये इलाके’, ‘पुतली में संसार’ जैसे काव्य संग्रहों द्वारा उन्होंने समकालीन कविता में अपनी विशेष पहचान बनाई है। ‘कविता और समय’ तथा ‘गोलमेज’ उनके चिंतनात्मक-आलोचनात्मक निबंधों के संकलन हैं। हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिका ‘आलोचना’ का संपादन भी उन्होंने किया। ‘नये इलाके’ के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार के अलावा उन्हें भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार, रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार तथा शमशेर सम्मान प्राप्त हो चुका है।

प्रस्तुत कविता अधिक बोलने वालों और कम बोलने वालों में से कौन ज्यादा ताकतवर है, इस रहस्य से परदा उठाती है। जो आदमी दुःखी है वह बहुत बोलता है, बकता है और यहाँ तक कि आवेश में आकर ईंट के भट्टे-सा धधकता है। लेकिन आश्चर्य इस बात का है कि वह कर कुछ नहीं पाता। दूसरी ओर जो जितना ज्यादा सुखी है, ताकतवर है वह लगभग नहीं बोलता, चुप रहता है। वह देखता सब कुछ है और सिर्फ हाथ के इशारे से लोगों को मरवा-कटवा सकता है। बंदूक की घोड़ी दबाए बिना ही वह कोई भी जुल्म ढा सकता है। कवि ने बहुत कम शब्दों में सामाजिक-विषमता की ओर इशारा कर दिया है।

जो आदमी दुख में है  
वह बहुत बोलता है  
बिना बात के बोलता है  
वह कभी चुप्प स्थिर बैठ नहीं सकता  
जरा-सी हवा लगते फेंकता लपट  
बकता है लगातार  
ईंट के भट्टे-सा धधकता  
जो सुखी सम्पन्न है  
सन्तुष्ट है  
वह कम बोलता है  
काम की बात बोलता है  
जो जितना सुखी है उतना ही कम  
बोलता है  
जो जितना ताकतवर है उतना ही कम



वह लगभग नहीं बोलता है  
हाथ से इशारा करता है  
ताकता है  
और चुप्प रहता है  
जिसके चलते चल रहा है युद्ध कट रहे हैं लोग  
उसने कभी किसी बन्दूक की घोड़ी नहीं दाबी

### शब्दार्थ-टिप्पणी

इशारा संकेत बकना निरर्थक बोलना भट्ठा ईंट पकाने की चिमनी सम्पन्न धनी

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) कैसा आदमी बहुत बोलता है ?
- (2) दुःख में आदमी किस तरह धधकता है ?
- (3) कैसा आदमी कम बोलता है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) दुःखी और सुखी आदमी के बोलने में अन्तर क्या है ? स्पष्ट कीजिए।
- (2) ताकतवर आदमी के बोलने की विशेषताएँ बताइए।
- (3) दुःखी, सुखी और ताकतवर आदमियों के बोलने का भेद स्पष्ट कीजिए।
- (4) बन्दूक की घोड़ी न दबाने वाले आदमी की विशेषताएँ क्या हैं ?
- (5) 'बोलना' कविता में बोलने के कितने रूपों का वर्णन कवि ने किया है ? अपने शब्दों में समझाइए।

#### 3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) "जो सुखी सम्पन्न है, सन्तुष्ट है  
वह कम बोलता है, काम की बात बोलता है।"
- (2) "जिसके चलते चल रहा है युद्ध कट रहे हैं लोग  
उसने कभी किसी बन्दूक की घोड़ी नहीं दाबी ॥"

### योग्यता-विस्तार

- बोलने के बारे में कबीर के दोहे ढूँढ़कर पढ़िए।
- नौकरी के लिए साक्षात्कार में बोलने का क्या महत्त्व है ? इस पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
- वक्तृत्व और वाद-विवाद स्पर्धा में कक्षा में बोलने के कौन-कौन से गुण होने चाहिए, खोजकर पढ़िए।



मदन कश्यप का जन्म बिहार के वैशाली में एक निम्न मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। अल्पायु में ही माँ का निधन हो जाने के कारण ननिहाल में पढ़ाई पूरी की। 1979 में रोजी - रोटी की तलाश में धनबाद आ गए और वहाँ एक दैनिकपत्र से जुड़ गए। बाद में एक सार्वजनिक उपक्रम में बीस वर्षों तक नौकरी कर इस्तीफा देकर सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर लिखना शुरू किया। पिछले कुछ वर्षों से दिल्ली में रहकर 'सामाजिक विमर्श' नामक पत्रिका का संपादन कर रहे हैं।

मदन कश्यप एक ऐसे रचनाकार हैं जो सामाजिक - राजनीतिक तथ्यों की जानकारी का कविता में सृजनात्मक रूपांतर करते हैं। बदलते हुए समय और संदर्भों को समझने और व्याख्यायित करने में उन्हें कुशलता प्राप्त है। अब तक उनके तीन कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं - 'लेकिन उदास है पृथ्वी', 'नीम रोशनी में' और 'करुण'। दो निबंध संग्रह हैं - मतभेद, 'लहूलुहान लोक तंत्र'।

प्रस्तुत कविता में कोयले की खानों में जान हथेली पर रख कर काम करने वाले श्रमिकों के फौलादी हौसलों और कठोरतम परिश्रम की यथार्थ तसवीर अंकित है। चट्टानों से भी कठोर अंधेरे को चीरते हुए जब ये श्रमिक अजगर - सी टेढ़ी-मेढ़ी खानों में प्रवेश करते हैं तो किसी को ज्ञान नहीं होता कि कौन वापस लौटकर जाएगा और कौन काल के मुख में समा जाएगा। जो कोयला धरती के गर्भ से बाहर निकल कर दुनिया के नक्शे को बदल देता है, उसे बाहर निकालने वालों के तप एवं बलिदान को शायद ही कोई याद करता है। कोयले की खानों में ही नहीं, कारखानों की भट्टी में काम करने वाले श्रमिक, धरती फाड़ कर हल चलाने वाला किसान, मिल में कपड़ा बुनने वाला मजदूर - इन सबके लिए सामंतों की प्रशंसा में लिखे गए इतिहास में कोई जगह नहीं होती। कवि का हृदय इस स्थिति से द्रवित हो उठता है।

आदमी को लीलती हैं खानें

ऐसे ही नहीं रतन उड़ेलती है यह रत्नगर्भा

कितनी-कितनी जिंदगियाँ दफन हो जाती हैं

इनकी छाती में सेंध लगाते-लगाते

टेढ़े-मेढ़े लेटे विशालकाय अजगर से उनके उदर में

गैंता और सावल जैसे अपने नन्हे औजारों के साथ

जब घुसते हैं मजदूर

तब किसे पता होता है कि कितने वापस आएँगे

और कितने उनके जबड़ों में फँस जाएँगे

आदमी को लीलती हैं खानें  
चिनाकुड़ी। चासनाला। भदुआ  
चाँपापुर। होरिलाडीह। केन्दुआडीह  
किसी के लिए ये महज निरर्थक शब्द हैं  
तो किसी के लिए कुछ खानों के नाम  
मगर उनके लिए ये क्या हैं  
जिनके लाडले दफन हो गए इन खानों में

आदमी को लीलती हैं खानें  
तब जाकर निकलता है कोयला  
आदमी को चूसते हैं कारखाने  
तब जाकर ढलता है लोहा

चूहे के बिलों जैसी सँकरी खानों में  
पीठ पर लादकर गैंता, सावल और झोरा  
अपना रास्ता बनाते हुए प्रवेश करते हैं मज़दूर

वहाँ होती है धरती की सबसे गर्म और भारी हवा  
वहाँ होती है सबसे असह्य चिपचिपी उमस  
पृथ्वी के गर्भ के सबसे भारी अवयव  
चट्टानों से भी कठोर अँधेरे को चीरते हुए  
घुटनों के बल सरक-सरक कर वहाँ पहुँचते हैं  
मज़दूर

फिर मज़बूत हथेलियों में सँभालकर गैंता  
चोट करने से पहले गौर से निहारते हैं  
कोयले की गर्भस्थ काली परत को  
जिसके पहली बार धरती के गर्भ से बाहर आते ही  
बदल गया था दुनिया का नक्शा

धरती की छाती को भेदकर  
किसने मारी थी पहली चोट कोयले की सीम पर  
किसने धधकाई थी पहली बार लौहसारी  
किसने चलाया था पहली बार हल  
किसने निकाले थे रुई से धागे  
किसने बुने थे पहली बार कपड़े

सम्राटों और सामंतों का इतिहास  
गढ़ने और पढ़ने वाले लोगों  
बताओ तो सही  
किनके फंदों में कसा है  
किनके जबड़ों में फँसा है  
इनका इतिहास !

### शब्दार्थ-टिप्पणी

लीलना निगलना सेंध दीवाल तोड़ कर अन्दर आने का रास्ता बनाना निरर्थक बेकार महज सिर्फ

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) मजदूरों की जिन्दगी कैसे दफन हो जाती है ?
- (2) किन औजारों के साथ मजदूर खदानों में जाते हैं ?
- (3) कुछ खानों के नाम के साथ माता-पिता भावनात्मक रूप से क्यों जुड़े हैं ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) नन्हें औजारों के साथ प्रवेश करने वाले मजदूरों की मनःस्थिति का वर्णन कीजिए।
- (2) कवि ने खदानों की तुलना विशालकाय अजगर से क्यों की है ?
- (3) सँकरे खदानों में जाते समय मजदूरों को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?
- (4) असह्य मुसीबतों का सामना करते मजदूर खदानों से कोयला निकालने पर मजबूर क्यों हैं ?
- (5) 'आदमी को लीलती हैं खानें' शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) “किसी के लिए ये महज निरर्थक शब्द हैं  
तो किसी के लिए कुछ खानों के नाम  
मगर उनके लिए ये क्या हैं  
जिनके लाडले दफन हो गए इन खानों में।”
- (2) “आदमी को चूसते हैं कारखाने  
तब जाकर ढलता है लोहा।”

योग्यता-विस्तार

- इन्टरनेट के माध्यम से खदानों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करें।
- धनबाद (झारखंड) में स्थित कोयले की खानों के विषय में पढ़ें।



नीलेश रघुवंशी

( जन्म : सन् 1969 ई. )

नई पीढ़ी की महिला - रचनाकार नीलेश रघुवंशी का जन्म मध्य प्रदेश के गंज बासौदा में हुआ था। संकीर्ण नारीवादी लेखन से अलग हटकर भी उन्होंने नारी जीवन की समस्याओं और संभावनाओं को समझने का प्रयास किया है। नारी-मन की उलझन, उसकी पीड़ा तथा संघर्ष को वाचा देने के साथ-साथ स्त्रीत्व के गौरव - गरिमा की अभिव्यक्ति इन की कविता में हुई है। कविता के साथ-साथ गद्य की कई विधाओं में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

‘घर-निकासी’, ‘पानी का स्वाद’, ‘अंतिम पंक्ति में’ उनके काव्य-संग्रह हैं। ‘एक कस्बे के नोट्स’ उनका उपन्यास है। ‘छूटी हुई जगह’ (स्त्री - कविता पर नाट्यालेख) ‘अभी न होगा मेरा अंत’ ( निराला पर नाट्य-आलेख) ‘ए क्रिएटिव लीजेंड’ (सैयद हैदर रजा एवं ब.व.कारंत पर नाट्य-आलेख) उनकी गद्य-कृतियाँ हैं। ‘एलिस इन वंडर लैंड’, ‘डॉन क्विगजोट’, ‘झाँसी की रानी’ उनके बाल नाटक हैं। अबतक उन्हें कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं जिनमें-भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, दुष्यंतकुमार स्मृति सम्मान, केदार सम्मान प्रमुख हैं।

‘फर्क’ कविता में माँ-बेटी के रिश्ते से जुड़े सूक्ष्म पहलुओं को रेखांकित किया गया है। खाना माँगने के दोनों के तरीकों में बहुत बड़ा अंतर है। बेटी को जब-जब भूख लगती है तब-तब माँ उसे जो-जो माँगती है, स्नेह पूर्वक देती है। बेटी के चिल्लाने-पुकारने पर भी माँ हँसते - दुलारते हुए उसकी माँग पूरी करती है। लेकिन अब माँ बूढ़ी हो चुकी है, लाचार है फिर भी भूख लगने पर चिल्लाती - पुकारती नहीं, बल्कि भूख न होने का स्वांग रचकर सहमी-सी रह जाती है। कवयित्री ने माँ और बेटी के आचरण के विरोधाभास को बहुत कम शब्दों में उजागर कर दिखाया है।

मुझे जब-जब भूख लगी तब-तब चिल्लाई माँ पर

रोटी दो दूध दो यह नहीं मीठावाला दो

ऐसा नहीं वैसा दो कैसा भी मत दो

माँ ने हँसते-दुलारते वही दिया जो चाहिए था मुझे

अब जब माँ को ठीक से दिखता भी नहीं

तब भूखी होते हुए भी भूख न होने का उपक्रम करती

बार-बार पेट को पल्लू से ढकती

कभी भी चिल्लाकर चाय रोटी नहीं माँगती माँ

कितना फर्क है माँ खाना दो और बेटा खाना दो में

शब्दार्थ-टिप्पणी

पल्लू आँचल फ़र्क भेद उपक्रम कोशिश प्रयास

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) कवयित्री माँ पर कब चिल्लाती है ?
- (2) कवयित्री भूख लगने पर माँ से क्या - क्या माँगती है ?
- (3) माँ कवयित्री को क्या देती है ?
- (4) माँ पेट को पल्लू से बार-बार क्यों ढकती है ?
- (5) भूख न होने का उपक्रम माँ किस हालत में करती है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) माँ द्वारा बच्चों को खाना देने में और बेटों द्वारा माँ को खाना देने में क्या अन्तर है ?
- (2) बेटी (कवयित्री) के प्रति माँ के व्यवहार का वर्णन कीजिए।

### योग्यता-विस्तार

- “मा बापने भुलशो नहि” गुजराती काव्य का समूह गान कीजिए।
- भीष्म साहनी की ‘चीफ की दावत’ और उषा प्रियंवदा की ‘वापसी’ कहानी पढ़िए।



प्रेमचंद

( जन्म : सन् 1880 ई. ; निधन : सन् 1936 ई. )

युग प्रवर्तक साहित्यकार मुंशी प्रेमचंदजी का जन्म बनारस के निकट लमही नामक गाँव में हुआ था। बचपन का नाम धनपतराय था। पाँच वर्ष की उम्र में माता का और चौदह वर्ष की उम्र में पिता का अवसान हो जाने के कारण अनेक अभावों के बीच जिन्दगी की लड़ाई उन्होंने अकेले ही लड़ी। स्वाधीनता आंदोलन में शरीक होने के कारण उन्होंने सरकारी नौकरी तक छोड़ दी और अपना पूरा समय लेखन के लिए समर्पित कर दिया।

प्रेमचंदजी ने एक दर्जन से भी अधिक उपन्यास और तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखकर हिन्दी कथा साहित्य को एक नई दिशा दी। वे स्वयं गाँव में जन्मे और पले-बढ़े थे अतः भारतीय ग्राम जीवन के सुख-दुःख, शोषण उत्पीड़न की यथार्थ तसवीर अपनी कथाकृतियों में अंकित करने में सफल हुए। भारतीय जन-जीवन की प्रायः सभी समस्याओं का संवेदनापूर्ण चित्रण उनकी कृतियों में हुआ है, इसलिए उन्हें समस्यामूलक कथाकार कहा गया। उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' के आठ भागों में संकलित हैं। सेवासदन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, निर्मला, गबन और गोदान उनके प्रमुख उपन्यास हैं। उनकी भाषा पात्र, प्रसंग और परिवेश के अनुसार सरल-सहज एवं मुहावरेदार होती है।

'पूस की रात' प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इसमें कर्ज से पीड़ित हल्कू नामक किसान की दुर्दशा का चित्रण है। मजदूरी कर-कर के बचाये गए तीन रुपए महाजन को जबरन दे देने के बाद हल्कू का कंबल लेने का सपना चूर-चूर हो जाता है। पूस की रात में फटे कंबल में ठिठुरता हुआ वह खेत में फसल की रखवाली करने जाता है। भयानक शीत में वह पहले अपने कुत्ते को सीने से चिपटाकर सोने की व्यर्थ कोशिश करता है, बाद में खेत में से पत्तियाँ एकत्र कर उन्हें जलाकर तापने लगता है। आग की गर्माहट से मिला सुकून उस पर इतना हावी हो जाता है कि यह जानकर भी कि जानवर उसका खेत चर रहे हैं, वह उन्हें भगाने के लिए नहीं जाता। फसल चौपट हो जाने के कारण उसे कर्ज भी मजदूरी करके चुकाना पड़ेगा, यह जानते हुए भी वह खुश है। क्योंकि अब उसे जाड़े की रात में ठिठुरते हुए खेतों की रखवाली के लिए जाना नहीं पड़ेगा। हल्कू के माध्यम से भारतीय किसानों की ट्रेजेडी का यथार्थ चित्रण इस कहानी में हुआ है।

: 1 :

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा — “सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।”

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली — “तीन ही तो रुपये हैं; दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आयेगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी? उससे कह दो, फसल पर रुपये दे देंगे। अभी नहीं हैं।”

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्बल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमाएगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप गया और खुशामद करके बोला — “ला, दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए दूसरा उपाय सोचूँगा।”

मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली — “कर चुके दूसरा उपाय ! जरा सुनूँ, कौन उपाय करोगे ? कोई खैरात दे देगा कम्बल ! न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती। मैं कहती हूँ तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते ? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है।



पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आए, मैं रुपये न दूँगी – न दूँगी।”

हल्कू उदास होकर बोला—“तो क्या गाली खाऊँ?”

मुन्नी ने तड़पकर कहा—“गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?”

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गई। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली — “तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है, मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस !”

हल्कू ने रुपये लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकाल कर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-कपट कर तीन रुपये कम्बल के लिए जमा किए थे। वे आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

: 2 :

पूस की अँधेरी रात ! आकाश पर तारे भी टिटुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ईख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दोनों में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गरदन में चिपटाते कहा — “क्यों जबरा, जाड़ा लगता है ? कहता तो था, घर में पुआल पर लेटा रह, तू यहाँ क्या लेने आया था ? अब खाओ ठंड; मैं क्या करूँ ? जानते थे, मैं यहाँ हलुआ-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े दौड़े आगे-आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को !”

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा — “कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह राँड़ पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह तो रात कटे। आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है ! और एक-एक भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाए तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल। मजाल है, जाड़े की गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है। मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें।”

हल्कू उठा और गड्ढे में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा — “पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ, मन जरा बहल जाता है।”

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू — “आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।”

जबरा ने अगले पंजे उसके घुटने पर रख दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गरम साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और यह निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो, अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीने-भर से उसे न मिला था। जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गन्ध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया था। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झटपट उठा ओर छपरी के बाहर आकर भौंकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार पुचकार कर बुलाया; पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़-दौड़कर भौंकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरन्त ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की तरह उछल रहा था।

: 3 :

एक घंटा और गुज़र गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और उसने दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा-अभी कितनी रात बाकी है ! सप्तर्षि आकाश में अभी आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जाएँगे तब कहीं सवेरा होगा। अभी पहर-भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गया था। बाग में पत्तियों का एक ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, “चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो मुझसे बैठे नहीं रहा जाता।”

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे जाते देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा — “अब तो नहीं रहा जाता जबरू ! चलो, बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँटे हो जाएँगे, तो फिर आकर सोएँगे। अभी तो रात बहुत है।”

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला। बगीचे में घुप अँधेरा छाया हुआ था और उस अन्धकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेहँदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा — “कैसी अच्छी महक आई जबरू ! तुम्हारी नाक में भी सुगन्ध आ रही है ?”

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। वह उसे निचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे, नंगे पाँव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठी। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-झूकर जलने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे मानो उस अथाह अन्धकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्त सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता-मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली और दोनों पाँव फैला दिए, मानो ठंड को ललकार रहा हो, “तेरे जी में जो आए सो कर।” ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा — “क्यों जब्बर, अब तो ठंड नहीं लग रही है?”

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा — “अब क्या ठंड लगती ही रहेगी?”

“पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं तो इतनी ठण्ड क्यों खाते?”

जब्बर ने पूँछ हिलाई।

“अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें, देखें कौन निकल जाता है ! अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूँगा।”

जब्बर ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

“मुन्नी से कल न कह देना, नहीं तो लड़ाई करेगी।”

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया! पैरों में जरा लपटें लगीं; पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा — “चलो-चलो, ऐसे नहीं, ऊपर से कूदकर आओ।” वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

: 4 :

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया हुआ था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा दहक उठती थी; पर एक क्षण में फिर आँखें बन्द कर लेती थीं।

हल्कू ने सिर से चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई थी; पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा जोर से भौंककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हो रहा था कि जानवरों का झुण्ड उसके खेत में आया है। शायद नील गायों का झुण्ड था। उनके कूदने और दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वे खेत में चर रही हैं। उनके चरने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा — “नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ, अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ है।”

उसने जोर से आवाज लगाई — “जबरा, जबरा !”

जबरा भौंकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आवाज सुनाई दी। वह अब अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसे दंदाया हुआ बैठा था, ऐसे जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगाई — “लिहो-लिहो लिहो!!”

जबरा फिर भौंक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी फसल है, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठण्डी देह गरमाने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था। नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं और हल्कू गरम राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों ओर से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गरम जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सवेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गई थी और मुन्नी कह रही थी — “आज क्या सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।”

हल्कू ने उठकर कहा — “क्या तू खेत से होकर आ रही है?”

मुन्नी बोली — “हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है? तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ?”

हल्कू ने ऐसा बहाना किया — “मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दर्द हुआ कि मैं ही जानता हूँ।”

दोनों फिर खेत के डाँड़ पर आए। देखा, सारा खेत रौंदा हुआ पड़ा है और जबरा मड़ैया के नीचे चित्त लेटा है, मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी, पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा — “अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।”

हल्कू ने प्रसन्न-मुख से कहा — “रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।”

### शब्दार्थ-टिप्पणी

फिरकर घूमकर हार खलिहान डील कद खैरात दान धौंस धमकी ईख गन्ना पुआल पके हुए धान के डंठल जिनसे दाने अलगकर लिए गए हों श्वान कुत्ता राँड़ विधवा पछुवा पश्चिम दिशा से चलने वाली हवा लिहाफ रजाई टाँटे गरम अलाव तापने के लिए जलाई गई आग दंदाया हुआ गरमाया हुआ मड़ैया खेत में रखवाली के लिए बनाया गया झोपड़ा डाँड़ खेत की सीमा, मेंड़ मालगुजारी भूमिकर

### मुहावरे

गला छुड़ाना मुक्ति पाना बला सिर से टलना मुसीबत दूर होना आँख तरेरना क्रोध करना

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) सहना के आने से हल्कू चिन्तित क्यों हो गया ?
- (2) हल्कू की पत्नी ने पैसे देने से इन्कार क्यों किया ?
- (3) रुपये देते समय हल्कू का हृदय व्यथित क्यों था ?
- (4) हल्कू और जबरा दोनों को हार में नींद क्यों नहीं आ रही थी ?
- (5) हल्कू जबरा को किन शब्दों में प्रेम से डाँटता है ?

- (6) जबरा की पीठ सहलाते हुए हल्कू ने क्या कहा ?
- (7) ठंड से बचने के कौन - कौन से उपाय हल्कू ने किए ?
- (8) अचानक जबरा खेत की ओर क्यों भागा ?

## 2. उत्तर लिखिए :

- (1) मुन्नी हल्कू को खेती करने से मना क्यों करती है ?
- (2) हल्कू अलाव के सामने बैठकर किस अनुभूति से आनंदित हो रहा था ?
- (3) हल्कू के खेत की फसल क्यों और कैसे नष्ट हो गई ?
- (4) अकर्मण्यता की रस्सियों से जकड़ा हल्कू सब देखता-सुनता रहा क्यों ?
- (5) एक रात हल्कू के विचारों को परिवर्तित करने में समर्थ है - समझाइए।
- (6) हल्कू के माध्यम से भारतीय किसान की दयनीय दशा का वर्णन कीजिए।

## 3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) “एक - एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।”
- (2) “हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी।”

## 4. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

- (1) बला सिर से टलना
- (2) आँख तरेरना

## 5. संधि विच्छेद कीजिए :

सप्तर्षि, दुर्गन्ध, निश्चय

### योग्यता-विस्तार

- (1) आज का किसान दयनीय और असहाय है - इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
- (2) जानवर और मनुष्य के प्रेम से संबंधित अन्य कहानियाँ पढ़िए।



पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी

( जन्म : सन् 1907 ई. ; निधन : सन् 1979 ई. )

द्विवेदीजी का जन्म उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के दुबे का छपरा नामक गाँव में हुआ था। उनके व्यक्तित्व के कई पहलू हैं। उन्होंने काशी में साहित्य, ज्योतिष और संस्कृत का अध्ययन कर आचार्य की उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने बनारस तथा पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। वे शांतिनिकेतन के हिन्दी भवन के निदेशक भी रहे। उनके समग्र साहित्य पर इतिहास, संस्कृति एवं दर्शन के गहन अध्ययन की छाप है।

द्विवेदीजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। वे शुक्लोत्तर युग के एक श्रेष्ठ निबंधकार, उपन्यासकार, समालोचक, इतिहास-लेखक और प्रखर शोधार्थी के रूप में जाने जाते हैं। अशोक के फूल, कल्पलता, विचार प्रवाह और कुटज उनके निबंध संग्रह हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा, अनामदास का पोथा, पुनर्नवा तथा चारुचंद्रलेख उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' तथा 'कबीर' इतिहास और आलोचना विषयक उत्कृष्ट ग्रंथ हैं। पांडित्य और सहजता, गांभीर्य और विनोदप्रियता, प्राचीनता और नवीनता, प्रकृति एवं संस्कृति का अद्भुत समन्वय उनके निबंधों एवं उपन्यासों में देखा जा सकता है। ललित निबंधकार के रूप में उनकी स्वतंत्र पहचान है।

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' एक विचार प्रधान किंतु रोचक निबंध है। निबंध-लेखन की प्रेरणा लेखक को अपनी छोटी बेटी के एक बाल-सहज प्रश्न से मिली कि मनुष्य के नाखून क्यों बढ़ते हैं। नाखून बढ़ते हैं, हम उन्हें काट देते हैं और वे फिर बढ़ जाते हैं। विचार करते-करते लेखक की दृष्टि मनुष्य के लाखों - हजारों वर्ष के इतिहास पर पहुँच जाती है। मनुष्य जब जंगली जीवन जीता था, नाखून ही अस्त्र-शस्त्र के रूप में उसकी सुरक्षा करते थे। जब सुरक्षा के लिए उसने नये-नये शस्त्र बना लिए तब अपनी कला एवं विनोद वृत्ति से प्रेरित हो नाखूनों को सजाना सँवारना शुरू कर दिया। सोच-विचार कर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नाखूनों का बढ़ना हमारी पशुता की निशानी है और उन्हें काट देना हमारी सभ्यता-संस्कृति की निशानी है। लेकिन इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि नाखूनों को काट देने मात्र से मनुष्य सभ्य नहीं बन जाता, अपने भीतर की पशुता पर विजय पाकर ही वह पूर्ण सभ्य और सुसंस्कृत कहलाता है।

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अक्सर उन्हें डाँटा करते हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दण्ड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंघ पर हाजिर ! आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं ?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था; वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वन्दियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग थे। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा ( रामचन्द्र जी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे )। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाये। इन हड्डियों के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाये। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीजें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गन्धर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। पलीते-वाली बन्दूकों

ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़-भरे घाट तक घसीटा है; यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य अब एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वञ्चित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नख-दन्ताबलम्बी जीव हो - पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

ततः किम् ! मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन-कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाये जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कम्बख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अन्धे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है ! मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई अवशेष रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ ! नाखून कटने से क्या होता है ? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है ! मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकाण्ड बार-बार थोड़े ही हुआ है ? यह तो उसका नवीनतम रूप है ! मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवन्त प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के सँवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बतायी गयी है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चन्द्राकार, दन्तुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलास नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसन्द करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी ! लेकिन समस्त उद्योगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचनेवाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव-शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गयी हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटनेवाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है ? सोचना तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गये हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है — किस ओर ? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है ? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर ? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है — जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं ? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ — जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं ?—ये हमारी पशुता की निशानी हैं। भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अंग्रेजी के 'इण्डिपेण्डेन्स' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेजी भाषा के पत्र 'इण्डिपेण्डेन्स' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इण्डिपेण्डेन्स' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेण्डेन्स' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इण्डिपेण्डेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका ? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किये—स्वतन्त्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता—उन सबमें 'स्व' का बन्धन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परम्परा ही अनजान में हमारी

भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणी-विज्ञानी की बात फिर याद आती है — सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावतः ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाय। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिये गये हों। हमारी परम्परा महिमामयी, उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। उपकरण नये हो गये हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गयी है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी अनधीनता के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बन्धन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने आप पर अपने आपके द्वारा लगाया हुआ बन्धन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वाञ्छनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाये रहनेवाली 'बंदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परन्तु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नयी अनुसन्धित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भण्डार में वह हितकर वस्तु निकल आये, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

जातियाँ इस देश में अनेक आयी हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेम-पूर्वक बस भी गयी हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बन्धनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है ! आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बन्धन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टण्टे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़नेवाले अविवेकी को बुरा समझता है; और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है :

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत ।

निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च ॥

अन्यत्र इसमें निरन्तर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन प., 120.10)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुःख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म-निर्मित बन्धन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है, और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलगा ? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था—बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा—प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बन्धन मनुष्य का स्वाभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गयी; आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ—बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।



ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बन्द हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गयी है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बन्द कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास-बिना सिखाये-आ जाती है, यह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अन्तर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडम्बर के साथ सफलता का नाम दे रखा है। परन्तु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपनों को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अन्ध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बन्धन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

अल्पज्ञ कम जानने वाला नखदंतावलंवी नाखूनों और दाँतों पर निर्भर अनुवर्तिता अनुसरण करने की प्रवृत्ति अनुसंधित्सा खोज की इच्छा उत्स स्रोत उद्भावित उत्पादित द्योतक सूचक निःशेष संपूर्ण

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) जंगली अवस्था में मनुष्य को नाखून की आवश्यकता क्यों थी ?
- (2) वज्र किससे बना था ?
- (3) अब मनुष्य को नाखून की जरूरत क्यों नहीं है ?
- (4) मनुष्य की पशुता कैसे जीवित है ?
- (5) अपने मत से मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है ?
- (6) हमारी परंपरा कैसी है ?
- (7) कालिदास ने क्या कहा था ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) मनुष्य के लिए क्या असह्य है ? क्यों ?
- (2) प्राणि-विज्ञानियों का वृत्तियों के संदर्भ में क्या मत है ?
- (3) मनुष्य पशु से किन बातों में भिन्न है ?

3. ससंदर्भ वुखुडुडु कीऑऑ :

- (1) 'अड डी डुरकृऑ डनुषुड कु उसके डीतरवुले असुतुर से वंचुत नरुडु कर ररुडु डु, अड डी वरु डुडु डलु डुतु डु डु कल तुडुडु डु नुखुन कु डुलुडु नरुडु ऑ सुकतु ।'

डुगुडुतु-वुसुतुडु

- उऑऑखलतु डशु कु डुरवृऑतु डु, 'सुव' कु डनुधन डनुषुड कु सुवडुडु डु डु - ककुषु डु डु ऑरुऑ कीऑऑ ।



हरिकृष्ण 'प्रेमी'

( जन्म : सन् 1908 ई. ; निधन : सन् 1974 ई. )

सफल नाटक एवं एकांकीकार प्रेमी जी का जन्म ग्वालियर के गुना में हुआ था किंतु उनका साहित्य - साधना का क्षेत्र लाहौर ही रहा। विभाजन के बाद वे जालंधर आ गए और आकाशवाणी से जुड़ गए। राष्ट्रभक्ति के संस्कार उन्हें बाल्यकाल में अपने परिवार से ही मिले। यही कारण है कि प्रेमी जी के नाटकों - एकांकियों में राष्ट्रीय आंदोलन, राष्ट्रभक्ति, धार्मिक एकता तथा अछूतोंद्वारा जैसे पहलुओं का उद्घाटन हुआ है। अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास के आलोक में युगीन समस्याओं को उठाया है।

प्रेमी जी की सर्वप्रथम प्रकाशित रचना 'स्वर्ण विहान' गीति नाट्य है। इसके बाद उन्होंने 'रक्षाबंधन', 'शिवासाधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति', 'विषपान' आदि अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखे। 'मंदिर और बादलों के पार' उनके प्रमुख एकांकी संग्रह हैं। उनकी नाट्य रचनाएँ मंच की दृष्टि से सफल रही हैं। कवि होने के कारण नाटकों में गीति तत्व भी देखने को मिलता है। 'अनंत के पथ पर', 'आँखों में', 'अग्निगान', 'रूप दर्शन' एवं 'वंदना के बोल' उनके काव्य संग्रह हैं। प्रेमीजी ने पत्रकार, प्रकाश के रूप में काम करने के साथ-साथ मुंबई के फिल्म जगत में भी सुंदर कार्य किया था।

'मातृभूमि का मान' एक ऐतिहासिक एकांकी है। एक ओर राजस्थान के राजपूतों के साहस, शौर्य एवं बलिदान भावना का वर्णन है तो दूसरी ओर उनके उस कमजोर पहलू पर प्रकाश डाला गया है जो अपने-अपने अहंकार के वश उन्हें आपस में लड़ने - मरने को मजबूर कर देता है। चित्तौड़ का महाराणा लाखा सिसोदिया वंश के अहंकार की तुष्टि के लिए बूंदी का नकली किला बनाकर उस पर विजय पाना चाहता है। लेकिन उन्हीं की फौज में सैनिक हाड़ा राजपूत वीरसिंह नकली किले को भी अपनी मातृभूमि का प्रतीक मान कर उसकी रक्षा के लिए प्राण दे देता है। इसे देखकर चित्तौड़ और बूंदी के दोनों महाराजाओं की आँखें खुल जाती हैं और वे स्वीकार करते हैं कि वीरसिंह के बलिदान ने हमें जन्मभूमि का मान करना सिखाया है। दोनों राजपूतों में न कोई राजा होता है न महाराजा, सब मातृभूमि की मान रक्षा के लिए प्राण देने वाले सैनिक हैं।

#### पात्र

राव हेमू : बूंदी के राव

चारणी : एक गायिका

अभयसिंह : मेवाड़ के सेनापति

वीरसिंह : बूंदी का राजपूत

महाराणा लाखा : चित्तौड़ के महाराणा

दो वीर साथी

#### पहला दृश्य

(स्थान - बूंदीगढ़। बूंदी के राव हेमू अपने कमरे में मेवाड़ के सेनापति अभयसिंह से बातें कर रहे हैं।)

अभयसिंह : महाराव, सिसौदिया वंश हाड़ाओं को आदर और स्नेह की दृष्टि से देखता है।

राव हेमू : तो फिर आप बूंदी को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने की आज्ञा लेकर क्यों आए हैं ?

अभयसिंह : महाराव, हम राजपूतों की छिन्न-भिन्न असंगठित शक्ति विदेशियों का किस प्रकार सामना कर सकती है ? इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि हम अपनी शक्ति एक केन्द्र के अधीन रखें।

राव हेमू : और वह केन्द्र है चित्तौड़।

अभयसिंह : इसमें भी कोई संदेह है, महाराव ? चित्तौड़ का गौरव फिर लौटा है। जो राजवंश पहले मेवाड़ के अधीन थे,

महाराणा लाखा चाहते हैं, आज भी उसी तरह रहें। बूंदी राज्य भी सदा से मेवाड़ के आश्रित...

राव हेमू : बूंदी राज्य सदा से मेवाड़ के आश्रित !... यह तुम क्या कहते हो। अभयसिंहजी, हाड़ा वंश किसी की गुलामी स्वीकार नहीं करेगा।

अभयसिंह : महाराव, आज राजपूतों को एक सूत्र में गूँथे जाने की बड़ी आवश्यकता है और जो व्यक्ति यह माला तैयार करने की ताकत रखता है, वह है महाराणा लाखा।

राव हेमू : ताकत की बात छोड़ो, अभयसिंह। प्रत्येक राजपूत को अपनी ताकत पर नाज है।

अभयसिंह : किंतु अनुशासन का अभाव हमारे देश के टुकड़े किए हुए है।

राव हेमू : प्रेम का अनुशासन मानने को हाड़ा वंश सदा तैयार है, शक्ति का नहीं। मेवाड़ के महाराणा को यदि अपने ही जाति भाइयों पर तलवार आजमाने की इच्छा हुई है तो उससे उन्हें कोई नहीं रोक सकता। बूंदी स्वतंत्र राज्य है और स्वतंत्र रहकर वह महाराणाओं का आदर करता रह सकता है। अधीन होकर किसी की सेवा करना वह पसंद नहीं करता।

अभयसिंह : तो मैं जाऊँ ?

राव हेमू : आपकी इच्छा।

(दोनों का दो तरफ प्रस्थान। पट परिवर्तन)

### दूसरा दृश्य

(स्थान - चित्तौड़ का राजमहल। महाराणा लाखा बहुत चिंतित और व्यथित अवस्था में कमरे में टहल रहे हैं।)

लाखा : मेवाड़ के गौरवपूर्ण इतिहास में मैंने कलंक का टीका लगाया है। इस बार मुट्ठीभर हाड़ाओं ने हम लोगों को जिस प्रकार पराजित और विफल किया, उससे मेवाड़ के आत्मगौरव को कितनी ठेस पहुँची है, मेरा हृदय जानता है।

अभयसिंह : महाराणा जी। दरबार के सभासद आपके दर्शन पाने को उत्सुक हैं।

महाराणा : सेनापति अभयसिंहजी, आज मैं दरबार में नहीं जाऊँगा। आप जानते हैं कि जब से हमें नोमरा के मैदान में बूंदी के राव हेमू से पराजित होकर भागना पड़ा, मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। बाप्पा रावल और वीरवर हमीर का रक्त जिसकी धमनियों में बह रहा हो वह प्राणों के भय से भाग जाए, यह कितने कलंक की बात है।

अभयसिंह : किंतु जरा-सी बात के लिए आप इतना शोक क्यों करते हैं, महाराणा ? हाड़ाओं ने रात के समय अचानक हमारे शिविर पर हमला कर दिया। आकस्मिक धावे से घबराकर हमारे सैनिक भाग खड़े हुए। आप तो तब भी प्राण पर खेलकर राव हेमू से लोहा लेना चाहते थे। किंतु हमी लोग वहाँ से आपको खींच लाए। इसमें आपका क्या अपराध है और इसमें मेवाड़ के गौरव में कमी आने का कौन-सा कारण है ?

महाराणा : जिनकी खाल मोटी है, उनके लिए किसी भी बात में कोई भी अपयश, कलंक या अपमान का कारण नहीं होता। किंतु जो आन को प्राणों से बढ़कर समझते आए हैं, वे पराजय का मुख देखकर भी जीवित रहें, यह कैसी उपहासजनक बात है। सुनो अभयसिंहजी, मैं अपने मस्तक से इस कलंक के टीके को धो डालना चाहता हूँ।

अभयसिंह : मेवाड़ के सैनिक आपकी आज्ञा पर अपने प्राणों की बलि देने को प्रस्तुत हैं।

महाराणा : उनके पौरुष की परीक्षा का दिन आ पहुँचा है। महारावल बाप्पा का वंशज मैं लाखा प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक बूंदी के दुर्ग में ससैन्य प्रवेश नहीं करूँगा, अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा।

अभयसिंह : महाराणा ! छोटे से बूंदी दुर्ग को विजय करने के लिए इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करने की क्या आवश्यकता है ? बूंदी को उसकी धृष्टता के लिए तो दंड दिया ही जाएगा, लेकिन हाड़ा लोग कितने वीर हैं। युद्ध करने में वे यम से भी नहीं डरते। इसमें संदेह नहीं कि अंतिम विजय हमारी ही होगी, किंतु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता

कि इसमें कितने दिन लग जाएँगे। इसलिए ऐसी भीषण प्रतिज्ञा आप न करें।

महाराणा : आप यह क्या कहते हैं, सेनापति ? क्या कभी आपने सुना है कि सूर्यवंश में पैदा होने वाले पुरुष ने अपनी प्रतिज्ञा को वापस लिया हो ? 'प्राण जाहि पर वचन न जाई' यह हमारे जीवन का मूल मंत्र है। जो तीर तरकस से निकलकर कमान पर चढ़कर छूट गया, उसे बीच से नहीं लौटाया जा सकता। मेरी प्रतिज्ञा कठिनाई से पूरी होगी, यह मैं जानता हूँ और इस बात की हाल के युद्ध में पुष्टि भी हो चुकी है कि हाड़ा जाति वीरता में हम लोगों से किसी प्रकार हीन नहीं है, फिर भी महाराणा लाखा की प्रतिज्ञा वास्तव में प्रतिज्ञा है। वह पूर्ण होनी चाहिए।

### नेपथ्य में गान

ये सागर से रत्न निकाले। युग-युग से हैं गए संभाले।

इनसे दुनिया में उजियाला। तोड़ मोतियों की मत माला।

ये छाती में छेद कराकर, एक हुए हैं हृदय मिलाकर।

इनमें व्यर्थ भेद क्यों डाला ? तोड़ मोतियों की मत माला।

(गाते-गाते चारणी का प्रवेश।)

महाराणा : तुम कुछ गा रही थीं, चारणी। तुम संपूर्ण राजस्थान को एकता की शृंखला में बाँधकर देश की स्वाधीनता के लिए कुछ करने का आदेश दे रही थीं ? किंतु मैं तो उस शृंखला को तोड़ने जा रहा हूँ। दो जातियों में जानी दुश्मन पैदा करने जा रहा हूँ।

चारणी : यह आप क्या कहते हैं, महाराणा ?

अभयसिंह : चारणी, महाराणा ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक वे बूंदी के गढ़ को जीत न लेंगे, अन्न-जल ग्रहण न करेंगे।

चारणी : दुर्भाग्य ! (कुछ सोचकर) महाराणा, मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। देश का कोई भी शुभचिंतक इस विद्वेष की आग को फैलने देना पसंद नहीं कर सकता।

अभयसिंह : किंतु महाराणा की प्रतिज्ञा तो पूरी होनी ही चाहिए।

चारणी : उसका एक ही उपाय है। वह यह कि यहाँ पर बूंदी का एक नकली दुर्ग बनाया जाए। महाराणा उसका विध्वंस करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लें। महाराणा, क्या आपको मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?

महाराणा : अच्छा, अभी तो मैं नकली दुर्ग बनाकर उसका विध्वंस करके अपने व्रत का पालन करूँगा। किंतु हाड़ाओं को उनकी उदंडता का दंड दिए बिना मेरे मन को संतोष न होगा। सेनापति, नकली दुर्ग बनवाने का प्रबंध करें।

(सबका प्रस्थान। पट परिवर्तन।)

### तीसरा दृश्य

(चित्तौड़ के निकट एक जंगली प्रदेश। नकली दुर्ग के मुख्य दरवाजे से महाराणा लाखा और सेनापति अभयसिंह का प्रवेश।)

अभयसिंह : आपने दुर्ग का निरीक्षण कर लिया ? ठीक बन गया है न ?

महाराणा : क्यों न बनता ? निःसंदेह यह ठीक बूंदी दुर्ग की हू-ब-हू नकल है। अब इस पर चढ़ाई करने का खेल खेला जाए। इस मिट्टी के दुर्ग को मिट्टी में मिलाने से मेरी आत्मा को संतोष तो नहीं होगा लेकिन अपमान की वेदना में जो विवेकहीन प्रतिज्ञा मैंने कर डाली थी, उससे तो छुटकारा मिल ही जाएगा। उसके बाद फिर ठंडे दिमाग से सोचना होगा कि बूंदी को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने के लिए किस तरह बाध्य किया जाए।

अभयसिंह : निश्चय ही महाराज ! शीघ्र ही बूंदी के पठारों पर चित्तौड़ का सिंहनाद होगा। अच्छा, अब हम लोग आज के रण की तैयारी करें।

महाराणा : किंतु यह रण होगा किससे ? इस दुर्ग में कोई तो हमारा पथ-प्रतिरोध करने वाला होना चाहिए।  
अभयसिंह : हाँ, खेल में भी तो कुछ वास्तविकता आनी चाहिए। मैंने सोचा है, दुर्ग के भीतर अपने ही कुछ सैनिक रख दिए जाएँगे जो बंदूकों से हम लोगों पर छूँछे वार करेंगे। कुछ घंटे ऐसा ही खेल होगा। फिर यह मिट्टी का दुर्ग मिट्टी में मिला दिया जाएगा। अच्छा, अब हम चलें।

(दोनों का प्रस्थान। दूसरी ओर से वीरसिंह का कुछ साथियों के साथ प्रवेश।)

वीरसिंह : मेरे बहादुर साथियों ! तुम देख रहे हो हमारे सामने यह कौन-सी इमारत बनाई गई है ?

पहला साथी : हाँ सरदार, यह हमारी जन्मभूमि बूंदी का दुर्ग है।

वीरसिंह : और तुम जानते हो कि महाराणा आज इस गढ़ को जीतकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं। किंतु क्या हम लोग अपनी जन्मभूमि का अपमान होने देंगे ? यह हमारे वंश के मान का मंदिर है। क्या हम इसे मिट्टी में मिलने देंगे ?

दूसरा साथी : किंतु यह तो नकली बूंदी है।

वीरसिंह : धिक्कार है तुम्हें। नकली बूंदी भी हमें प्राणों से अधिक प्रिय है। जिस जगह एक भी हाड़ा है, वहाँ बूंदी का अपमान आसानी से नहीं किया जा सकता। आज महाराणा आश्चर्य के साथ देखेंगे कि यह खेल केवल खेल ही नहीं रहेगा। यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि सिसौदियों और हाड़ाओं के खून से लाल हो जायेगी।

तीसरा साथी : लेकिन सरदार, हम लोग महाराणा के नौकर हैं। क्या महाराणा के विरुद्ध तलवार उठाना हमारे लिए उचित है ? हमारा शरीर महाराणा के नमक से बना है। हमें उनकी इच्छा में व्याघात नहीं पहुँचाना चाहिए।

वीरसिंह : और जिस जन्मभूमि की धूल में खेलकर हम बड़े हुए हैं, उसका अपमान भी कैसे सहन किया जा सकता है ?

पहला साथी : निश्चय ही जहाँ बूंदी हैं, वहाँ पर हाड़ा है और जहाँ पर हाड़ा हैं, वहाँ पर बूंदी है। कोई नकली बूंदी का भी अपमान नहीं कर सकता। जन्मभूमि हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

वीरसिंह : मेरे वीरों ! तुम अग्नि कुल के अंगारे हो। अपने वंश की आभा को क्षीण न होने देना। प्रतिज्ञा करो कि प्राणों के रहते हम इस नकली दुर्ग पर मेवाड़ की राजपताका को स्थापित न होने देंगे।

सब लोग : हम प्रतिज्ञा करते हैं कि प्राणों के रहते इस दुर्ग पर मेवाड़ का ध्वज न फहराने देंगे।

वीरसिंह : मुझे आप लोगों पर अभिमान है और बूंदी आप जैसे पुत्रों को पाकर फूली नहीं समाती। जिस बूंदी में ऐसे मान के धनी पैदा होते हैं, उस पर संसार आशीर्वाद के साथ फूल बरसा रहा है। चलो, हम दुर्ग रक्षा की तैयारी करें।

(सबका प्रस्थान। पट परिवर्तन।)

### चौथा दृश्य

(स्थान - बूंदी के नकली दुर्ग का बंद द्वार। महाराणा लाखा और अभयसिंह का प्रवेश।)

महाराणा : सूर्य डूबने को आया। यह कैसी लज्जा की बात है कि हमारी सेना बूंदी के नकली दुर्ग पर अपना झंडा स्थापित करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी ? वीरसिंह और उनके मुट्ठी भर साथी अभी तक वीरतापूर्वक लड़ रहे हैं।

अभयसिंह : हाँ महाराणा, हम तो समझते थे कि घड़ी दो-घड़ी में यह खेल खत्म हो जाएगा, लेकिन हमें छूँछे वारों का मुकाबला करने के बजाय हाड़ाओं के अचूक निशानों का सामना करना पड़ा।

महाराणा : यह भी अच्छा हुआ कि हमारे इस खेल में भी कुछ वास्तविकता आ गई।

अभयसिंह : मैंने जब दुर्ग से अग्निवर्षा होती देखी तो मुझे कुछ आश्चर्य हुआ था। कुछ क्षणों के लिए सफेद झंडा फहराकर मैंने युद्ध को रोक दिया था। उसके बाद मैं स्वयं दुर्ग में गया और वीरसिंह की उसके साहस के लिए प्रशंसा की, साथ ही उससे अनुरोध किया कि तुम व्यर्थ प्रयास में अपने प्राण न खोओ। तुम महाराणा के नौकर हो। तुम्हें

उनके विरुद्ध हथियार न उठाने चाहिए, किंतु उसने उत्तर दिया कि महाराणा ने हाड़ाओं को चुनौती दी है। हम इस चुनौती का उत्तर देने को मजबूर हैं। महाराणा यदि हमारे प्राण लेना चाहते हैं तो खुशी से ले लें। लेकिन हम इतने कायर और निष्प्राण नहीं हैं कि अपनी आँखों से बूंदी का अपमान होते हुए देखें। मेवाड़ में जब तक एक भी हाड़ा है, नकली बूंदी पर भी बूंदी की ही पताका फहराएगी।

महाराणा : निश्चय ही इन वीरों का जन्मभूमि के प्रति आदरभाव सराहनीय है। यह मैं जानता हूँ कि इन लोगों के प्राणों की रक्षा का कोई उपाय नहीं। इतने बहुमूल्य प्राण लेकर भी मुझे प्रतिज्ञा पूरी करनी पड़ेगी। वह देखो, दुर्ग की उस दरार में खड़ा हुआ वीरसिंह कितनी फुर्ती से बाणवर्षा कर रहा है। अकेला ही हमारे सैकड़ों सैनिकों की टोली को आगे बढ़ने से रोके हुए है। धन्य हैं ऐसे वीर, धन्य है वह माँ जिसने ऐसे वीर पुत्र को जन्म दिया। धन्य है वह भूमि जहा पर ऐसे सिंह पैदा होते हैं।

( जोर का धमाका और प्रकाश होता है। )

महाराणा : अरे देखो अभयसिंह, गोले के वार से वीरसिंह के प्राण पखेरू उड़ गए। बूंदी के मतवाले सिपाही सदा के लिए सो गए। अब हम विजयश्री प्राप्त कर सके। जाओ, दुर्ग पर मेवाड़ की पताका फहराओ और वीरसिंह के शव को आदर के साथ यहाँ ले आओ।

( अभयसिंह का प्रस्थान )

महाराणा : आज इस विजय में मेरी सबसे बड़ी पराजय हुई है, व्यर्थ के दंभ ने आज कितने ही निर्दोष प्राणों की बलि ले ली।

( चारणी का प्रवेश )

चारणी : महाराणा, अब तो आपकी आत्मा को शांति मिल गई होगी। अब तो आपने अपने सिर के कलंक का टीका धो लिया। यह देखो बूंदी के दुर्ग पर मेवाड़ के सेनापति विजयपताका फहरा रहे हैं। वह सुनिश्च, मेवाड़ की सेना में विजय दुंदुभि बज रही है।

महाराणा : चारणी, क्यों पश्चाताप से विकल प्राणों को तुम और दुःखी करती हो ? न जाने किस बुरी सायत में मैंने बूंदी को अपने अधीन करने का निश्चय किया था। वीरसिंह की वीरता ने मेरे हृदय के द्वार खोल दिए हैं, मेरी आँखों पर से पर्दा हटा दिया है। मैं देखता हूँ ऐसी वीर जाति को अधीन करने की अभिलाषा करना पागलपन है।

चारणी : तो क्या महाराणा, अब भी मेवाड़ और बूंदी के हृदय मिलाने का कोई रास्ता नहीं निकल सकता ?

( वीरसिंह के शव के साथ अभयसिंह का प्रवेश )

महाराणा : ( शव के पास बैठते हुए ) चारणी, इस शहीद के चरणों के पास बैठकर मैं अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ, किन्तु क्या बूंदी के राव तथा हाड़ावंश का प्रत्येक राजपूत आज की इस दुर्घटना को भूल सकेगा ?

( राव हेमू का प्रवेश )

राव हेमू : क्यों नहीं, महाराणा ! हम युग-युग से एक हैं और रहेंगे। आपको यह जानने की आवश्यकता थी कि राजपूतों में न कोई राजा है, न कोई महाराजा। सब देश, जाति और वंश की मान रक्षा के लिए प्राण देने वाले सैनिक हैं। हमारी तलवार अपने ही स्वजनों पर न उठनी चाहिए। बूंदी के हाड़ा सुख और दुःख में सदा से चितौड़ के सिसौदियों के साथ रहे हैं और रहेंगे। हम सब राजपूत अग्नि के पुत्र हैं, हम सब के हृदय में एक ही ज्वाला जल रही है कि हम कैसे एक-दूसरे से पृथक हो सकते हैं। वीरसिंह के बलिदान ने हमें जन्मभूमि का मान करना सिखाया है।

महाराणा : निश्चय ही महाराज ! हम संपूर्ण राजपूत जाति की ओर से इस अमर आत्मा के आगे अपना मस्तक झुकाएँ।

( सब बैठकर वीरसिंह के शव के आगे झुकते हैं। )

पटाक्षेप

### शब्दार्थ-टिप्पणी

नाज़ गर्व तरकस तीर जिसमें रखते हैं वह

### मुहावरे

खाल मोटी होना संवेदनहीन होना तीर तरकस से निकलना समय निकल जाना फूला न समाना प्रसन्न होना मिट्टी में मिलाना बर्बाद करना आँखों से परदा हटाना सच सामने आना खेल खत्म होना समाप्त होना

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) चित्तौड़ के महाराणा लाखा में कौन-सी शक्ति है ?
- (2) प्रत्येक राजपूत को किस पर नाज है ?
- (3) हमारे देश के टुकड़े-टुकड़े क्यों हुए थे ?
- (4) महाराणा लाखा को अपनी आत्मा क्यों धिक्कार रही थी ?
- (5) महाराणा किस कलंक को धोना चाहते हैं ? क्यों ?
- (6) महाराणा ने क्या प्रतिज्ञा की ?
- (7) चारणी किसकी शुभचिंतक है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) महाराणा लाखा क्यों चिंतित और व्यथित हैं ?
- (2) सूर्यवंशियों के वचन में क्या विशेषता है ?
- (3) महाराणा को प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए चारणी ने क्या उपाय बताया ?
- (4) खेल में वास्तविकता होनी चाहिए - ऐसा अभयसिंह ने क्यों कहा ?
- (5) वीरसिंह ने अपने साथियों से क्या प्रतिज्ञा करवाई ? क्यों ?
- (6) वीरसिंह ने कैसी वीरता दिखाई ?
- (7) महाराणा लाखा का चरित्र - चित्रण कीजिए।

#### 3. सन्धि-विच्छेद कीजिए :

- (1) निश्चिंत, व्यर्थ, संतोष, आशीर्वाद

### योग्यता-विस्तार

- देशप्रेम से संबंधित कविताओं का संकलन कीजिए।
- जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' ढूँढ़कर पढ़िए।





सेठ गोविन्ददास

( जन्म : सन् 1896 ई. ; निधन : सन् 1974 ई. )

नाट्य-लेखक के रूप में प्रसिद्ध सेठ गोविन्ददास का जन्म जबलपुर के एक संपन्न, वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी परिवार में हुआ था। उन्होंने घर पर ही अंग्रेजी, संस्कृत एवं हिन्दी की शिक्षा प्राप्त की थी। गाँधीजी के प्रभाव से उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सा लिया जेल गये और काफी साहित्य जेल में लिखा। देश आजाद होने के बाद संसद सदस्य भी बने। राजभाषा के रूप में हिन्दी का पुरजोर समर्थन उन्होंने किया।

उन्होंने पौराणिक आख्यानों पर आधारित अनेक नाटक लिखे। कुलीनता, विश्वप्रेम, प्रकाश, सिद्धांत स्वातंत्र्य, भूदान, नवरस, कर्ण, कर्तव्य आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। उनके एकांकी संग्रह हैं - सप्तरश्मि, एकादशी, चतुष्पथ तथा पंचमहाभूत। 'इंदुमती' नामक एक वृहद् उपन्यास भी उन्होंने लिखा है। सेठ गोविन्ददास को पद्मभूषण सम्मान भी प्राप्त हुआ।

'मकदूम बख्श' नामक रेखाचित्र में एक साधारण व्यक्ति के गुण-दोषों का बड़ी ईमानदारी से चित्रण किया गया है। उसके बाह्य एवं भीतरी व्यक्तित्व का चित्रात्मक शैली में यथार्थ वर्णन हुआ है। एक चुस्त वैष्णव परिवार के विशाल अस्तबल की संपूर्ण जिम्मेदारी सँभालने वाला यह मुसलमान शख्स उस परिवार का अभिन्न अंग बनकर रह रहा है, यह अपने आप में अनुकरणीय है। बग्घी-सवारी और जीन-सवारी में उसकी बराबरी करने वाला दूर-दूर तक कोई नहीं था। उसमें एक ही दुर्गुण था और वह था शराब पीना। शराब पीकर जब वह बेहोश हो जाता तो सुल्तान दूल्हे नामक चाबुक की मार पड़ने से ही उसे होश आता। इस बात का वह कभी बुरा भी न मानता था। लेखक ने इस वैष्णव परिवार के साथ-साथ सारे जबलपुर शहर के धार्मिक-सांप्रदायिक सौहार्द का भी उल्लेख किया है। रेखाचित्र की प्रायः सभी विशेषताएँ इस रचना में मिल जाती हैं।

कोई साठ वर्ष पहले की बात है, मेरी उम्र पाँच-छः वर्ष की रही होगी। उसके कुछ वर्ष पूर्व मेरे पितामह गोकुलदासजी को अंग्रेज सरकार ने राजा की उपाधि दी थी, जो उस समय ब्रिटिश गवर्नमेन्ट द्वारा दी जाने वाली उपाधियों में सबसे बड़ी उपाधि मानी जाती थी। वे उस समय के मध्य प्रदेश के सबसे बड़े जमींदार थे और सामंतशाही के उस काल में जो शान-शौकत थी, वह इस राजा के खिताब से हमारे घर में बहुत बढ़ गयी थी। शान-शौकत के प्रदर्शन के कुछ प्रमुख मार्ग निश्चित हैं, उनमें प्राचीनकाल से लेकर अब तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है — आलीशान निवास-स्थान और सवारी इन प्रदर्शनों में प्रमुख हैं। हमारा मकान अब एक महल बन गया था। जिस काल की मैं चर्चा कर रहा हूँ, उस समय सवारी के लिए घोड़ों का बड़ा महत्त्व था। मोटरकारों के इस जमाने में भी शान-शौकत के कामों में तो अभी भी घोड़ों का ही उपयोग होता है। हमारे देश के राजकीय कामों के लिए राष्ट्रपति की सवारी घोड़ों की छकनी पर ही निकलती है, जिसके आगे-पीछे घुड़सवार रहते हैं। हमारे देश में ही नहीं, इंग्लैण्ड आदि देशों का भी यही हाल है। हमारे अस्तबल में उस समय कोई तीन सौ बग्घी और जीन-सवारी के घोड़े रहते थे और अस्तबल जिनके जिम्मे था, वे थे मकदूम बख्श।

यह आदमी एकदम आबनूस के रंग के सदृश काले रंग का था। उस रंग में इसकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें थीं। कद छः फुट से अधिक ही होगा और जितनी ऊँचाई थी, उतनी ही मोटाई भी। काले रंग की दाढ़ी थी, जो छाती पर न फैलकर बड़े ढंग से सँवारी जाकर राजपूती दाढ़ी के सदृश कानों में लिपटी रहती थी। मकदूम बख्श बग्घी चलाने और जीन-सवारी दोनों के विशेषज्ञ थे। बग्घी के काम के घोड़े उस वक्त आस्ट्रेलियन बेलर नस्ल के सबसे अच्छे माने जाते थे और जीन-सवारी के काठियावाड़ तथा मारवाड़ नस्ल के। जिस नस्ल के घोड़े घुड़दौड़ में या पोलो में काम आते हैं, वे हमारे यहाँ नहीं थे। हमारे यहाँ की शान-शौकत के लिए बग्घी और जीन-सवारी के घोड़े ही उपयोगी थे। मकदूम बख्श छः घोड़ों की गाड़ी के कोच-बक्स पर बैठकर बड़ी शान से चलाते थे। कोच-बक्स पर वे जरा तिरछे होकर बैठते थे और जो वर्दी वे पहनते थे, उसमें सिर पर लुंगी बाँधी जाती थी। यह वर्दी और लुंगी जरी की रहती थी। इस छकड़ी के सिवा चद्दर नाम की एक गाड़ी में चार-चार घोड़ों की

चार कतारों में सोलह घोड़े जोते जाते थे। लेकिन यह पोस्टेलियन होती थी। याने एक-एक जोड़ी घोड़ों पर एक-एक कोचवान रहता था अर्थात् सोलह घोड़े को यह आठ कोचवान चलाते थे परन्तु ये आठों कोचवान मकदूम बख्श की मातहत में रहते थे। जीन-सवारी व घोड़ों की फेरी भी मकदूम बख्श करते थे। उनमें से कई घोड़े नाचते और कई लंगूरी चाल से चलते थे। मकदूम बख्श इन जीन सवारी के घोड़ों पर स्वयं बैठ और किसी को नचाते तथा किसी को लंगूरी चाल से चलाते थे। अपने इस हुनर में मकदूम बख्श दूर-दूर तक विख्यात थे। अनेक बार वे आसपास की रियासत में भी बुलाये जाते थे। इनमें दो रियासतें प्रमुख थीं—एक रीवाँ और दूसरी दौर। वहाँ से वे बड़ी-बड़ी सौगातें लेकर लौटते थे। परन्तु जब वे लौटते तो वे सारी सौगातें पहले पिताजी के सामने रखी जातीं और तब वे इन्हें लेते। दृष्टि से मकदूम बख्श बड़े भरोसे वाले और ईमानदार आदमी माने जाते थे। हमारा कुटुम्ब वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी है। हमारे कुटुम्ब का एक मन्दिर भी था। मेरे पितामह, पिताजी और हम सभी वैष्णव हैं। लेकिन उस काल में अलग-अलग धर्म मानने वालों का भी परस्पर जो सम्बन्ध था, वह अनुकरणीय था। मकदूम बख्श मुसलमान रहते हुए भी हमारे घर के ऊँचे से ऊँचे कर्मचारियों में से एक थे।

परन्तु इनमें एक बहुत बड़ा दोष था। कई बार ये शराब के नशे में बेहोश तक हो जाते थे। हमारे घर की शान-शौकत बढ़ाने में मेरे पिताजी का प्रधान हाथ था। उनका खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन सभी ऊँचे से ऊँचा था। घोड़ों का यह शौक पिताजी को ही था और घोड़ों का क्या, ऐसा शौक ही कौन-सा था जो उनको न हो। वे बड़े प्रखर स्वभाव के थे। उनके पास एक बड़ा-सा चाबुक रहता था जिसे वे सुलतान दूल्हा कहते थे। उस चाबुक का यह नाम सारे जबलपुर में विख्यात हो गया था। यह सुलतान दूल्हा जानवरों पर न चल, इन्सानों पर चलता था। मकदूम बख्श का नशा इस सुलतान दूल्हे से उतरता था। साठ वर्ष बीत जाने पर भी मकदूम बख्श पर चलने वाले इस सुलतान दूल्हे के सड़ाकों की आवाज अभी भी अनेक बार मेरे कानों में गूँज उठती है। उस जमाने में मेरे पिताजी ही नहीं, अनेक जमींदार, ताल्लुकेदार और आला अफसरस से लेकर पुलिस इन्सपेक्टर और पुलिस के सिपाही तक, जब किसी पर कुपित होते, सुलतान दूल्हा जैसे ही चाबुकों से निरीह लोगों की चमड़ी चीथा करते थे। गरीबों से बेगार लेते और न जाने क्या-क्या ! हुक्मअदूली तो उस जमाने में बर्दाश्त के बाहर की बात होती। ऐसे अनेक लोगों को जिनके पास दौलत होती या कोई सरकारी ओहदा, वक्त-बे-वक्त और बात-बात पर अपना यह शौक पूरा करने का कोई कानूनन अधिकार न होते हुए भी भरपूर आज्ञादी रहती थी और मातहत कर्मचारी अथवा गरीब मजदूर इस प्रकार मार खाने के अभ्यस्त भी हो चुके थे। उग्र-एतराज तो होता ही नहीं और न बाद में कोई सुनवाई। मकदूम बख्श का नशा चाहे इस सुलतान दूल्हे से उतर जाता हो और जिन पर इस प्रकार के प्रहार होते, उन्हें भले ही मोटी-मोटी इनामें देकर इसका परिमार्जन भी कर दिया जाता हो, किन्तु किसी का नशा उतारने अथवा किसी भी कारण या अकारण ही एक मानव द्वारा दूसरे मानव पर अपने कोप का यह स्वरूप आचरण की दृष्टि से वीभत्स ही माना जायेगा। मानव के इसी आचरण का परिणाम यह हुआ कि जमाना बदला और उसने किसी का नशा उतारने के लिए सुलतान दूल्हा जैसे चाबुक का प्रयोग करने वाले वर्ग का ही आज नशा उतार दिया। उस जमाने में अपने मातहत कर्मचारियों अथवा किसी श्रमिक मजदूर पर सुलतान दूल्हे का प्रयोग करना जितना आसान था, आज के जमाने में प्रयोग की तो कौन कहे, उसकी कल्पना भी उतनी ही भयावह है।

जबलपुर में हिन्दुओं का दशहरा और मुसलमानों का मुहर्रम दोनों त्योहार बड़े धूम-धाम से मनाये जाते हैं। उस समय हिन्दुओं के इस त्योहार में मुसलमान और मुसलमानों के इस त्योहार में हिन्दू बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। इन दोनों ही त्योहारों पर मकदूम बख्श की अध्यक्षता में हमारे घोड़ों की बगिचियाँ और ये नाचने तथा लंगूरी चलने वाले घोड़े जुलूसों व सवारियों में निकलते थे। इन त्योहारों के सिवा जबलपुर की ब्याह-शादियों में भी इन बगिचियों और इन घोड़ों की बड़ी माँग रहती थी। सभी जगह अपनी आकृति और हुनर के कारण मकदूम बख्श का बड़ा भारी जलवा रहता था। उस समय वे एक व्यक्ति ही नहीं, एक प्रकार की संस्था बन गये थे।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

**छकनी** घोड़ों द्वारा खींची जानेवाली गाड़ी **आबनूस** तेंदू नामक एक जंगली पेड़ **सादृश्य** समान **वर्दी** गणवेश **मातहती** नीचे **हुनर** कला **हुक्म अदूली** आदेश का पालन करना **बर्दाश्त** सहन करना **ओहदा** पद **उग्र-एतराज** आपत्ति न होना **परिमार्जन** निखारना

## स्वाध्याय

### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) अंग्रेज सरकार ने किसे और क्या उपाधि दी ?
- (2) सामंतशाही काल में पितामह की शानो-शौकत क्यों बढ़ गई ?
- (3) तत्कालीन समाज में किस सवारी का सर्वाधिक महत्व था, क्यों ?
- (4) मकदूम बख्श क्या काम करते थे ?
- (5) बगधी के लिए कौन से घोड़े सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे ?
- (6) मकदूम बख्श के वर्दी की क्या विशेषता थी ?
- (7) मकदूम बख्श अन्य रियासतों में भी क्यों प्रसिद्ध थे ?
- (8) मकदूम बख्श का सबसे बड़ा दोष क्या था ? उनका नशा कैसे उतारा जाता था ?
- (9) सुल्तान-दूल्हे से आप क्या समझते हैं ?

### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) मकदूम बख्श के किन गुणों और किन दुगुणों का उल्लेख किया गया है ?
- (2) अन्य रियासतों से प्राप्त सौगातों को मकदूम बख्श सबसे पहले किसके सामने रखते थे ? क्यों ?
- (3) लेखक के अनुसार चाबुक की मार वीभत्स क्यों है ?
- (4) हिन्दू-मुस्लिम त्योहारों पर मकदूम बख्श की क्या भूमिका रहती थी ?
- (5) मकदूम बख्श के चरित्र पर प्रकाश डालिए ?

### 3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

“उस काल में अलग-अलग धर्म मानने वालों का भी परस्पर जो सम्बन्ध था, वह अनुकरणीय था।”

## योग्यता-विस्तार

- ‘धार्मिक सहिष्णुता’ पर निबंध लिखिए।
- ‘दमन किसी समस्या का निराकरण नहीं है’ – कक्षा में चर्चा कीजिए।

●

जैनेन्द्र कुमार

( जन्म : सन् 1905 ई. ; निधन : सन् 1988 ई. )

जैनेन्द्रजी का जन्म अलीगढ़ के कौड़ियागंज में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा हस्तिनापुर के ब्रह्मचर्य आश्रम में हुई। कुछ समय बाद वे दिल्ली में आकर बस गए और यहाँ असहयोग आंदोलन में जुड़कर पढ़ाई छोड़ दी। गाँधी दर्शन से वे बहुत प्रभावित हुए। सामाजिक चिन्तन के क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए उन्होंने कई निबंध भी लिखे। हिन्दी कथा-साहित्य में वे मनोवैज्ञानिकता के पक्ष को लेकर प्रवेश करते हैं। मानव-मन के रहस्यों एवं ग्रंथियों का विश्लेषण उनके कथा साहित्य की प्रमुख पहचान बनी। उन्हें व्यक्ति के अंतर्मन के कलाकार के रूप में पहचाना गया।

जैनेन्द्रजी के प्रमुख उपन्यास हैं - परख, त्यागपत्र, कल्याणी, सुनीता, सुखदा तथा विवर्त आदि। उनके कहानी संग्रहों में फाँसी, वातायन, नीलम देश की राज कन्या, एक रात, पाजेब तथा दो चिड़ियाँ प्रमुख हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में नारी-चरित्रों की बड़ी संख्या है। नारी चरित्रों, सामाजिक-मानसिक स्थितियों एवं उनकी अंतरंग चारित्रिक विशेषताओं का उन्होंने सूक्ष्म निरूपण किया है। सुनीता, सुनंदा, मृणाल उनके अविस्मरणीय चरित्र हैं।

प्रस्तुत कहानी में क्रांतिकारी पति के उपेक्षापूर्ण आचरण से पीड़ित एक पतिव्रता नारी की मनोवेदना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। कहानी की नायिका सुनंदा की पीड़ा दोहरी है। वह एक माँ भी है और पति की लापवाही के कारण उचित दवा-दारू के अभाव में अपने बच्चे को खो बैठी है। बच्चे की अकालमृत्यु की पीड़ा उसके मन को हर पल उद्वेलित करती रहती है। फिर भी पत्नी और माँ के रूप में दोहरी मार झेल रही सुनंदा अपने पति की छोटी-छोटी बातों का ख्याल रखती हुई भारतीय नारी के संस्कारों का परिचय देती है।

शहर के एक ओर एक तिरस्कृत मकान। दूसरा तल्ला। वहाँ चौके में एक स्त्री अँगीठी सामने लिए बैठी है। अँगीठी की आग राख हुई जा रही है। वह जाने क्या सोच रही है। उसकी अवस्था बीस-बाईस के लगभग होगी। देह से कुछ दुबली है और संभ्रांत कुल की मालूम होती है।

एकाएक अँगीठी में राख होती हुई आग की ओर स्त्री का ध्यान गया। घुटनों पर हाथ देकर वह उठी। उठकर वह कुछ कोयले लाई। कोयले अँगीठी में डालकर फिर किनारे ऐसे बैठ गई, मानो याद करना चाहती है कि 'अब क्या करूँ?' घर में और कोई नहीं है और समय बारह से ऊपर हो गया है।

दो प्राणी इस घर में रहते हैं, पति और पत्नी। पति सवेरे से गए लौटे नहीं और पत्नी चौके में बैठी है।

सुनंदा सोचती है-नहीं, सोचती कहाँ है, अलसभाव से वह तो वहाँ बैठी ही है। सोचने को है तो यही कि कोयले न बुझ जाएँ। वह जाने कब आएँगे। एक बज गया है कुछ हो, आदमी को अपनी देह की फिक्र तो करनी चाहिए, और सुनंदा बैठी है। वह कुछ कर नहीं रही है। जब वह आएँगे तब रोटी बना देगी। वह जाने कहाँ-कहाँ देर लगा देते हैं। और कब तक बैठूँ ! मुझसे नहीं बैठा जाता। कोयले भी लहक आए हैं। और उसने झल्लाकर तवा अँगीठी पर रख दिया। नहीं अब यह रोटी बना ही लेगी। उसने जोर से खीझकर आटे की थाली सामने खींच ली और रोटी बेलने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने जीने पर पैरों की आहट सुनी। उसके मुख पर कुछ तल्लीनता आई। क्षण-भर वह आभा उसके चेहरे पर रहकर चली गई। फिर उसी भाँति काम में लग गई।

कालिंदीचरण (पति) आए। उनके पीछे-पीछे तीन और उनके मित्र भी आए। वे आपस में बातें करते चले आ रहे थे। और खूब गर्म थे। कालिंदीचरण मित्रों के साथ सीधे अपने कमरे में चले गए। उनमें बहस छिड़ी थी। कमरे में पहुँचकर रुकी हुई बहस फिर छिड़ गई। ये चारों व्यक्ति देशोद्धार के संबंध में बहुत कटिबद्ध हैं। चर्चा उसी सिलसिले में चल रही है। भारत माता को स्वतंत्र कराना होगा—और नीति-अनीति, हिंसा-अहिंसा को देखने का यह समय नहीं है। मीठी बातों का परिणाम बहुत

देखा। मीठी बातों से बाघ के मुँह से अपना सिर नहीं निकाला जा सकता। उस वक्त बाघ को मारना ही एक इलाज है। आतंक ! हाँ आतंक ! हमें क्या आतंकवाद से डरना होगा ? लोग हैं जो कहते हैं, आतंकवादी मूर्ख हैं, वे बच्चे हैं। हाँ, वे हैं बच्चे और मूर्ख। उन्हें बुजुर्गी और बुद्धिमानी नहीं चाहिए। हमें नहीं अभिलाषा अपने जीने की। हमें नहीं मोह बाल-बच्चों का। हमें नहीं गर्ज धन-दौलत की। तब हम मरने के लिए आजाद क्यों नहीं हैं ? जुल्म होगा ही। उससे वे डरें जो डरते हैं। डर हम जवानों के लिए नहीं है।

फिर वे चारों आदमी निश्चय करने में लगे कि उन्हें खुद क्या करना चाहिए। इतने में कालिंदीचरण को ध्यान आया कि न उसने खाना खाया है, न मित्रों को खाने के लिए पूछा है। उसने अपने मित्रों से माफी माँगकर छुट्टी ली और सुनंदा की ओर चला।

सुनंदा जहाँ थी, वहाँ है, वह रोटी बना चुकी है। अँगूठी के कोयले उल्टे तवे से दबे हैं। माथे को उँगलियों पर टिकाकर वह बैठी है। बैठी-बैठी सूनी-सी देख रही है। सुन रही है कि उसके पति कालिंदीचरण अपने मित्रों के साथ क्यों और क्या बातें कर रहे हैं। उसे जोश का कारण समझ में नहीं आता। उत्साह उसके लिए अपरिचित है। वह उसके लिए कुछ दूर की वस्तु है, स्पृहणीय और मनोरम और हरियाली। वह भारत माता की स्वतंत्रता को समझना चाहती है पर उसको न भारतमाता समझ में आती है न स्वतंत्रता समझ में आती है। उसे उन लोगों की इस जोरों की बातचीत का मतलब ही समझ में नहीं आता। फिर भी, उत्साह की उसमें बड़ी भूल है। जीवन की हौंस उसमें बुझती-सी जा रही है, पर वह जीना चाहती है। उसने बहुत चाहा है कि पति उससे भी कुछ देश की बात करे। उसमें बुद्धि तो जरा कम है, फिर धीरे-धीरे क्या वह भी समझने नहीं लगेगी ? सोचती है, कम पढ़ी हूँ, तो इसमें मेरा ऐसा कसूर क्या है ? अब तो पढ़ने को मैं तैयार हूँ, लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है। खैर, उसने सोचा है, उसका काम तो सेवा है। बस, यह मानकर जैसे कुछ समझने की चाह ही छोड़ दी है। वह अनायास भाव से पति के साथ रहती है और कभी उनकी राह के बीच में आने को नहीं सोचती ! वह एक बात जान चुकी है कि उसके पति ने अगर आराम छोड़ दिया है, घर का काम छोड़ दिया है, जान-बूझकर उखड़े-उखड़े और मारे-मारे जो फिरते हैं, इसमें वे कुछ भला ही सोचते होंगे। इसी बात को पकड़कर वह आपत्ति-शून्य भाव से पति के साथ विपदा-पर-विपदा उठाती रही है। पति ने कहा भी है कि तुम मेरे साथ क्यों दुःख उठाती हो, पर सुनकर वह चुप रह गई है, सोचती रह गई है कि जिसे 'सरकार' कहते हैं, वह सरकार उनके इस तरह के कामों से बहुत नाराज है। सरकार सरकार है। उसके मन में कोई स्पष्ट भावना नहीं है कि 'सरकार' क्या होती है, पर यह जितने हाकिम लोग हैं, वे बड़े जबरदस्त होते हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी ताकतें हैं। इतनी फौज, पुलिस के सिपाही और मजिस्ट्रेट और मुंशी और चपरासी और थानेदार और वायसराय ये सरकार के ही हैं। इन सबसे कैसे लड़ा जा सकता है ? हाकिम से लड़ना ठीक बात नहीं है, पर यह उसी लड़ने में तन-मन बिसार बैठे हैं। खैर, लेकिन ये सब-के-सब इतने जोर से क्यों बोलते हैं ? उसको यही बहुत बुरा लगता है। सीधे-सादे कपड़ों में एक खुफिया पुलिस का आदमी हरदम उनके घर के बाहर रहता है। ये लोग इस बात को क्यों भूल जाते हैं ? इतने जोर से क्यों बोलते हैं ?

बैठे-बैठे वह इसी तरह की बातें सोच रही है। देखो, अब दो बजेंगे। उन्हें न खाने की फिक्र न मेरी फिक्र। मेरी तो खैर कुछ नहीं, पर अपने तन का ध्यान तो रखना चाहिए। ऐसी बेपरवाही से तो बच्चा चला गया। उसका मन कितना भी इधर-उधर डोले, पर अकेली जब होती है, तब भटक-भटककर वह मन अंत में उसी बच्चे के अभाव पर आ पहुँचता है। तब उसे बच्चे की वही-वही बातें याद आती हैं, -वे बड़ी प्यारी आँखें, अँगुलियाँ और नन्हे-नन्हे होंठ याद आते हैं-अठखेलियाँ याद आती हैं। सबसे ज्यादा उसका मरना याद आता है। ओह ! यह मरना क्या है। इस मरने की तरफ उससे देखा नहीं जाता। यद्यपि वह जानती है कि मरना सबको है - उसको मरना है, उसके पति को मरना है; पर उस तरफ भूल से छन-भर देखती है, तो भय से भर जाती है। यह उससे सहा नहीं जाता। बच्चे की याद उसे मथ उठती है। यह विहल होकर आँख पोंछती है और हठात् इधर-उधर की किसी काम की बात में अपने को उलझा लेना चाहती है, पर अकेले में वह कुछ करे, रह-रहकर वही वह याद-वही वह मरने की बात उसके सामने ही रहती है और उसका चित्त बेबस हो जाता है।

वह उठी। अब उठकर बरतनों को माँज डालेगी, चौका भी साफ करना है। आह ! खाली बैठी मैं क्या सोचती रहा करती हूँ।

इतने में कालिंदीचरण चौके में घुसे।

सुनंदा कठोरतापूर्वक शून्य को ही देखती रही। उसने पति की ओर नहीं देखा।

कालिंदी ने कहा, "सुनंदा, खानेवाले हम चार हैं। खाना हो गया ?"

सुनंदा चून की थाली और चकला-बेलन और बटलोई वगैरह खाली बरतन उठाकर चल दी, कुछ भी बोली नहीं।

कालिंदी ने कहा, “सुनती हो, तीन आदमी मेरे साथ और हैं। खाना बन सके तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे।”

सुनंदा कुछ भी नहीं बोली। उसके मन में बेहद गुस्सा उठने लगा। वे उससे क्षमाप्रार्थी-से क्यों बात कर रहे हैं, हँसकर क्यों नहीं कह देते कि कुछ और खाना बना दो। जैसे मैं गैर हूँ। अच्छी बात है, तो मैं भी गुलाम नहीं हूँ कि इनके ही काम में लगी रहूँ। मैं कुछ नहीं जानती खाना-वाना। और वह चुप रही।

कालिंदीचरण ने जरा जोर से कहा, “सुनंदा !”

सुनंदा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को खूब जोर से फेंक दे। किसी का गुस्सा सहने के लिए वह नहीं है। उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे-बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति की और भलाई की बातें सोच रही थी। इस वक्त भीतर-ही-भीतर गुस्से से घुटकर रह गई।

“क्यों ! बोल नहीं सकती ?”

सुनंदा नहीं ही बोली।

“तो अच्छी बात है। खाना कोई भी नहीं खाएगा।”

यह कहकर कालिंदी तैश में पैर पटकते हुए लौटकर चले गए।

कालिंदीचरण अपने दल में उग्र नहीं समझे जाते, किसी कदर उदार समझे जाते हैं। सदस्य अधिकतर अविवाहित हैं, कालिंदीचरण विवाहित ही नहीं हैं, वह एक बच्चा खो चुके हैं। उनकी बात का दल में आदर है। कुछ लोग उनके धीमेपन पर रुष्ट भी हैं। वह दल में विवेक के प्रतिनिधि हैं और उत्ताप पर अंकुश का काम करते हैं।

बहुत इतनी बात पर थी कि कालिंदी का मत था कि हमें आतंक को छोड़ने की ओर बढ़ना चाहिए। आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है, या उसके भय से दबा रहता है। दोनों ही स्थितियाँ श्रेष्ठ नहीं हैं। हमारा लक्ष्य बुद्धि को चारों ओर से जगाना है, उसे आतंकित करना नहीं। सरकार व्यक्ति के और राष्ट्र के विकास के ऊपर बैठकर उसे दबाना चाहती है। हम इसी विकास के अवरोध को हटाना चाहते हैं-इसी को मुक्त करना चाहते हैं। आतंक से वह काम नहीं होगा। जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारने और उसमें कर्तव्य-भावना का प्रकाश जगाने का है। हम स्वीकार करें कि मद उसकी टक्कर खाकर, चोट पाकर ही उतरेगा। यह चोट देने के लिए हमें अवश्य तैयार रहना चाहिए, पर यह नोचा-नोची उपयुक्त नहीं। इससे सत्ता का कुछ बिगड़ता तो नहीं, उल्टे उसे अपने औचित्य पर संतोष हो आता है।

पर जब (सुनंदा के पास से) लौटकर आया, तब देखा गया कि कालिंदी अपने पक्ष पर दृढ़ नहीं है। वह सहमत हो सकता है कि हाँ, आतंक जरूरी भी है। “हाँ”, उसने कहा, “यह ठीक है कि हम लोग कुछ काम शुरू कर दें।” इसके साथ ही कहा, “आप लोगों को भूख नहीं लगी है क्या? उनकी तबीयत खराब है, इससे यहाँ तो खाना बना नहीं। बताओ क्या किया जाए? कहीं होटल चलें ?”

एक ने कहा कि कुछ बाजार से यहीं मँगा लेना चाहिए। दूसरे की राय हुई कि होटल ही चलना चाहिए। इसी तरह की बातों में लगे थे कि सुनंदा ने एक बड़ी थाली में खाना परोसकर उनके बीच ला रखा। रखकर वह चुपचाप चली गई। फिर आकर पास ही चार गिलास पानी रख दिए और फिर उसी भाँति चुपचाप चली गई।

कालिंदी को जैसे किसी ने काट लिया।

तीनों मित्र चुप हो रहे। उन्हें अनुभव हो रहा था कि पति-पत्नी के बीच स्थिति में कहीं कुछ तनाव पड़ा हुआ है। अंत में एक ने कहा, “कालिंदी, तुम तो कहते थे, खाना नहीं है ?”

कालिंदी ने झेंपकर कहा, “मेरा मतलब था, काफी नहीं है।”

दूसरे ने कहा, “बहुत काफी है। सब चल जाएगा।”

“देखूँ, कुछ और हो तो,” कहकर कालिंदी उठ गया।

आकर सुनंदा से बोला, “यह तुमसे किसने कहा था कि खाना वहाँ ले आओ ?

मैंने क्या कहा था ?!”

सुनंदा कुछ न बोली।

“चलो, उठाकर लाओ थाली। हममें किसी को यहाँ नहीं खाना है। हम होटल जाएँगे।”

सुनंदा नहीं बोली। कालिंदी भी कुछ देर गुम खड़ा रहा। तरह-तरह की बातें उसके मन में और कंठ में आती थीं। उसे अपना अपमान मालूम हो रहा था, और अपमान उसे असह्य था।

उसने कहा, “सुनती नहीं हो कि कोई क्या कह रहा है ! क्यों ?”

सुनंदा ने और मुँह फेर लिया।

“क्या मैं बकते रहने के लिए हूँ ?”

सुनंदा भीतर-ही-भीतर घुट गई।

“मैं पूछता हूँ कि जब मैं कह गया था, तब खाना ले जाने की क्या जरूरत थी ?”

सुनंदा ने मुड़कर और अपने को दबाकर धीमे से कहा, “खाओगे नहीं ? एक तो बज गया।”

कालिंदी निरस्त्र होने लगा। यह उसे बुरा मालूम हुआ। उसने मानो धमकी के साथ पूछा, “खाना और है ?”

सुनंदा ने धीमे से कहा, “अचार लेते जाओ।”

“खाना और नहीं है ? अच्छा, लाओ अचार।”

सुनंदा ने अचार ला दिया और लेकर कालिंदी भी चला गया।

सुनंदा ने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। उसे यह सूझा ही न था कि उसे भी खाना है। अब कालिंदी के लौटने पर उसे जैसे मालूम हुआ कि उसने अपने लिए कुछ भी बचाकर नहीं रखा है। वह अपने से रुष्ट हुई। उसका मन कठोर हुआ; इसलिए नहीं कि उसने खाना क्यों नहीं बचाया। इस पर तो उसमें स्वाभिमान का भाव जागता था। मन कठोर यों हुआ कि वह इस तरह की बातें सोचती ही क्यों है ? छिः ! यह भी सोचने की बात है ! और उसमें कड़वाहट भी फैली। हठात् यह उसके मन को लगता ही है कि देखो, उन्होंने एक बार भी नहीं पूछा कि तुम क्या खाओगी ! क्या मैं यह सह सकती थी कि मैं तो खाऊँ और उनके मित्र भूखे रहें, पर पूछ लेते तो क्या था। इस बात पर उसका मन टूटता-सा है। मानो उसका जो तनिक-सा मान था, वह भी कुचल गया हो। पर वह रह-रहकर अपने को स्वयं अपमानित कर लेती हुई कहती है कि छिः ! छिः ! सुनंदा, तुझे ऐसी जरा-सी बात का अब तक खयाल होता है ! तुझे खुश होना चाहिए कि उनके लिए एक रोज भूखे रहने का तुझे पुण्य मिला। मैं क्या उन्हें नाराज करती हूँ ? अब से नाराज न करूँगी, पर वह अपने तन की भी सुध तो नहीं रखते ! यह ठीक नहीं है। मैं क्या करूँ ! और वह अपने बरतन माँजने में लग गई। उसे सुन पड़ा कि वे लोग फिर जोर-शोर से बहस करने में लग गए हैं। बीच-बीच में हँसी के कहकहे भी उसे सुनाई दिए। ‘ओह !’ सहसा उसे खयाल हुआ, “बरतन तो पीछे भी मल सकती हूँ, लेकिन उन्हें कुछ जरूरत हुई तो ?” यह सोच, झटपट हाथ धो वह कमरे के दरवाजे के बाहर दीवार से लगकर खड़ी हो गई।

एक मित्र ने कहा, “अचार और है ? अचार और मँगाओ यार !”

कालिंदी ने अभ्यासवश जोर से पुकारा, “अचार लाना भई, अचार !” मानो सुनंदा कहीं बहुत दूर हो, पर यह तो बाहर द्वार से लगी खड़ी ही थी। उसने चुपचाप अचार लाकर रख दिया।

जाने लगी, तो कालिंदी ने तनिक स्निग्ध वाणी से कहा, “थोड़ा पानी भी लाना।” और सुनंदा ने पानी ला दिया। देकर लौटी और फिर बाहर द्वार से लगकर ओट में खड़ी हो गई। जिससे कालिंदी कुछ माँगे, तो जल्दी से ला दे।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

तिरस्कार उपेक्षित, त्यागा हुआ संभ्रान्त कुलीन फिक्र चिन्ता, परवाह आभा चमक, कांति अभिलाषा इच्छा स्पृहणीय इच्छित मनोरम सुन्दर हौंस इच्छा विह्वल गद्गद् होना हठात् जबरदस्ती, जबरन तैश क्रोध रुष्ट नाराज, अप्रसन्न उत्ताप क्रोध स्निग्ध स्नेह

मुहावरे

गद्गद् होना - अति प्रसन्न होना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

- (1) सुनन्दा के झल्लाने और खीझने का कारण क्या था ?
- (2) सुनन्दा अन्यमनस्क-सी बैठी क्या सोच रही है ?
- (3) जीने में पैरों की आहट सुनते ही सुनन्दा का चेहरा क्यों खिल उठा ?
- (4) कालिंदीचरण और उसके मित्र किस विषय पर और क्यों बहस कर रहे थे ?
- (5) पति कालिंदीचरण की बातें सुनन्दा की समझ से परे क्यों हैं ?
- (6) कालिंदीचरण आतंक को छोड़ने के पक्ष में क्यों हैं ?
- (7) सरकार के विषय में सुनन्दा की सोच क्या है ?
- (8) कालिंदीचरण खाना खाने से इन्कार क्यों करते हैं ?
- (9) 'बाघ को मारना ही एक इलाज है' - कालिंदी चरण ऐसा क्यों कहते हैं ?

2. उत्तर लिखिए :

- (1) दल में कालिंदीचरण की छवि कैसी है ?
- (2) कालिंदीचरण राष्ट्र में किस प्रकार की स्वतंत्रता चाहते हैं ?
- (3) सुनन्दा के चरित्र पर प्रकाश डालिए ?
- (4) पति-पत्नी के आन्तरिक सम्बन्धों में तनाव का क्या कारण है ? स्पष्ट कीजिए।

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) "सोचती है कम पढ़ी हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर है। अब तो पढ़ने को तैयार हूँ लेकिन पत्नी के साथ पति का धीरज खो जाता है।"
- (2) "आतंक से विवेक कुंठित होता है और या तो मनुष्य उससे उत्तेजित ही रहता है या उसके भय से दबा रहता है।"
- (3) "जो शक्ति के मद में उन्मत्त है, असली काम तो उसका मद उतारना और उसमें कर्तव्य-भावना का प्रकाश जगाना है।"

4. मुहावरे का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

- (1) गद्गद् होना
- (2) गले लगाना

5. सन्धि विच्छेद कीजिए :

देशोद्धार, तल्लीन, यद्यपि, निरस्त्र

योग्यता-विस्तार

- स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित कहानियाँ पढ़िए।
- 'नारी-शिक्षा' पर आधारित कोई नाटक प्रस्तुत कीजिए।

●



कथाकार-नाटककार भीष्म साहनी का जन्म पाकिस्तान के रावलपिंडी नामक शहर में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा लाहौर में हुई। पीएच.डी. करने के बाद दिल्ली के जाकिर हुसैन कॉलेज में अंग्रेजी के अध्यापक के रूप में काम किया। उन्हें नाट्य-लेखन एवं मंचन की प्रेरणा अपने बड़े भाई बलराज साहनी से प्राप्त हुई।

‘बसंती’, ‘कड़ियाँ’, ‘झरोखे’ तथा ‘तमस’ उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। शोभायात्रा, भाग्येरखा, वाड्चू, भटकती राख, पटरियाँ उनके कहानी संग्रह हैं। उनके मंचीय नाटक हैं - हानूश और कबिरा खड़ा बजार में। सांप्रदायिक वैमनस्य एवं वर्गभेद-जनित स्थितियों का यथार्थ चित्रण इनकी रचनाओं में हुआ है। युगीन परिवेश के यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं की विशिष्ट उपलब्धि है। ‘तमस’ के लिए उन्हें साहित्य अकादमी, दिल्ली का पुरस्कार प्राप्त हुआ। ‘तमस’ पर से हिन्दी धारावाहिक भी बना था।

‘राजस्थान के एक गाँव की तीर्थ यात्रा’ में तिलोनिया नामक गाँव की यात्रा एवं गाथा का वर्णन रिपोर्ताज शैली में किया गया है। इस आदर्श और नमूनेदार गाँव में बने स्वावलंबी केन्द्र का विस्तृत परिचय दिया गया है। यह केन्द्र गाँव के लोगों को पारंपरिक शिल्प तथा अन्य उपलब्ध साधनों के इस्तेमाल द्वारा आत्मनिर्भर बनाना सिखाता है। यहाँ वर्षों के जल-संग्रह और उसके संरक्षण की अद्भुत व्यवस्था है। वर्षा के संचित जल और सौर ऊर्जा द्वारा बिजली प्राप्त की जाती है। रात्रि पाठशालाओं द्वारा लोगों को शिक्षित किया जाता है। लेखक को लगता है कि गाँवों को इसी तरह स्वच्छ एवं स्वावलंबी बनाकर गाँवों के सपनों का भारत निर्मित हो सकता है।

मुझे मालूम नहीं था कि भारत में ‘तिलोनिया’ नाम की भी कोई जगह है जहाँ हमारे देश के समसामयिक इतिहास का एक विस्मयकारी पन्ना लिखा जा रहा है। किसी बड़े शहर में रहते हुए हम केवल अखबार द्वारा ही देश-विदेश के बारे में अपनी जानकारी हासिल करते हैं। और आजकल तो इस जानकारी से मन अशांत और क्षुब्ध ही होता है। दिल्ली में से निकलने का एक कारण तो इस अखबारी माहौल से निकलने की तीव्र इच्छा थी। यों, बला की गरमी पड़ रही थी, यहाँ तक कि जिस किसी से कहो कि हम लोग राजस्थान जा रहे हैं तो झट से यही सुनने को मिलता, “पगला गए हो क्या? इतनी गरमी में राजस्थान जाओगे?”

उस वक्त तक तिलोनिया के बारे में मुझे इतनी ही जानकारी थी कि वहाँ पर एक स्वावलंबी विकास केन्द्र चल रहा है, जिसे स्थानीय ग्रामवासी, स्त्री-पुरुष मिलजुलकर चला रहे हैं। बस, इतना ही और मैं वहाँ अपने किसी प्रयोजन से भी नहीं जा रहा था। मैं अपने वास्तुकार दामाद के साथ जिन्हें वहाँ अपना कोई काम था, मात्र एक साथी के नाते जा रहा था।

मुंबई को जाने वाली जरनैली सड़क को छोड़कर हमारी जीप एक तंग राजस्थानी सड़क पर आ गई थी। मतलब साफ़, समतल सड़क को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ पर आ गई थी। पर यहाँ भी दूर-दूर तक कुछ दिखाई नहीं देता था, केवल सपाट मैदान, कँटीली झाड़ियों के झुरमुट और दोपहर का बोझिल वातावरण। लगता था, हवा में पिघला काँच घुला है। फिर सहसा ही हमारी जीप ने एक मोड़ काटा और हम तिलोनिया की छोटी-सी बस्ती में थे।

बस्ती क्या थी, कुछ पुराने और कुछ नए छोटे-छोटे घरों का झुरमुट थी। पुराने घर तो अंग्रेजों के ज़माने के जान पड़ते थे। बाद में पता चला था कि वहाँ कभी तपेदिक के रोगियों का स्वास्थ्यगृह रहा था। शेष घर नए-नए बने जान पड़ते थे, चारों ओर चुप्पी थी और दोपहर की अलसाहट। धीरे-धीरे तिलोनिया के राज खलने लगे। पहली जानकारी तो भोजन पर बैठते समय ही हो गई जब एक सज्जन मेरे हाथ धुला रहे थे।

“जहाँ पर हम खड़े हैं, उसके नीचे एक तालाब है। हम लोग तालाब की छत पर खड़े हैं।” मैं अभी दाँएँ-बाएँ, उस छिपे हुए तालाब का जायज़ा ले ही रहा था जब वह कहने लगे, “इस ताल में बारिश का पानी इकट्ठा होता रहता है। बरसात के दिनों

में छतों पर से गिरने वाला जल सीधा इस ताल में चला जाता है। ऐसे ही बहुत से ताल हमने जगह-जगह बना रखे हैं।”

इससे पहले कि मैं उनसे कुछ पूछूँ, उन्होंने मेरे चेहरे के भाव से ही मेरे सवाल को समझ लिया होगा। कहने लगे, “इस बारिश के पानी को हम साफ़ कर लेते हैं। उसे पीते हैं, उस पानी से अपनी खेती-बाड़ी करते हैं। राजस्थान की धरती तो जल के लिए तरसती है ना। अब तो ऐसे ही एक सौ दस ताल हमने अपने इस इलाके में जगह-जगह बना रखे हैं। हमारे स्कूलों और सामुदायिक केन्द्रों में जल-संरक्षण व संग्रहण की व्यवस्था कर दी गई है। यहाँ तिलोनिया में जल के संरक्षण का प्रबंध बहुत पहले कर लिया गया था।”

“इस संस्थान की स्थापना कब हुई थी?” मैंने पूछा। “1972 में” वह बोले, फिर कुछ याद करते हुए से कहने लगे, “यह वह ज़माना था जब जगह-जगह अनेक युवाजन अपनी पहलकदमी पर कुछ नया कर दिखाना चाहते थे जो देश के विकास के लिए हितकर हो। अनेक स्थानों पर, अपने-अपने विचारानुसार अनेक प्रयोग किए गए। उनमें से एक यह भी था। ऐसी मंडलियाँ, मुख्यतः गाँव को ही केन्द्र में रखकर अपने प्रयोग करना चाहती थीं और अक्सर लोग-बाग़ उनकी खिल्ली उड़ाया करते थे कि पिछड़े हुए गाँवों में जाकर क्या करोगे? यह प्रयोग निश्चय ही सफल हुआ।”

वह कह रहे थे, “इसका गठन किया था, बंकर राय नाम के एक सुशिक्षित व्यक्ति ने। वे अपने साथ एक टाइपिस्ट और एक फ़ोटोग्राफ़र को लेकर यहाँ चले आए थे। यही उनकी मंडली थी। यह 1972 की बात है। सरकार से उन्होंने लीज़ पर 45 एकड़ सरकारी ज़मीन ली, साथ में तपेदिक के मरीजों के लिए किसी ज़माने में बनाए गए सेनेटोरियम के 21 छोटे-मोटे मकान थे। ज़मीन को एक रुपया महीना के हिसाब से लीज़ पर लिया और अपने संस्थान की स्थापना कर दी। संस्थान का नाम था — सामाजिक कार्य तथा शोध संस्थान (एस.डबल्यू.आर.सी.)। उन दिनों तिलोनिया गाँव की आबादी दो हजार की रही होगी।”

मेरे मन में संशय उठने लगे थे। आज के ज़माने में वैज्ञानिक उपकरणों और जानकारी के बल पर ही तरक्की की जा सकती है। उससे कटकर या उसकी अवहेलना करते हुए नहीं की जा सकती। एक पिछड़े हुए गाँव के लोग अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझा लेंगे, यह नामुकिन था। पर वह सज्जन कहे जा रहे थे — “हमारे गाँव आज नहीं बसे हैं। इन गाँवों में शताब्दियों से हमारे पूर्वज रहते आ रहे हैं। पहले जमाने में भी हमारे लोग अपनी सूझ और पहलकदमी के बल पर ही अपनी दिक्कतें सुलझाते रहे होंगे। ज़रूरत इस बात की है कि हम शताब्दियों की इस परंपरागत जानकारी को नष्ट नहीं होने दें। उसका उपयोग करें।” फिर मुझे समझाते हुए बोले — “हम बाहर की जानकारी से भी पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं, पर हम मूलतः स्वावलंबी बनना चाहते हैं, स्वावलंबी, आत्मनिर्भर।”

वह सज्जन अपने प्रयासों की चर्चा कर रहे थे और मुझे बार-बार गांधी जी के कथन याद आ रहे थे। मैंने गांधी जी का जिक्र किया तो वह बड़े उत्साह से बोले — “आपने ठीक ही कहा है। यह संस्थान गांधी जी की मान्यताओं के अनुरूप ही चलता है — सादापन, कर्मठता, अनुशासन, सहभागिता। यहाँ सभी निर्णय मिल-बैठकर किए जाते हैं। आत्मनिर्भरता...।”

“आत्मनिर्भरता से क्या मतलब?” “आत्मनिर्भरता से मतलब कि ग्रामवासियों की छिपी क्षमताओं को काम में लाया जाए। और गांधी जी के अनुसार, ग्रामवासी अपनी अधिकांश बुनियादी ज़रूरत की वस्तुओं का उत्पादन स्वयं करें...।” मैं बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह कह रहे थे — “कोई भी काम हाथ में लेने से पहले सभी ग्रामवासियों का प्रतिनिधित्व करने वाली बैठक बुलाई जाती है। ग्रामवासियों की अपनी समिति चुनी जाती है, जिसमें गरीब लोगों तथा महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है, विशेष रूप से दलित तथा गरीब महिलाओं को। हमारे संस्थान का मूल आशय गाँव की दरिद्र जनता की मूलभूत ज़रूरतों को पूरा करने के लिए परंपरागत जानकारी और व्यावहारिक अनुभव के आधार पर, साझे प्रयासों द्वारा, गाँव की अर्थव्यवस्था का विकास करना है। हमारे बहुत से काम बाहर के विशेषज्ञों और स्थानीय ग्रामवासियों के साझे प्रयास से हुए। पर उनके निर्णय और संचालन में आधारभूत भूमिका स्थानीय ग्रामवासियों की ही रही है...।”

हाथ-मुँह धोकर हम लोग भोजन कक्ष की ओर बढ़ गए। बरामदे में ही एक ओर पानी के बहुत से नल लगे थे। “यह किस काम के लिए?” मैंने पूछा तो वह सज्जन हँस दिए। “भोजन कक्ष में बैठने वाले लोग, भोजन करने के बाद अपने बरतन यहीं पर साफ़ करते हैं। यहाँ नौकर-चाकर नहीं हैं।” भोजन कक्ष में अनेक ग्रामवासी पुरुष-स्त्रियाँ बैठे भोजन कर रहे थे। सारा

प्रबंध प्रथानुसार फ़र्शी था। बड़े आनंद से भोजन किया। पास बैठे लोगों की भाषा तो समझ में नहीं आती थी, पर उनके लहजों से बड़ा स्निग्ध-सा अपनापन झलकता था।

भोजन के बाद हमने भी बरतन घोए और ठिकाने पर रखे। पानी के ताल के पास हम फिर से खड़े थे जब मैंने पूछा — “ताल के जल का उपयोग क्या आप और भी किसी काम के लिए करते हैं?” वह झट से बोले — “इससे बिजली पैदा करते हैं। इसी जल से हम बिजली निकालकर घरों को रोशनी पहुँचाते हैं।” मैं चौंका, बारिश के पानी को साफ़ करके पिया जा सकता है, खेती-बाड़ी के काम में भी लाया जा सकता है, पर बिजली? “वह कैसे?” “सूर्य की ऊर्जा से।” अब की बार मेरे लिए यकीन करना कठिन हो रहा था। पर सहसा ही मुझे याद आया कि भोजन करते समय, छत पर से लटकता बिजली का पंखा चल रहा था।

वह कह रहे थे — “सूर्य की ऊर्जा से मिलने वाली बिजली चकाचौंध तो नहीं करती, पर घरों में रोशनी पहुँचा जाती है। पंखे भी चल जाते हैं। किसी सीमा तक टेलीविजन के परदे पर चलचित्र भी देखने को मिल जाते हैं। हमारी ज़रूरतें किसी हद तक पूरी हो जाती हैं। इसी मूल लक्ष्य से प्रेरित होकर इस संस्थान की स्थापना हुई थी कि हम स्वावलंबी हों।”

फिर बड़े उत्साह से कहने लगे — “तिलोनिया गाँव में स्थित लगभग साठ हजार वर्ग फुट पर फैला हुआ इस संस्था का नया परिसर पूरी तरह सौर-ऊर्जा से चालित है। काफ़ी गहराई से पानी खींचने के पंप तथा अनेक कंप्यूटरों की व्यवस्था सौर-ऊर्जा द्वारा ही की जाती है...।” मैं मन-ही मन फिर से चौंका ! क्या इस जगह कम्प्यूटर भी पहुँच गए हैं? पर वह बराबर बताए जा रहे थे, “और उनकी देख-रेख और व्यवस्था मुख्यतः हमारे ग्रामीण सदस्य ही करते हैं। उनमें से अनेक इस काम में प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। अब हमारी रात्रि पाठशालाओं में सौर-ऊर्जा से ही रोशनी मिलती है।”

“रात्रि पाठशालाओं से क्या मतलब? क्या यहाँ रात के वक्त पाठशालाओं में पढ़ाई होती है?” “जी, ऐसा ही है। दिन के वक्त गाँव के लड़के-लड़कियाँ खेती-बाड़ी या घर के काम में लगे रहते हैं — पशु चराना, बकरियों की देखभाल आदि। शाम पड़ने पर वे लोग पाठशाला में पहुँच जाते हैं। संस्थान ऐसे 150 स्कूल चला रहा है।” वह गर्व से बोले, “और इनमें 70 प्रतिशत लड़कियाँ पढ़ती हैं। हमारे यहाँ एक रात्रि पाठशाला भील जाति के बच्चों के लिए विशेष रूप से खोली गई है। संस्थान द्वारा चलाए जाने वाले 150 स्कूलों में से एक स्कूल भील बच्चों के लिए है।”

फिर कुछ याद करते हुए से, मुसकराने लगे। “जिन दिनों हमारे यहाँ जल-संरक्षण की व्यवस्था नहीं थी और दूरदराज गिने-चुने कुएँ थे तो गाँव की लड़कियाँ दिनभर घड़े उठाए, पानी की खोज में भटकती रहती थीं। अब किसी भी लड़की को पानी के लिए भटकना नहीं पड़ता। अब ये हँसती-चहकती हुई पाठशाला में पढ़ने आती हैं।” कहते हुए उनके चेहरे पर उपलब्धियों भरी मुस्कान उभर आई थी। फिर वह उसी गर्वीली आवाज़ में कहने लगे — “हमारे संस्थान ने सौर-ऊर्जा से चलने वाले बिजलीघर, राजस्थान में ही नहीं, भारत के आठ राज्यों में भी चालित किए हैं।”

यह भी मेरे लिए चौंकाने वाली बात थी। वह सज्जन, अपने पपोटों पर अँगुली चलाते हुए उन राज्यों के नाम गिनाने लगे, “राजस्थान के अतिरिक्त, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, बिहार, असम तथा सिक्किम।.. अब तो हमारे यहाँ अनेक राज्यों के ग्रामवासी ऊर्जा के प्रशिक्षण के लिए आते हैं। मैं आपको अपनी प्रयोगशाला दिखाऊँगा। वे लोग यहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त कर, अपने गाँवों में लौटकर सौर-ऊर्जा की व्यवस्था करते हैं। लद्दाख जैसी जगह में लगभग 900 परिवारों को इन प्रयासों से सौर-ऊर्जा का लाभ मिला।” फिर वह बताने लगे — “सौर-ऊर्जा की दिशा में हमारा पहला प्रयास 1984 में हुआ था, जब हम लोग संस्थान के चिकित्सा केन्द्र के लिए सौर-ऊर्जा का उपयोग करना चाहते थे। और जब उपकरण लग गया तो संस्थान के लोगों ने ही उसकी देख-रेख का दायित्व अपने ऊपर ले लिया।” कहते हुए वह सज्जन फिर से मुस्कुरा दिए।

“यहीं से हमारे पहले सौर ऊर्जा इंजीनियर तैयार होने लगे। हमारा उद्देश्य रहता है कि हम आत्मनिर्भर हों। हमारे यहाँ नल-मिस्त्री ही नहीं, घरों के नक्शे बनाने वाले तथा राज मिस्त्री, सौर-ऊर्जा की देखभाल करने वाले, धातु के काम करने वाले, सभी अपने लोग हैं। और उनमें कुछ तो निरक्षर हैं। हमारा सबसे बड़ा शिल्पी निरक्षर है, जिसने गृहनिर्माण के काम में सबसे अधिक योगदान दिया।” जहाँ पर लोग खड़े थे, जलाशय से कुछ ही दूरी पर, एक गोलाकार छत वाली छोटी-सी इमारत की ओर इशारा करते हुए बोले, “वह गोलाकार गुंबदनुमा छत वाली इमारत भी हमारे अपने कारीगरों की देन है।”

फिर, मेरे बाजू पर हाथ रख कर बोले — “इसका यह मतलब नहीं कि हम, शहरों में रहने वाले सुशिक्षित विशेषज्ञों से दूर रहते हैं। हरगिज़ नहीं। उनका सहयोग लेते हैं, उस सहयोग का स्वागत करते हैं। यहाँ का बहुत कुछ साझे प्रयास की ही देन है। परंतु हम मूलतः अपनी क्षमताओं को ही बढ़ाते रहना चाहते हैं ताकि बात-बात पर बाहर के लोगों का मुँह नहीं जोहना पड़े। वास्तव में हमारे लोग बड़ी कुशलता से उपकरणों को चलाना सीख लेते हैं।”

अर्धगोलाकार गुंबद वाले छोटे से भवन के निकट ही मुझे एक चबूतरा-सा नज़र आया, जो बहुत ऊँचा तो नहीं था, पर मुझे लगा जैसे वह नाटक खेलने का मंच हो। किसी भी नाट्यगृह का मंच मुझे चुम्बक की तरह खींचता है। मैंने उसकी ओर इशारा किया, तो वह सज्जन बोले — “पर हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि पुतलियों का खेल दिखाने की रही है, जो हमारे यहाँ बड़े लोकप्रिय हैं।”

फिर वह पुतलियों की चर्चा करने लगे — “पुतलियों का तमाशा मात्र मनोरंजन का ही माध्यम नहीं है। वह प्रचार-प्रसार का, विचार-विमर्श का और भी अधिक सक्षम माध्यम है। गाँव-गाँव में, जहाँ शिक्षा से वंचित लोग रहते हैं, वहाँ पुतलियों के तमाशे के माध्यम से हम उनके जीवनयापन की चर्चा करते हैं, उनकी समस्याओं की भी। कभी-कभी तो तमाशे के दौरान ही देखने वालों के बीच बहस चल पड़ती है। पुतलियों के तमाशे से राजा-रानी की प्रेम कहानी ही नहीं सुनाई जाती, वहाँ ग्रामीण लोगों की समस्याओं—उधार लेने की समस्या, ऋण की अदायगी, छूतछात आदि ग्रामीण जीवन से संबद्ध अनेक मसलों पर विचार-विनिमय कर सकते हैं। इस तरह पुतलियों के तमाशों के द्वारा हम निरक्षर ग्रामवासियों को अधिक सचेत कर सकते हैं। इसी भाँति गाँव की स्त्रियों को पेश आने वाली समस्याओं के बारे में भी — उनकी सेहत-तंदुरुस्ती के बारे में, उनके अधिकारों के बारे में, उनकी पगार के बारे में (उन्हें भी मर्दों के बराबर पगार मिले), स्त्रियों के साथ की जाने वाली ज़्यादातियों के बारे में, बच्चों की देखभाल के बारे में आदि अनेक बातों को लेकर चर्चा होने लगती है। इतना ही नहीं, खेती-बाड़ी से जुड़ी अनेक योजनाओं की चर्चा की जाती है। पुतलियों का तमाशा इस तरह, एक बहुत बड़ी सामाजिक भूमिका निभाता है। पर इसका यह मतलब नहीं कि केवल विचार-विमर्श के लिए पुतलियों के तमाशे दिखाए जाते हैं। साथ में संगीत, सहगान, कितना कुछ रहता है।” वह बड़े उत्साह से कहे जा रहे थे।

तभी संस्थान का कोई व्यक्ति, जो कोई कारीगर लगता था किसी ज़रूरी काम से उन्हें मिलने आया। वह कुछ समय तक, किसी स्थानीय समस्या को लेकर उसके साथ बतियाते रहे। जब वह चला गया तो कहने लगे — “यह खराद पर काम करने वाला मिस्त्री है। मामूली पढ़ा-लिखा है, पर बहुत होशियार है। आपको एक किस्सा सुनाऊँ। बहुत दिन पहले की बात है, लगभग 1980 के आस-पास की। हमारे यहाँ कुएँ में से पानी खींचने के थोड़े से पंप लगे थे। पर जब कोई पंप बिगड़ जाता तो मुसीबत पड़ जाती कि उसकी मरम्मत कौन करे। फिर हमारे अपने लोगों ने पहलकदमी की और पंप ठीक करने का काम सीख लिया। अब हम तो संतुष्ट हो गए। पर यह समस्या केवल हमारी ही नहीं थी। पूरे राज्य में हज़ारों की संख्या में जल खींचने के पंप लगे थे। इस समस्या को सुलझाने के लिए हमारे संस्थान ने राज्य सरकार को सुझाव दिया कि वह इस काम के लिए बेरोज़गार युवकों को भरती कर ले और उन्हें ट्रेनिंग देकर नल ठीक करने का काम सिखा दे। इस पर पढ़े-लिखे इंजीनियर तो बहुत बिगड़े, पर राज्य सरकार हमारे संस्थान का सुझाव मान गई। आप सच मानिए, राज्य में ऐसे ही 600 के करीब ‘बेरोज़गार’ युवक इस समय राज्य के कुल 15,000 नलों की देख-रेख कर रहे हैं।”

हमारे यहाँ हर बात का फ़ैसला यहाँ के ग्रामीण लोग ही करते हैं। कोई छिपाव-दुराव नहीं है। प्रत्येक काम सबका साझा काम है, हर काम का दिशा-निर्देश यहाँ के लोग करते हैं। संस्थान में काम करने वालों में 90 प्रतिशत हमारे ग्रामीण लोग ही हैं। वे अपने काम के लिए अपना मनपसंद काम चुन लेते हैं, हमने अपनी ही पहलकदमी पर छोटे-छोटे दो-दो कमरों के घर बनवाए हैं। निर्माण के लिए पत्थर, शिलाएँ, सीमेंट, गारा-चूना, बजरी, ईट आदि लगभग सारा सामान हमें गाँव से ही उपलब्ध हो गया। और ऐसे ही पानी के ताल के निर्माण के लिए भी जिसमें चार लाख लीटर वर्षा का जल, हर साल इकट्ठा किया जा सकता है। और अब तक इतने ताल बनाए जा चुके हैं जिनमें लगभग दो करोड़ लीटर जल इकट्ठा किया जा सकता है।”

अब हम संस्थान के विभिन्न भागों का दौरा कर रहे थे। मेरे लिए, हर पग पर कोई-न-कोई चौंकाने वाली बात थी। वास्तव में मुझे ऐसे किसी संस्थान का दौरा करने का अवसर ही नहीं मिला था, रंगशाला, शिल्पशालाएँ, वेधशाला जिसमें विभिन्न प्रदेशों

से आए शिक्षार्थी प्रशिक्षण ले रहे थे जिसमें बहुत-सी लड़कियाँ भी थीं। फिर हम चलते-चलते संस्थान के पुस्तकालय में जा पहुँचे। हमने अभी पुस्तकालय में कदम रखा ही था कि एक सज्जन सैंकड़ों पुस्तकों से भरी अलमारियों में से दो-तीन पुस्तकें निकालकर मेरी ओर चले आ रहे थे। वह मेरी ही पुस्तकें उठाए हुए थे। मुझे, निश्चय ही बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ और पुस्तकों को देखकर लगता भी था कि कुछ पाठकों ने इन्हें पढ़ा भी है।

उसी पुस्तकालय में एक युवती छोटे से मंच पर अपने सामने कंप्यूटर रखे उस पर काम कर रही थी। वह भी गाँव की ही लड़की थी जो पढ़-लिखकर कंप्यूटर पर हिसाब-किताब का काम करने लगी थी। उस ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में उसे कंप्यूटर पर काम करते देखकर निश्चय ही बड़ा अच्छा लगा। संस्थान अपने कार्यकलाप में जहाँ अतीत से जुड़ता था और परंपरागत अनुभवों-प्रथाओं से लाभ उठाना चाहता था, वहाँ वर्तमान और भविष्य से भी जुड़ता था, अपनी दृष्टि में भविष्योन्मुखी था।

पुस्तकालय में से निकले ही थे कि और बड़ा सुखद अनुभव हुआ। एक विकलांग युवती, बैसाखियों के सहारे, बरामदे की ओर चली आ रही थी। कोई ग्रामीण लड़की ही रही होगी, पर खिला-खिला चेहरा, साफ़-सुथरे कपड़े, चेहरे पर झलकता आत्मविश्वास, हलकी-सी मुस्कुराहट। मानो संस्थान में आए लोगों का स्वागत कर रही हो। उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। उसे देखकर मुझे लगा जैसे उसके चेहरे पर खिली आत्मविश्वास भरी मुस्कुराहट इसी संस्थान की देन है जिसने यहाँ के लोगों को अपने व्यक्तित्व का बोध कराया है। पुस्तकालय से निकलकर हम लोग अब एक सभागार में प्रवेश कर रहे थे। बड़ा-सा हॉल, कमरा, फ़र्श पर दरियाँ, छत पर से लटकते पंखे चल रहे थे, और सभागार संस्थान के सक्रिय कार्यकर्ताओं, ग्रामीण पुरुषों-स्त्रियों से भरा था।

मैं कुछ-कुछ अपने ही आग्रह पर यहाँ पहुँच गया था, संस्थान के कार्यकलाप का पहलू देखने के लिए। क्योंकि न तो मुझे विचाराधीन विषय की जानकारी थी, और यदि यह जानकारी होती भी तो भी मेरे पल्ले कुछ भी पढ़ने वाला नहीं था, क्योंकि उनका विचार-विमर्श अपनी स्थानीय बोली में चलने वाला था। पर फिर भी मेरे लिए देखने-जानने को बहुत कुछ था।

सभागार में ग्रामीण स्त्रियाँ-पुरुष बैठे थे, स्त्रियाँ प्रथानुसार एक ओर, पुरुष दूसरी ओर। बातचीत बड़े औपचारिक ढंग से चल रही थी। एक बूढ़ी अम्मा, हाथ पसार-पसार कर अपना तर्क सुना रही थीं। जिस तरह हाथ पसार रही थी मुझे लगा बड़ी गर्मजोशी में बोल रही हैं, पर फिर स्वयं ही कभी-कभी अपने पोपले मुँह पर हाथ रखकर हँसने लगती थीं... मैं देश की जनतंत्रात्मक पद्धति की एक गर्वीली इकाई का कार्यकलाप देख रहा था। बहुत कुछ देखा था, जो सचमुच स्फूर्तिदायक था, प्रेरणाप्रद था। मुझे अपने कमरे की ओर ले जाते हुए संस्थान के प्रतिनिधि मुझे संस्थान की मूल अवधारणाओं के बारे में बता रहे थे। यहाँ काम करने वाले अधिकतर लोग गाँव के ही युवक-युवतियाँ थे जिन्होंने पाँचवीं कक्षा से लेकर बारहवीं कक्षा तक की तालीम पाई थी। फिर अभ्यासवश अपने पपोटों पर ऊँगली चलाते हुए बोले — “यहाँ सभी को मान्यता मिलती है, परंतु यदि प्राथमिकता दी जाती है तो गरीब ग्रामीणों को, स्त्रियों को और निम्न जाति के लोगों को।”

यहाँ कोई बड़ा या छोटा नहीं है। यहाँ सभी सीखना चाहते हैं, सीखने के इच्छुक हैं। गांधी जी के कथनानुसार, गाँव का कोई भी मामूली पढ़ा-लिखा व्यक्ति कोई-न-कोई हुनर सीख सकता है। उसके लिए शहरी शिक्षा की डिग्रियाँ लेने की कोई जरूरत नहीं है। यहाँ पैसे के प्रलोभन के लिए कोई स्थान नहीं है। धन बटोरने की इच्छा से यहाँ कोई काम नहीं करता। नंगे पाँव चलने वाले इस संस्थान में हर प्रकार की पहलकदमी को प्रोत्साहित किया जाता है। यहाँ स्त्रियों को समानाधिकार प्राप्त हैं। यहाँ भी गांधी जी के कथनानुसार वे किसी से पीछे नहीं हैं, मामूली पढ़ाई कर चुकने पर भी स्त्रियाँ, बड़ी कुशलता से कंप्यूटर पर काम कर रही हैं, पानी के नल मरम्मत कर रही हैं, सौर-ऊर्जा के उपकरण लगा रही हैं, और पानी के तालों की व्यवस्था कर रही हैं। और सामान्यतः उनका काम पुरुषों की तुलना में इक्कीस ही है, बीस नहीं।

संस्थान में व्यक्ति को रचनात्मक तथा सकारात्मक विकास के लिए सुविधाएँ प्राप्त होंगी। संस्थान देश के संविधान के अनुरूप और अहिंसा से प्रेरित साधनों द्वारा सामाजिक न्याय को क्रियान्वित करेगा। संस्थान ऐसी टेक्नालॉजी को मान्यता नहीं देगा, जिससे लोगों की रोज़ी-रोटी पर बुरा असर पड़े।”

दूसरे दिन प्रातः अपने शहर लौटने से पहले, संस्थान के डायरेक्टर श्री बंकर राय से घड़ी भर के लिए मिलने का सु-अवसर मिला, पिछले तीस वर्ष से वे इस संस्थान का संचालन करते आ रहे थे, और उन्होंने इसे एक विरल, प्रतिष्ठित,

ख्याति-प्राप्त संस्था का रूप दिया था। कोई भी व्यक्ति जो गरीब ग्रामवासियों की क्षमताओं को इतनी लगन और निष्ठा के साथ निर्माण कार्यों में लगा सकता है, वह निश्चय ही श्रद्धा का पात्र है।

उन्हीं से मिलने पर पता चला कि उस संस्थान की, जिसे उन्होंने और उनके सहकर्मियों ने नंगे पाँव आगे बढ़ने वाले संस्थान की संज्ञा दे रखी थी, ख्याति अब दूर-दूर तक पहुँचने लगी है। कुछ ही समय पहले इस संस्थान को अंतर्राष्ट्रीय संस्था, आगा खॉ फ़ाउंडेशन द्वारा बहुत बड़े पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। दिल्ली की ओर हमारी जीप बढ़ने लगी है। तिलोनिया पीछे छूट चुका है। पर बार-बार मन में एक ही वाक्य उठता है कि तिलोनिया का भविष्य और भी अधिक उज्वल हो, देश में एक तिलोनिया नहीं, बीसियों, सैंकड़ों विलोनिया उठ खड़े हों — देश की गरीब जनता का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ाने वाले, देश को प्रगति के पथ पर ले जाने वाले।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

**समसामयिक** आजकल का **जरनैली** मुख्य सड़क **फर्शी** जमीन पर बैठने की व्यवस्था **पपोटे** पलकें **विमर्श** विवेचन **रंगशाला** नाट्यशाला

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) राजस्थान में क्यों बहुत गरमी होती है ?
- (2) राजस्थान की सड़कों और वातावरण का वर्णन कीजिए ?
- (3) जलसंग्रहण के लिए तिलोनिया के लोगों ने क्या किया था ?
- (4) तिलोनिया के लोग कैसा बनना चाहते हैं ?
- (5) सौर उर्जा का उपयोग तिलोनिया के लोग कहाँ-कहाँ करते थे ?
- (6) तिलोनिया की शिक्षा व्यवस्था कैसी है ?
- (7) पुतलियों का खेल कैसे सामाजिक भूमिका निभाता है ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) तिलोनिया गाँव का वर्णन कीजिए।
- (2) तिलोनिया के लोग कुदरती संसाधनों का उपयोग कैसे करते हैं ?
- (3) संस्थान का उद्देश्य क्या था ?
- (4) तिलोनिया के बेरोजगार युवकों को क्या काम दिया गया ?
- (5) तिलोनिया गाँव को ऊँचाई पर पहुँचाने वाले संस्थान का परिचय दीजिए।

### योग्यता-विस्तार

- कक्षा में चर्चा कीजिए कि आज के युग में वैज्ञानिक उपकरणों के अभाव में भी स्थानीय साधनों के द्वारा उन्नति की जा सकती है।



गुजराती साहित्य में अर्वाचीन युग के अग्रिम रचनाकार नर्मद का जन्म सूरत में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका पूरा नाम नर्मदाशंकर लाभशंकर दवे था। गुजराती साहित्य में उन्हें कवि नर्मद के रूप में जाना जाता है। उन्होंने मुंबई में शिक्षा प्राप्त की थी। नौकरी छोड़ कलम के प्रति समर्पित हो उन्होंने समाज-सुधार और साहित्य को जीवन का मुख्य मंत्र बनाया।

प्रेम, प्रकृति, देश भक्ति, शौर्य और समाज सुधार नर्मद की कविता के मुख्य विषय हैं। नई शैली की कविता के सर्जक के रूप में उन्हें जाना जाता है। उनकी समग्र कविता 'नर्म कविता' नामक ग्रंथ में तथा गद्य रचनाएँ 'नर्म गद्य' के रूप में संकलित हैं। 'मारी हकीकत' उनकी आत्मकथा है। 'नर्मदकोश' गुजराती कोश साहित्य का पहला विशिष्ट ग्रंथ है। उन्होंने 'डांडियो' नामक समाज-सुधार संबंधी सामयिक प्रारंभ करके प्रत्रकारिता के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रदान किया। व्याकरण, पिंगल तथा अनुवाद के क्षेत्र में भी पहल करने वाले नर्मद को गुजराती के अर्वाचीन साहित्य के 'नूतन प्रस्थानकार' के रूप में देखा जाता है।

समाज-सुधारवादी इस निबंध में नर्मद भारतीय समाज में स्त्री-संबंधी रूढ़िवादी और संकीर्ण मान्यताओं को दूर कर प्रगतिशील विचारों को अपनाने को कहते हैं। वे स्त्री-शिक्षा, स्वतंत्रता, समानाधिकार और स्व-निर्भरता को समाज के सर्वांगी विकास के लिए जरूरी बताते हैं। पुरुष की भाँति यदि स्त्री भी सुशिक्षित हो तो वह अपने पूरे परिवार, समाज और राष्ट्र के बहुमुखी विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। शिक्षित-संस्कारी स्त्री के बिना संसार अधूरा है, अंधकारमय है। शिक्षित स्त्री ही अपनी संतान को आदर्श नागरिक बना सकती है, इसमें दो मत नहीं। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के वर्तमान सूत्र के संदर्भ में नर्मद के विचार बहुत दूरगामी हैं और प्रासंगिक भी।

मनुष्य शब्द में पुरुष और स्त्री दोनों समाविष्ट हैं। आकार, स्वभाव, भावना और समझदारी में दोनों लगभग एक समान हैं। शादी के बाद परस्पर सहवास से, परस्पर प्रेम से, परस्पर विश्वास से तालीम पाकर पुरुष सुघड़ बनता है - वह एक अलग ही मनुष्य हो जाता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि शादी से पूर्व पुरुष मनुष्य है। पुरुष के स्वभावगुण तथा स्त्री के स्वभावगुण दोनों मिलकर मनुष्य जाति के स्वभावगुण होते हैं। संसार में एक-दूसरे की मदद करने के लिए दोनों पैदा हुए हैं। समग्र रूप से पुरुष की अपेक्षा स्त्री 'मनुष्य' संज्ञा के लिए कुछ कम अधिकारिणी नहीं है। स्त्री को पुरुष का अर्धांग माना गया है, वह गलत नहीं है। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, दुःख दूर करने और सुख भुगतने के लिए दोनों के कुदरती अधिकार एकसमान हैं। कतिपय बातों में तो स्त्री की कोमलता और मोह में आसक्त होकर स्वयं पुरुष ने उसको विशेष अधिकार दिए हैं। गर्मी-ठण्डी में जाने का और कड़ी मेहनत का काम अपने पास रखा है और घर का काम इनको सौंपा है। स्त्रियों को संकट से बचाने के लिए पुरुषों ने कष्ट सहन किए हैं और प्राण भी गँवाए हैं। फिर भी कुछ विद्वानों ने उसको अधम माना है। वे कहते हैं कि दासी की तरह घर की बेगारी करने के लिए तथा पुरुष के सुख की खातिर स्त्री उत्पन्न हुई है। इस तरह अधम मानने का कारण यह है कि पुरुषों को अपने सांसारिक कार्यों के यश का अभिमान है। स्त्री द्वारा मिलने वाले सुखों का आनंद इन्होंने नहीं किया तथा कुछ मूर्ख एवम् कठोर स्त्रियों का व्यवहार देख-सुनकर समस्त स्त्री-जाति के लिए इन्होंने निकृष्ट विचार व्यक्त किया है।

क्या स्त्री-जाति में पढ़ने की बुद्धि नहीं है? क्या स्त्री-जाति पुरुष की तरह सांसारिक काम करने के लिए अशक्तिमान है? जिस स्वतंत्रता के कारण पुरुष यश प्राप्त करता है, वह स्वतंत्रता यदि स्त्री को मिलती तो क्या वह ऐसा यश प्राप्त न कर सकती? इस मामले में यूरोप और अमरीका की स्त्रियों के जितने चाहिए उतने दृष्टांत हैं, तो क्या हमारे यहाँ नहीं हैं? क्या ब्राह्मण-कन्या गार्गी ने राजा जनक की सभा में जाकर बड़े-बड़े ऋषियों से विवाद कर उनको पराजित नहीं किया? क्या भामगी

ने न्यायशास्त्र सम्बन्धी ग्रंथ तैयार नहीं किया ? क्या डग जोषी की पुत्री भादली ज्योतिष में प्रवीण नहीं थी ? क्या सरस्वती ने शंकराचार्य के साथ रसशास्त्र में विवाद कर अपने स्वामी मंडन मिश्र को बचाया नहीं था ? क्या नेमि ने विधवा दशा के दुःख के बारे में असरकारक नाटक नहीं रचा ? कुन्ती ने अपने धर्मराजा को सिंहासन पर आरूढ़ होते समय, युद्ध में जाते समय राजनीति और युद्धनीति के विषय में गहन सुंदर सीख नहीं दी थी ? क्या राजपूत स्त्रियाँ तलवार लेकर रणसंग्राम में नहीं गईं और उन्होंने यश नहीं पाया क्या ? क्या पार्वती, सीता, द्रौपदी, बिजली, रुक्मणी आदि स्त्रियों ने अपने-अपने सद्गुणों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की ? सर्वप्रथम स्त्रियों पर श्रम और ध्यान देकर उनको तालीम दी जाय तथा उनको स्वतंत्रता दी जाय और बाद में देखा जाय कि वे पुरुष की तरह यश प्राप्त कर सकती हैं या नहीं। जो प्रेम के कारण अपनी संतान को उदर में धारण कर दुःख सहती हैं, प्रेम के कारण उनका पालनपोषण करती हैं और प्रेम के कारण रखती हैं, संसार के कामकाज में पराशर्म देती हैं इसलिए दासी मानना यह क्या न्याय और कुलीनता है ? वाराहि संहिता के भाष्य में लिखा है कि ब्रह्मा ने सावित्री को उपवीत दिया था और अभी रूढ़ि भी है कि विवाह हुआ हो उस लड़के को ससुराल से जनेऊ दी जाती है। स्त्री को साथ रखे बिना अग्निहोत्रादिक कर्म नहीं होते। जिसके द्वारा ब्रह्मा और उनके वंशजों ने संस्कार प्राप्त किये हैं उस स्त्री को अब अधम कैसे माना जाय ? सही विचार करने पर लगता है कि स्त्री-जाति का तिरस्कार करनेवाले पुरुष स्वयं ही तिरस्कारपात्र होते हैं। कुछ लोग बुरे इसलिए सभी बुरे ऐसा विचार विद्वान लोग करते हैं, उसमें वे अपनी ईर्ष्या, पक्षपात और विद्वता की कमी बताते हैं। पुरुष ने स्त्री की मोहिनी पर प्रसन्न होकर उसे ज्यादा मेहनत न करनी पड़े इसलिए प्रथम उसे घर का काम सौंपा और स्त्री अपने प्यार के उत्साह में उसके विश्वास पर अधीन हो गई, फिर भी स्त्री आजकल दासी समझी जाती है, यह कैसा आश्चर्यकारक है !

कुछ ब्रह्मचारी साधु, विद्वान और निराश शृंगारी कवियों ने भी स्त्री का तिरस्कार किया है। इन्होंने उसको नरक का कुआँ, नागिनी, शेरनी, विषवेल, दुःख का दरिया, पाप की पुतली, जड़, निर्दय, लोभी, गंदी छल करनेवाली, साहसिक, नीच, हठी, बेवफा इत्यादि विशेषण दिए हैं। जहाँ स्त्रियों की पढ़ाई नहीं हुई है, जहाँ अच्छी संगति नहीं मिली, जहाँ इनका बाल विवाह हुआ है, जहाँ वे वैधव्य के कारागार में कैद हैं, और जहाँ उनको स्वतंत्रता नहीं है, वहाँ वे अपने अनपढ़ दुराचारी पुरुषों के सहवास में दुराचारी कैसे न हों ? लेकिन अफसोस की बात है कि उनका स्वाभाविक दोष न होने पर भी साधुओं ने अपने को सांसारिक सुख न मिलने की कुढ़न उन पर निकाली है ! स्त्रियों को तिरस्कार वचन लिखते समय क्या मुक्तानंद सरीखे विद्वानों को यह विचार नहीं आया होगा कि हम भी स्त्री द्वारा उत्पन्न हुए हैं। साधुओं की वाणी में कुढ़न है अथवा अपना पंथ चलाने के लिए पक्षपात है, अतः वह गलत है। सुज्ञ और अनुभवी पुरुषों ने स्त्री का जीवन, प्रमुख, अंत तक का जीवनसाथी, परम मित्र, प्राणप्यारी, अर्द्धांगिनी, प्रेमदा, रमणी, रत्न, शक्तिस्वरूप आदि शब्दों से जो वर्णन किया है, वही सही है।

ज्ञानशक्ति के कारण हम अन्य प्राणियों से ऊँचे हैं। शिक्षा द्वारा ज्ञानशक्ति प्राप्त होती है। मनुष्य में स्त्री-पुरुष दोनों का समावेश है। स्त्रियों के अधिकतर अधिकार पुरुषों के बराबर हैं। पुरुष की तरह स्त्री भी शिक्षा द्वारा ज्ञानशक्ति बढ़ाती है, वैसे हमारी स्त्रियों को भी अपना अधिकार मानकर शिक्षा द्वारा अपनी ज्ञानशक्ति बढ़ानी चाहिए और वे ऐसा कर सकें इसमें हमारी ओर से इच्छा, सहाय और प्रोत्साहन होना चाहिए। इसमें फायदा फिर हम पुरुषों को ही है। शिक्षित स्त्री सहायरूप होकर हमारी शक्ति में वृद्धि करती है। शिक्षित स्त्री परममित्र के रूप में सुख-दुःख की बातें करने का आनंद बढ़ाती है और दुःख दूर करती है। पढ़ीलिखी स्त्री प्रिया के रूप में रसपूर्ण सुख अधिकाधिक दिया करती है। जहाँ राजा और मंत्री दोनों शिक्षित और संस्कारी हों, वहाँ राज्य की उन्नति के बारे में कहना ही क्या ? शिक्षित पुरुष की अनपढ़ स्त्री के साथ, रसिक चतुर पुरुष की शठ मूढ़ के साथ, उद्यमी की आलसी के साथ, विवेकी की उद्धत के साथ, सदाचारी की दुराचारी के साथ, संस्कारी की असंस्कारी के साथ कदापि पटती नहीं है। जहाँ शिक्षा द्वारा समानता शोभायमान है, वहाँ ही स्त्री-पुरुष के चित्त एकदूसरे के साथ मेल खाते हैं।

कुछ मिथ्या लोग कहते हैं कि पुरुषजाति से स्त्रीजाति का दर्जा नीचा है और वह उसकी दासी है। कुछ लोग मिथ्या कहते हैं कि उसमें उच्च ज्ञान प्राप्त करने का सामर्थ्य नहीं है। कुछ मिथ्या कहते हैं कि जब वे पढ़ाई में समय व्यतीत करेंगी तब वे अपना घर-काम कब करेंगी और क्या वे मर्द का काम करेंगी ? और कुछ लोग मिथ्या कहते हैं कि पढ़लिखकर वे बिगड़ जायेंगी, स्वतंत्रता का उत्साह बढ़ने पर वे मर्यादाहीन हो जायेंगी, बुरी किताबें पढ़कर वे बिगड़ जायेंगी, बुरा पढ़कर वे आसानी



से कुकर्म करेंगी। इस संदेह का निवारण बाद के लेख में किया है फिर भी विशेषरूप से यहाँ कहता हूँ। शिक्षा तो दुर्गुणों को निकालने वाली है। शिक्षा से यदि बिगाड़ होता हो तो उसे पुरुषों को भी नहीं लेना चाहिए। कोई कहेगा कि शिक्षा में दोष नहीं है स्त्री-जाति के स्वभाव में दोष है, जिससे उस पर शिक्षा का असर नहीं होता है। स्वभाव भी शिक्षा की संगति से अच्छा होता है, अरे! इतना अच्छा होता है कि बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के स्वभाव में जमीन-आसमान का अंतर हो जाता है! यदि जन्म से ही उनका स्वभाव बुरा है तो भी शिक्षा तथा सद्संगति द्वारा उसमें सुधार संभवित है। मैं तो कहता हूँ कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का मन अधिक कोमल है, इसलिए बाल्यवय से उस पर शिक्षा और नीति की छाप पड़ेगी तो वह कदापि दूर नहीं होगी। उपरांत स्त्री का स्वभाव यदि जन्म से ही बुरा और सुधर न सके ऐसा है तो जिन स्त्रियों ने अपने विद्या-सद्गुण द्वारा बड़ा नाम कमाया है, उनके बारे में क्या कहेंगे? अभी भी हम देख सकते हैं कि स्त्रियाँ पढ़ सकती हैं। यह कहना कि पढ़ना-लिखना सीखकर दुराचार करेंगी बिलकुल निरर्थक है। सिर्फ लिखना, पढ़ना यह शिक्षा नहीं है, लेकिन उसके साधन हैं, इससे ज्ञान जल्द और अच्छा प्राप्त होता है तथा दूसरों को दिया जा सकता है। अच्छा मैं पूछता हूँ, जिनको लिखना नहीं आता ऐसी स्त्रियाँ क्या कुकर्म नहीं करती हैं? कुकर्म करना, इसका लिखने के साथ कुछ भी संबंध नहीं है। यही कहना सही है कि नीति के उपदेश की कमी से तथा बुरी संगति से वे कुकर्म करती हैं। जो स्त्री नीति की शिक्षा प्राप्त करेगी, वह बुरे रास्ते पर चलेगी ही नहीं। सिर्फ पढ़ने-लिखने पर काले कर्म करनेवाली स्त्री शिक्षाप्राप्त स्त्री नहीं मानी जायेगी। तथापि कोई ऐसी स्त्री निकल आयी तो उसके आधार पर यह कहना कि सभी स्त्रियाँ बुरी हैं, यह गैरइन्साफ़ है। शिक्षाप्राप्त स्त्री अपने प्रीतम को अंतःकरणपूर्वक प्रेम करेगी और सदा अपना उद्योग करेगी, इस कारण तथा अपने कार्यों पर नीति का अंकुश रखेगी, इस कारण बुराई की ओर उसका मन आकर्षित ही नहीं होगा। स्त्रियों को आवश्यक मानकर पढ़ाने से पुरुष के काम करना, यह भी नहीं है, लेकिन अगर जरूरत पड़ी अथवा अनुकूलता हो तो वह कर सकती है, मगर केवल इसलिए ही उसको पढ़ाया जाय, ऐसा नहीं है - इनको इसलिए पढ़ाना है कि वे ज्ञान प्राप्त करें, वे अपना स्त्री-जाति का धर्म-अच्छी तरह घर संभाले, बच्चों को शिक्षा दे।

स्त्री-शिक्षा से होनेवाले लाभों में बड़ा लाभ तो यह है कि स्त्री अपने पुरुष से अंतःकरणपूर्वक प्रेम करती है, और जहाँ प्रेम है वहाँ दोनों अपना सुख बढ़े, अपनी इज्जत बढ़े और अपनी संतानों की भलाई हो ऐसा करने में उत्साहपूर्वक उद्योग क्यों नहीं करेंगे? शिक्षाप्राप्त स्त्री, अपने प्रीतम की लाडली प्रियतमा, ध्यान रखनेवाली, सदा वफादार दोस्त, सलाह देने में मंत्री और काम करने में सेविका बनकर रहती है। अनपढ़ स्त्रियाँ लोकलज्जा के कारण बिना मन सेविका के रूप में घर चलाती हैं परंतु शिक्षित स्त्री उत्साहपूर्वक और अपना कर्तव्य समझकर चलाती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षित स्त्री का घर अधिक अच्छे ढंग से ही चलना चाहिए। शिक्षित स्त्री सुख में आनंद और दुःख में आशवासन देती है। अपनी प्यारी शिक्षित स्त्री के समान उसके लिए दूसरा कौन है, जो पुरुष के उद्धत आवेश को नरम करती है और दुःखी पुरुष के आँसू पोंछती है? संकट के समय में सगे-सम्बन्धी, मित्र, स्वजन सभी साथ छोड़ देते हैं - सिर्फ स्त्री ही उसकी होकर रहती है। इस समय जो हो रहा है वह केवल लोकलज्जा से ही, लेकिन अब जो होगा वह निजी उत्साह से और कर्तव्य समझकर होगा। पढ़ लिखकर, युवा होकर शादी करनेवाली स्त्री अपने पति से इस प्रकार कहेगी कि आज से मैं तुम्हारे सुख-दुःख की साझीदार हूँ। तुम्हारी मरजी के विरुद्ध नहीं चलूंगी, आप मेरे प्रिय पति, सच्चे मित्र और कद्रदान राजा हो और मैं आपके प्रेम में गद्गदित स्त्री, अन्त तक की साथी और वचनबद्ध वफादार सेविका हूँ। मेरा तन-मन-धन यह सर्वस्व तुम्हारा है। शिक्षाप्राप्त स्त्री-रत्न अपना तेज कदापि खोती नहीं है - जैसे-जैसे उसका उपयोग होता है वैसे-वैसे वह अधिक प्रकाश देता है। “दुनिया का अंत अपना घर और घर का अंत अपनी स्त्री” यह कहना गलत नहीं है। जिस तरह स्त्री के बिना संसार सूना है, वैसे शिक्षारहित स्त्री के बिना यह संसार भयानक जंगल है, जिसमें शेर-बाघ रहते हैं, तथा शिक्षित स्त्री का संसार एक रमणीय उद्यान है।

घर चलाना, घर के सदस्यों को सुखी करना, और संतानों को इस तरह तैयार करना कि बड़े होकर अपने समय में वे अच्छे माता-पिता बन पायें ये स्त्रियों के धर्म-कर्म हैं, - लेकिन ज्ञान के बिना वे क्या कर सकती हैं? आजकल हम देखते हैं कि रसोई सम्बन्धी कामकाज में स्त्री व्यस्त होती है और निंदा करने में तथा सुंदर दिखने में एवं शादी-मरण सम्बन्धी रस्म-रिवाजों में बड़प्पन दिखाने में स्त्रियाँ सुख मान लेती हैं और अपना अमूल्य समय निरर्थक व्यय करती हैं। हमारा कर्म क्या है, कौन-से उच्च उद्देश्य के प्रति हमारा लक्ष्य होना चाहिए, उच्च प्रकार का सुख क्या है आदि विषयों के बारे में स्त्रियों को कुछ भी

मालूम नहीं है, – सचमुच इन बेचारियों की दशा दयाजनक है। गुलामगिरी की दयाजनक दशा से बाहर निकलकर, धर्मशास्त्र तथा झूठे शास्त्रों की कुछ शिक्षा के जो दुःख-दायक घुंघरू उसने धारण किये हैं, उसे वह तोड़ सके, स्वतंत्र बुद्धि विकास तथा नीति शिक्षा की प्रवृत्ति में निमग्न होकर उसमें आगे बढ़ सके, स्त्री-जाति के अपने अधिकार, सुख के लिए सोचने लगे और अपनी संतानें भविष्य में बड़े-बड़े कार्य करें, यश प्राप्त करें तथा सुख भोग सकें इस वास्ते उनको तालीम देने लगे, ऐसे दिन देखने की आशा रखना ही खुशी उत्पन्न करता है, तो फिर उस दिन को प्रत्यक्ष देखना-उसे कितना हृदय शीतल करनेवाला और सुखप्रद समझा जाय।

जब तक स्त्रियों के प्रति नफरत दूर नहीं होगी, जब तक हमारे यहाँ प्राचीनकाल में स्त्रियों के जो मान-सम्मान थे और वर्तमान में विकसित देशों में है उसी तरह हमारी स्त्रियाँ पुरुष द्वारा सम्मान प्राप्त नहीं करेगी तब तक बेचारियाँ वे तथा हम संसार-सुख की ऊँची मौज नहीं पा सकेंगे। सुबह होते ही जो युगल घरकाम के लिए झगड़ा करता है, इससे ज्यादा दरिद्रता और क्या है? शिक्षित युगल के लिए उद्यम ही उनकी सच्ची दौलत है। अगर द्रव्य संबंधी इनकी दशा अच्छी नहीं है तो भी परस्पर प्रेम और प्रत्येक का उद्यम, यही उनके सही सुख का उत्तम साधन हो जाता है। जब कि बिना स्त्री के घर, घर नहीं है तथा स्त्री से सब सुख मिलते हैं, तो फिर उसको शिक्षा क्यों न दी जाय? जिस शिक्षा के द्वारा उसके सद्गुण पुष्ट होते हैं तथा सदाचरण दृढ़ होता है, जिस शिक्षा के द्वारा वह इधर के और उधर के उच्च प्रकार के सुख भुगतती है वह शिक्षा अभागिनी अबला को सुहागिन सबला बनाये, ऐसा समय ईश्वर की कृपा से और हमारे परिश्रम तथा प्रोत्साहन से शीघ्र ही आ जाय।

—अस्तु।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

समाविष्ट समाया हुआ, एकाग्रचित्त आसक्त मोहित कतिपय कुछ कुदरती प्राकृतिक अभिमान गर्व निकृष्ट नीच दृष्टान्त उदाहरण पराजित हार प्रवीण निपुण उपवीत जनेऊ, यज्ञोपवीत उद्धत तत्पर तैयार

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) मनुष्य जाति के स्वभावगुण से आप क्या समझते हैं?
- (2) नर्मद के अनुसार स्त्री-पुरुष के कौन-से अधिकार एक समान हैं?
- (3) कुन्ती ने धर्मराज को कब और क्या सीख दी?
- (4) कौन-से कर्म स्त्री के बिना अपूर्ण हैं?
- (5) सुज्ञ-पुरुषों ने नारी को किस रूप में स्वीकार किया है?
- (6) स्त्री-पुरुष के चित्त एक-दूसरे से कैसे मेल खाते हैं?
- (7) लेखक के अनुसार स्त्री जाति का धर्म क्या है?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) नर्मद स्त्रियों के प्रति किस प्रोत्साहन की बात करते हैं?
- (2) नर्मद के अनुसार स्त्री-शिक्षा से क्या लाभ है?

- (3) स्त्री-शिक्षा परिवार के लिए किस प्रकार लाभ-प्रद है ?
- (4) “फायदा हम पुरुषों को ही है” नर्मद ऐसा क्यों कहते हैं ?
- (5) “स्त्री-जाति का तिरस्कार करने वाले स्वयं ही तिरस्कार के पात्र होते हैं” स्पष्ट कीजिए।

**3. असंदर्भ व्याख्या कीजिए :**

- (1) “सिर्फ लिखना-पढ़ना यह शिक्षा नहीं है, लेकिन उसके साधन हैं।”
- (2) “स्त्री के बिना सूना संसार है, शिक्षा रहित स्त्री के बिना संसार भयानक जंगल है।”

**4. सामासिक पदों का विग्रह करके समास पहचानिए :**

सुख-दुख, सद्गुण, ज्ञानशक्ति, शिक्षारहित

**5. संधि विच्छेद कीजिए :**

बाल्यावस्था, संसार, निरर्थक, तथापि

**योग्यता-विस्तार**

- “बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ” – पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
- “आज की नारी पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।” इस विषय से सम्बन्धित अन्य साहित्य ढूँढ़कर पढ़िए।



दलित रचनाकार मोहनदास नैमिशराय का जन्म उत्तरप्रदेश के मेरठ में हुआ था। उन्होंने एम.ए., बी. एड. तक शिक्षा प्राप्त की। दलित साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से वे एक हैं। दलित परिवार में जन्म लेकर जिस पीड़ा और संत्रास को उन्होंने भोगा, उसका यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं में बड़ी बेबाकी से हुआ है।

‘अपने-अपने पिंजड़े’ उनकी बहुचर्चित आत्मकथा है। ‘मुक्तिपर्व’, ‘वीरांगना झलकारी बाई’ उनके उपन्यासों के नाम हैं। ‘अदालत नामा’ उनकी नाट्य रचना है। ‘सफर एक बयान’ कविता संग्रह है। उनके कहानी संग्रह का नाम है ‘आवाजें’। ‘बयान’ नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते हैं। ‘भारतरत्न बाबा साहब आंबेडकर’ (चित्र पुस्तिका) तथा ‘बाबा साहब ने कहा था’ उनके विचार लेखों का संग्रह है।

‘महाशूद्र’ दलित चेतना से संबद्ध कहानी है जिसमें इस कटु सत्य को उजागर किया गया है कि जातिवाद के मूल हमारे समाज में बहुत गहरे हैं। दलित तो दलित है ही, ब्राह्मण भी यदि श्मशान में शवों का क्रियाकर्म करता है तो उसे महादलित या महाशूद्र कहकर अपमानित किया जाता है। इस कहानी में ऐसे ही एक ब्राह्मण की यातना भरी कथा कही गई है।

जिधर देखो उधर ही अँधेरा था। हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता था। एक छोटी-सी लालटेन कोठरी की चौखट पर लगे सांकल की कुंडी पर टंगी थी। वहीं से थोड़ा-बहुत उजाला आसपास बिखरा हुआ था। मरघट से एक-एक कोस दूर तक कोई आबादी नहीं थी। दिन में ही वहाँ सन्नाटा तैरने लगता था। रात के अँधेरे में तो वातावरण और भी अधिक डरावना हो जाता था। इसी मरघट में नंदू डोम और आचार्य जी रहते थे। आचार्य जी रात के आठ बजे तक यहाँ मौजूद होते थे जबकि नंदू रात को भी यहीं सोता था। नंदू का परिवार शहर की भंगी बस्ती में रहता था। सप्ताह में दो-तीन बार वह वहाँ हो आता था पर रात में वह इसी मरघट में अकेला सोता था। आचार्य जी प्रतिदिन अपने परिवार में चले जाते थे। उनके दो बेटे थे और एक बेटी। दोनों बेटे कॉलेज में पढ़ते थे। बेटी का ब्याह हुए तीन साल हो गए थे। पारसाल ही वह विधवा हो गई थी। तभी से वह घर में बैठी थी। आचार्य जी अपनी बेटी को जब कभी उदास देखते, उनका कलेजा फटने लगता था। कई बार मन हुआ कि विधवा बेटी का दूसरा ब्याह कर देना चाहिए पर समाज की मान्यताओं के आगे वे नतमस्तक हो जाते थे। घर में चौथे सदस्य के रूप में आचार्य जी की पत्नी थी जो समय से पहले ही बूढ़ी हो गई थी।

यूँ आचार्य जी की उम्र पचास के लगभग थी और उनकी पत्नी भागवंती की बयालिस। पर वे पति से अधिक उम्र की लगती थीं। बालों में सफेदी बिछ गई थी और शरीर में सलवटें। हाथ-पाँव की नसों के उभार स्पष्ट होने लगे थे। रही-सही कमी पूरी की, जवान बेटी के वैधव्य भरे जीवन ने।

इस समय मरघट में केवल दो ही आदमी थे — नंदू डोम और आचार्य जी। आचार्य यानी इस मरघट में आए मुर्दों का अंतिम संस्कार करने वाला ब्राह्मण।

मार्च का महीना था। हवा में ठंडक थी। रात के आठ बजने वाले ही थे। नंदू बीड़ी-पर-बीड़ी फूँके जा रहा था जबकि आचार्य जी कभी-कभी तम्बाकू की फंकी मुँह में डाल लेते थे। वे घर लौटने की तैयारी में थे। तभी ‘राम-नाम सत...’ की आवाज नजदीक आती उनके कानों में पड़ी।

“नंदू, देख तो, अब कौन आ मरा... ?” उनके स्वर में उखड़ापन था। मुँह में लगी बीड़ी को फर्श पर मसलते हुए नंदू स्वयं बड़बड़ाया, “हियाँ तो कोई-न-कोई मरकर ही आता है। पर टैम भी तो देखना चाहिए कि नई। कित्ती रात हो गई है।” भुनभुनाते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

“आ जाने दो आचार्य जी पैले। ससुरे जाँगे कहाँ... ?” वह वहीं रुक गया। ‘राम-नाम सत है... सत बोलो गत है...’ की मिली-जुली आवाजें अब और भी नजदीक से आने लगी थीं। नंदू की अभ्यस्त आँखों ने देखा, सड़क की ओर से आठ-दस लोग अर्धी को उठाए तेज रफ्तार से मरघट की तरफ ही चले आ रहे थे।

“अब दो घंटे और यहाँ रुकना पड़ेगा।” नजदीक ही जमीन पर थूकते हुए आचार्य जी नाराजगी भरे स्वर में बोले।

“किया भी क्या जा सकता है आचार्य जी, काम भी तो ऐसा ही है म्हारा।”

थोड़ी देर में ही अर्धी उठाए आदमी पास आ गए। आचार्य जी ने कुंडी पर टंगी लालटेन की रोशनी में देखा। गिनती के कुल आठ आदमी थे। एक के हाथ में हंडिया थी, दूसरा लालटेन उठाए था। चार आदमियों के कंधों पर अभी भी अर्धी रखी थी। शेष दो आदमियों के हाथों में लाठियाँ थीं। इससे पूर्व कि आचार्य जी कुछ कहते, नंदू ने नाराज होते हुए कहा, “मुरदा फूँकने का कोई टैम होता है कि नई...।”

“आचार्य जी, अब क्या कहें, बस देरी हो गई...।” लालटेन उठाए हुए आदमी ने झिझकते हुए कहा।

“वह तो ठीक है, पर...।” आचार्य जी ने उन सभी के चेहरे पढ़े, मैले-कुचैले से कपड़े पहने उनके शरीर को देखा। वे सभी मजदूर थे। पास ही की झुगियों से आए थे।

“पर लकड़ी कहाँ है... ?” नंदू बोला।

“लकड़ी तो नहीं है...।” हंडिया उठाये आदमी ने डरते-डरते कहा।

“लकड़ी नहीं है तो मुरदा कैसे जलेगा... ?” आचार्य जी रोष भरे स्वर में बोले। अब तक चार लोगों ने अर्धी चबूतरे पर रख दी थी। कुछ पल मौन रहा। अजीब-सी चुप्पी मरघट में व्याप्त हो गई।

“अरे कुछ गड़बड़ तो नई है ?” नंदू के सवाल ने मरघट पर छाई चुप्पी को तोड़ा।

“नई भइया, गड़बड़ी किस बात की ?” अब तक जिन चार लोगों ने अर्धी को कंधा दिया हुआ था उनमें से एक बोला।

“फिर लकड़ी कहाँ है... ?” नंदू ने फिर से कड़कती आवाज में पूछा।

“सरकार, यह लावारिस था। आज दिन में मर गया बेचारा। तभी से इंतजाम करने में लगे थे।”

“क्या इंतजाम किया तुम लोगों ने ?” आचार्य जी ने पूछा।

“आचार्य जी, कुछ चंदा किया है बस्ती में।” दूसरा व्यक्ति बोला।

“पर कित्ता चंदा हो गया ?” नंदू ने फिर कड़कती आवाज में पूछा।

“यही, सौ-सवा सौ...।”

“क्या ?”

नंदू के साथ आचार्य जी के मुँह से भी अनायास निकल पड़ा।

“पर इत्ते से रुपयों में क्या होगा ! इसमें तो एक कुंटल लकड़ी का ही जोगाड़ होगा और मुरदा जलाने के लिए तीन कुंटल लकड़ी चइये।”

“हमसे तो इतना ही बना। बिचारे की दुरगति न हो इसलिए। नहीं तो कुत्ते-बिल्ली इधर-उधर लाश खींचते-फिरते।”

“लेकिन इतनी कम लकड़ियों में कैसे होगा। मुरदे को तो पूरा ही जलाना पड़ता है ना।” आचार्य जी पुनः बोले।

“वो तो ठीक है आचार्य जी... आप ही कुछ करिये।” अब दो-तीन लोग एक साथ ही बोले।

“ठीक है-ठीक है, करते हैं कुछ ! मुरदे का अंतिम संस्कार नहीं करेंगे तो कल तुम ही लोग पता नहीं कहाँ-कहाँ जाकर बदनाम करोगे।”

इस बीच एक आदमी ने जेब से मुड़े-तुड़े नोट निकालकर आचार्य जी की हथेली पर रख दिए। उन्होंने गिना। कुल एक सौ पच्चीस रुपये थे। मुरदे को दो नंबर घाट पर ले चलने के लिए कह नंदू को उसी कोठरी की ओर ले आए। कोठरी में ऐसे

ही समय के लिए कुछ लकड़ियाँ रखी हुई थीं, जिनमें से कुछ अधजली भी थी। आचार्य जी अंधेरे में रास्ता बनाते हुए घाट की ओर चले गए। नंदू ने कोठरी में से दो मन लकड़ी अंदाज से निकाली।

कुछ देर में मृत-शरीर पर लकड़ियाँ रख दी गईं। आचार्य जी मंत्र पढ़ने लगे — “हरि ओम पवित्र वाह सर्वस्वाहा...।” उनमें से एक आदमी ने मुखाग्नि दी। घी, चंदन तो था नहीं। मुरदे पर कफन के सिवा कोई कपड़ा भी नहीं था। सूखी लकड़ी होने के कारण आग की लपटें निकलने लगीं। शरीर जलने से अजीब-सी गंध वातावरण में फैलने लगी।

थोड़ी देर बार अर्थी के साथ आए आठों आदमी चले गये। मुरदे के भीतर से बदबू का भभका निकलने लगा था। वे दोनों थोड़ा हटकर बैठ गए लेकिन बदबू तो सारे वातावरण में ही फैलने लगी थी। यूँ जलते मुरदे के पास तीव्र बदबू के कारण एक पल भी बैठना मुश्किल था। पर उन्हें तो अभी कम-से-कम दो घंटे और वहाँ बैठना था, जब तक कपालक्रिया पूरी नहीं हो जाती। इस बीच नंदू डंडे से लकड़ियों को ठीक करता रहा। लकड़ियों के चटकने की आवाज होने लगी।

“आचार्य जी, बदबू के मारे तो बुरा हाल है। साँस लेना भी मुश्किल हो गया है।”

“हाँ नंदू, पर हम कर भी क्या सकते हैं?”

अब चिता को पूरी तरह से आग ने अपने घेरे में ले लिया था। आग ने जोर पकड़ा तो आसपास की लकड़ियाँ भी जलने लगीं। आग से उत्पन्न उजाले का दायरा भी बढ़ा। अंधेरे को चीरते हुए उजाला जहाँ-तहाँ बिखरने लगा। मरघट में सभी कुछ शांत था, केवल एक लावारिस लाश उसी खामोश वातावरण में अकेले जले जा रही थी।

काफी देर बाद मुरदे का कपाल फूटा। शांत परिवेश में एक आवाज गूँजी। आचार्य जी घर जाने को तैयार हो गए।

जिस बस्ती में आचार्य जी रहते थे उसमें कुछ लोग तो यही मानते हैं कि यह व्यक्ति ब्राह्मण समाज पर कलंक है। वह मुरदे के कफन तक को नहीं छोड़ता। सब कुछ मुरदे के शरीर से उताकर बेच देता है। यहाँ तक कि मृतक की इस्तेमाल की गई वस्तुएँ भी। औरतों के बीच दूसरी तरह से चर्चा होती। वहाँ उनके कर्मों के फल से उनकी विधवा बेटी की बात को जोड़ा जाता। आचार्य के बराबर वाले मकान में भड़भूँजन रहती थी। बस्ती के कोने पर दोतल्ला पक्के मकान से रामलुभाए की घरवाली रोज सुबह-सुबह भुने हुए गर्म चने लेने आती। आते ही पहला सवाल वह कर बैठती, “कल कितने कफन बेचे उस बामन ने?” भड़भूँजन जैसा देखती-सुनती, वैसा ही बता देती। फिर वही बात समूची बस्ती में खबर बनकर फैल जाती। लोग अपने-अपने हिसाब से उस खबर को सुनते तथा दूसरों को नमक-मिर्च लगाकर सुनाते।

आज भी सुबह भड़भूँजन ने भाड़ में चने भूँने शुरू किए तो रामलुभाई सबसे पहले चने लेने आ धमकी। आसपास कोई न था। उसने धीरे-धीरे से इधर-उधर देखकर पूछा, “अरी बता न, कल कितने कफन बेचे उस बामन ने।” उत्तर में जसवंती ने “कोई नहीं” कहकर गर्म चने उसके पल्लू में डाल दिए।

“पर कोई कपड़ा-वपड़ा तो बेचा होगा।” चने सूँघते हुए रामलुभाई ने उसे कुरेदा।

“कोई मुरदा ही नहीं आया तो...।”

“हाँ, जसवंती ये तो ठीक है, पर यह चंडाल तो चाहता ही होगा कि रोज-रोज खूब सारे मुरदे मरघट में आयें और उसका घर भरे।”

“हाँ, तुम्हारी बात तो ठीक है।”

“छि: छि: यह भी कोई काम है।” चने के पैसे देकर वह नाक-मुँह सिकोड़ते बोली।

तभी आचार्य जी का छोटा लड़का चने लेने आ गया। रामलुभाई उसे देख, ‘राम-राम’ करते हुए चली गई।

आचार्य जी रात में मरघट से देरी से आते तो बैठक में ही सो जाते थे। सोने से पूर्व वे नहाना नहीं भूलते थे। सर्दी हो या गर्मी, स्नान करके ही दूसरा कोई कार्य करते थे। यहाँ तक कि आँगन में भी नहाने के बाद ही जाते थे। सोने के थोड़ा पहले मंत्रजाप भी अच्छी तरह किया करते थे। सुबह धूप चढ़े किनारी बाजार के लाला ने बाहर से कुंडा खटखटाया तो उनकी आँखें खुलीं। किनारी बाजार में लाला की कपड़े की दुकान थी। वह तीसरे-चौथे कपड़े खरीदने आता था। आचार्य जी मुरदों पर पड़ी

चादरें बेच दिया करते थे। किनारी बाजार में वही चादरें धड़ल्ले से बिकती थीं। यूँ एक-दो चादरें वे गरीबों को दान-पुण्य भी कर देते थे। चारपाई से उठकर उन्होंने कुंडा खोला। सामने लाला को देखकर अभिवादन किया। बैठक में पड़ी एक कुर्सी पर बैठते हुए लाला ने सबसे पहले वही सवाल किया —

“कुछ चादरें आर्यी क्या ?”

“कहाँ, एक भी नहीं मिली।” उदास से स्वर में आचार्य जी बोले।

“क्यों ?...”

‘दो दिन से कोई मुरदा ही नहीं आया। तीसरे दिन आया भी तो वह भी लावारिस। बड़ी मुश्किल से लकड़ी के ही पैसे जुटा पाए थे अर्थी को कंधा देने वाले।’ आचार्य जी का स्वर अफसोस भरा था।

“हे भगवान, जैसी प्रभु की इच्छा...” कहते हुए लाला उठ खड़ा हुआ। लाला को चाय तक पूछने की हिम्मत उनमें नहीं हुई। जब-जब किनारा बाजार से लाला चादरें खरीदने घर पर आता तो परिवार में सभी को बुरा लगता था। कई बार उनके दोनों बेटों ने टोका-टाकी भी की। घर में इस बात को लेकर कहा-सुनी भी हुई। उनके बड़े बेटे ने चीख-चीखकर एक दिन कहा भी—“पिताजी, अब और नहीं सहा जाता। सारी दुनिया हम पर थू-थू करती है। हमें मुरदे की चमड़ी खींचने वाले से लेकर कफन-खसोटू तक कहती है। वे कहते हैं कि हमारे घर का गुजारा ही तब तक चलता है जब कोई मरता है। किसी के घर में अँधेरा होने पर ही हमारे घर में उजाला होता है।”

“रात में आचार्य बहुत देर से लौटे ?” भागवती से रहा न गया। उसने बात चलाई।

“हाँ... !”

“कुछ पैसा-वैसा मिला।” उसने पूछा

“कहाँ से मिलता ? मुरदा ही लावारिस था।”

“कुछ भी नहीं मिला ?”

“अब मैं मुरदे की खाल खींचकर तो घर ले आ नहीं सकता।”

उनके स्वर में खीझ उभर आई थी।

“कैसी बात कर रहे हैं आप, अब यह भी करना रह गया है क्या ? वह धीरे-धीरे तथा मुलायम स्वर में बोली।”

“इस जनम में पता नहीं क्या-क्या करना पड़ेगा ?” अफसोस जाहिर करते से वे बोले।

“यह सब करते हैं फिर भी गुजारा नहीं होता।”

“और तुम्हारे लाट साब बेटे अपने आपको श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पंक्ति में रखकर यह काम भी छोड़ देने को कहते हैं।”

“आप उनकी बातों पर क्यों जाते हैं। जब समझ आ जाएगी तब...”

“जब समझ आ जाएगी तब तो और भी बड़ी-बड़ी बातें करेंगे। मुझे जीने और मरने की परिभाषा उन्हीं से सीखनी होगी।” आचार्य जी उबल पड़े।

“अच्छा आप अब स्नान कर लीजिए, मैं नाश्ता तैयार करती हूँ।” कहते हुए भागवती रसोई में जाने को हुई तो उन्होंने जेब से कल रात के मुड़े-चुड़े नोट उसकी हथेली पर रख दिए।

दोपहर के समय आचार्य जी श्मशान पहुँचे। नंदू पहले से ही वहाँ मौजूद था। वह हाथ पर हाथ रखे बैठा था। एक बीड़ी खत्म होती तो दूसरी मुँह में लगा लेता। आचार्य जी को सामने से आते देखा तो उसकी जान में जान आई। उनके अलावा वहाँ कोई बातें करने वाला तो था नहीं। मरघट से दूर-दूर तक भी कोई आदमी दिखाई नहीं देता था।

“अभी कोई मुरदा नहीं आया ?”

आचार्य जी के पूछने से पहले ही उसने ‘ना’ में सिर हिला दिया।

“यह सप्ताह बहुत बुरा बीता है। आगे की भी कुछ पता नहीं।”

“वह तो हैई आचार्य जी, लगता है कुछ गिरह-विरह है हम पर।”

“हाँ, बुरे दिन आए लगते हैं।” आचार्य जी ने नंदू की बात का समर्थन किया।

“नंदू, मुझे अब लगता है कि हम बस नाम के ही ब्राह्मण हैं।”

“ऐसा क्यों आचार्य जी?”

“क्योंकि कोई भी ब्राह्मण हमें अपने घर के दरवाजे के बाहर ही रखता है और ब्राह्मण ही क्यों बहुत से लोग हमारी सूरत देखना ही अपशगुन मानते हैं।”

नंदू उनका मुँह देखने लगा। आचार्य जी के चेहरे पर गहरी काली छाया उतर आई थी। उसे लगा, उनका रंग एकदम काला पड़ गया है।

“क्या ब्राह्मणों में ऊँच-नीच होती है? वहाँ भी छुआ-छात है?” नंदू ने बड़े आश्चर्य भरे स्वर में पूछा।

आचार्य जी के चारों ओर बहुत से चेहरे मंडराने लगे। ये अपने चेहरे लगते थे, लेकिन उन पर घृणा, उपेक्षा और तिरस्कार बिखरा हुआ था।

उन्होंने अपना एक हाथ नंदू के कंधे पर रख दिया — “हमें कहा जाता है महाब्राह्मण... पर इसका अर्थ जानते हो नंदू... महाशूद्र...।”

नंदू ने अपने कंधे पर रखे हुए हाथ के स्पर्श को महसूस किया। कितना अपनत्व था उसमें। उसने अपने एक हाथ से कंधे पर रखे आचार्य जी के हाथ को दबाया और बड़ी तृप्ति भरी आँखों से उन्हें देखने लगा।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

नत मस्तक झुकना, झुका हुआ उम्र अवस्था अभ्यस्त आदी नजदीक पास रोष क्रोध मरघट श्मशान-घाट इन्तजाम व्यवस्था हुड़क ललक लावारिस अनाथ, जिसका कोई वारिस न हो सड़ांध सड़ने की दुर्गंध जाहिर प्रकट अफसोस दुःख खसोटू खींचने वाला

### मुहावरे

कलेजा फटना - अति दुःखी होना

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) नंदू और आचार्य जी का परिवार कहाँ रहता था?
- (2) मरघट पर आचार्य जी का कार्य क्या था?
- (3) विधवा पुत्री का पुनर्विवाह करवाने में आचार्य जी असमर्थ क्यों थे?
- (4) आगंतुक के प्रति नंदू और आचार्य जी की नाराजगी का क्या कारण था?
- (5) लालटेन की रोशनी में आचार्य जी ने क्या देखा?
- (6) बस्ती वाले आचार्य जी को ब्राह्मण समाज पर कलंक क्यों मानते थे?
- (7) मरघट से आने के उपरान्त आचार्य जी का दैनिक कार्य क्या था?



- (8) बड़ा बेटा आचार्य जी पर अपना क्रोध किन शब्दों में व्यक्त करता है ?  
(9) नंदू और आचार्य जी को ऐसा क्यों लगता है कि उनके बुरे दिन आ गए हैं ?

**2. उत्तर लिखिए :**

- (1) आचार्य जी मुर्दे पर चढ़ाई जाने वाली चादरों को बेचने पर विवश क्यों हैं ?  
(2) रोजी-रोटी की इच्छा ने आचार्य जी की मानवीय संवेदनाओं को समाप्त कर दिया है - स्पष्ट कीजिए।  
(3) मुर्दे को लाने वाले मजदूरों में मानवीय संवेदनाएँ जीवन्त हैं - स्पष्ट कीजिए ?  
(4) मजदूरों द्वारा दिए गए पैसों को आचार्य जी द्वारा लेना क्यों अनुचित है ?  
(5) आचार्य जी तथा उनके परिवार की सामाजिक स्थिति का वर्णन कीजिए।

**4. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :**

- (1) “कई बार मन हुआ कि विधवा बेटा का दूसरा विवाह कर देना चाहिए पर समाज की मान्यताओं के आगे नतमस्तक हो गए।”  
(2) “हमारे घर का गुजारा ही तब तक चलता है जब कोई मरता है। किसी के घर में अंधेरा होने पर ही हमारे घर में उजाला होता है।”

**5. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :**

कलेजा फटना, नतमस्तक होना

**योग्यता-विस्तार**

- सामाजिक कुरीतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए।
- आधुनिक युग में पैसा कमाने की दौड़ में मानव अपनी संवेदनाएँ खो चुका है - स्पष्ट कीजिए।



भगवती प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दलछपरा में हुआ था। हिन्दी-भोजपुरी के रचनाकार के रूप में उन्हें जाना जाता है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास और लघुकथाओं की रचना की है। 'अस्तित्व बोध' एवं 'चीर हरण' उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। 'नई कोपलों की खातिर' उनका प्रमुख उपन्यास है। 'भविष्य का वर्तमान' तथा 'थाती उनके' लघुकथा संग्रह हैं। उन्होंने वन कविता संग्रह तथा बाल कहानियाँ भी लिखी हैं। कुल मिलाकर उनकी अठहत्तर रचनाएँ मिलती हैं।

उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से वर्ष 2013 का निराला पुरस्कार तथा 2014 का सूर पुरस्कार प्राप्त हुआ। बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद से विशिष्ट साहित्य सेवा सम्मान मिला। इसके अलावा उन्हें बाल साहित्य - सृजन के लिए कई पुरस्कार प्राप्त हैं। उन्हें विद्या वाचस्पति की मानद उपाधि भी प्राप्त हुई है।

प्रस्तुत रचना हमारे देश के कथित बुद्धिजीवियों की रुग्ण मानसिकता पर मार्मिक व्यंग्य है। आरंभ में ही लेखक ने ब्यूटी पार्लरों की भाँति इंटेलेक्चुअल्स पार्लरों का होना बहुत जरूरी बताया है। जिस तरह सुंदर होना आवश्यक नहीं, सुंदर दिखना अधिक आवश्यक है, उसी तरह बुद्धिजीवी होना जरूरी नहीं, बुद्धिजीवी दिखना जरूरी है। और इसके लिए ब्यूटीपार्लरों की ही तरह गली-गली में इंटेलेक्चुअल्स पार्लर का होना आवश्यक है। लेखक के विचार से बुद्धिजीवी दिखने के लिए सचमुच की बौद्धिकता जरूरी नहीं है। इसके लिए गंजा होना, डाइबिटीज होना, ऐनक लगाना, लोगों का दिमाग चाटना, हर बात में तिल का ताड़ करना, नास्तिक कहलाना तथा विदेशी भाषा या विदेश की बातें बताना आदि मुख्य लक्षण हैं। अतः ऐसे बुद्धिजीवी तैयार करने के लिए इंटेलेक्चुअल्स पार्लरों की बड़ी आवश्यकता है। व्यंग्यकार ने कुकुरमुत्ते की तरह फैले-पसरे ब्यूटीपार्लरों पर भी तीखा व्यंग्य किया है।

विकासशील देश इंडिया में इंटेलेक्चुअल्स पार्लर की जरूरत शिद्दत से महसूस की जा रही है। यह भी क्या बात हुई कि महानगर से कस्बों तक सौंदर्य श्रीवृद्धि करने वाले ब्यूटी — पार्लर तो कुकुरमुत्ते-से फैलते-पसरते चले जाएँ, पर बुद्धिजीवी बनाने वाले पार्लर? बस, ढूँढ़ते रह जाओगे। इस साजिश में भी अवश्य विदेशियों का हाथ है, ताकि यहाँ लोगों की बौद्धिकता में चार-चाँद लगे ही नहीं और इंडियन लल्लू सिर्फ चारा खाते रहें, पगुराते रहें। भले ही बुद्धिजीवी होना या बनना कतई जरूरी न हो, पर बुद्धिजीवी दिखना तो नितांत आवश्यक है, वरना कोई घास भी क्यों डालेगा। इसी के अभाव में पड़ोस का एक मनचला युवक बेमौत मारा गया। हुआ यूँ कि एक सौंदर्य-साम्राज्ञी को पाने के लिए वह भी जेंट्स ब्यूटी पार्लर में हेयर स्टाइल, भौंहें और न जाने क्या-क्या दुरुस्त करवाता रहा, निखरवाता रहा। जब खूबसूरत बेटे का बाप अपनी बिटिया की जिद पर उस नायाब बेटे के डैडी से शादी की बाबत मिलने आया तो कमर मटकाऊ लड़के का हाव-भाव देखकर जल-भुन गया। इस पर भी जब बेटे के डैडी ने गर्व से सीना फुलाए कहा — “मेरा लड़का लाखों में एक है... ऐसा लड़का आपको चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा”, तो लड़की के मुँहफट बाप ने जवाब दिया — “क्यों नहीं। मगर माफ करेंगे, मुझे आपके खूबसूरत बेटे के साथ कोई ऐसी-वैसी हरकत तो करनी है नहीं। लड़के को हेल्दी और इंटेलिजेंट, इंटेलेक्चुअल होना चाहिए। इसकी स्त्रियोजित खूबसूरती को क्या मेरी बेटे चाटेगी? हुँह !” अगर वह इंटेलेक्चुअल्स पार्लर में गया रहता तो क्या उसे और उसके डैडी को वह दिन देखना पड़ता ?

जैसे हर चमकने वाली पीली चीज सोना नहीं होती, वैसे ही हर बुद्धिजीवी दिखने वाला व्यक्ति बुद्धिजीवी हो, यह कतई आवश्यक नहीं। बुद्धिजीवी होना और बुद्धिजीवी दिखना अलग-अलग बातें हैं, वैसे ही, जैसे खूबसूरत होना और बात है तथा खूबसूरत दिखना दीगर। तन के साथ मन की खूबसूरती की तो बात ही अलग है। मानसिक, चारित्रिक व स्वस्थ दृष्टिकोण

वाली सुंदरता की बात भी बेमानी है। शारीरिक सुंदरता भी दिखाऊ होनी चाहिए, टिकाऊ नहीं। पहले लोग आम खाने से मतलब रखते थे, पेड़ गिनने से नहीं। मगर अब तो आम खाने से कहीं ज्यादा जरूरी है पेड़ गिनना। अतः बुद्धिजीवी होने या बनने की बजाए बुद्धिजीवी दिखना ही प्राथमिकता होनी चाहिए। मगर क्या दुर्भाग्य है इस महान देश का कि खूबसूरत दिखने दिखलाने वाले ब्यूटी पार्लरों की भरमार तो गली-कूचों में है, पर इंटेलेक्चुअल्स पार्लर सिरे से नदारद ! यह षड्यंत्र नहीं तो भला और क्या है ?

हाल ही में लाजोला, कैलिफोर्निया के साल्क बायोलॉजिकल संस्थान के वैज्ञानिकों ने चूहों पर परीक्षण कर पता किया है कि नियमित दौड़ने से बौद्धिकता बढ़ती है। उन्होंने पाया कि खूब दौड़ लगाने वाले चूहों की सीखने और याद रखने की ताकत में वृद्धि होती है, क्योंकि इससे सीखने और याद रखने के काम आने वाली मस्तिष्क-कोशिका हिप्पोकैंपी के काम करने की क्षमता बढ़ जाती है। बहरहाल, यह खोज तो अब जाकर हुई है, जबकि दूर की कौड़ी खोज निकालने वाले बुद्धिजीवी शुरू से ही चूहे-दौड़ में शामिल रहे हैं ! 'मार्निंग वाक' के मूल में भी शायद यही बात रही हो। मगर बुद्धिजीवी तो इसका कारण डाइबिटीज बताते हैं। बुद्धिजीवी होने की पहली शर्त है, खुद को डाइबिटीज का मरीज घोषित करना। जो चाय में चीनी ले, तली हुई चीजें और मिठाइयाँ खाए-वह बुद्धिजीवी हो ही नहीं सकता।

'नीतिश्लोक' में कभी कहा था कि सभा में विद्वान और मूर्ख की पहचान बोलने के बाद ही होती है। अब तो इसे सिरे से खारिज कर दिया गया है। जो पहली नजर में बुद्धिजीवी नजर न आए, वह भला बुद्धिजीवी कैसा! सिर के चांद से ही तो बौद्धिकता में चार चाँद लगते हैं। अतः गंजापन बौद्धिकता का पर्याय है। जो जितना गंजा, वह उतना ही बौद्धिक। जो गंजे नहीं हैं, वे कृत्रिम साधनों का इस्तेमाल कर बुद्धिजीवियों की श्रेणी सहज ही पा सकते हैं। मरता क्या न करता! महिलाओं के लिए पहलवानों जैसे छोटे-छोटे बाल भी चलेंगे। पर, पुरुषों के लिए गंजी खोपड़ी के साथ-साथ चेहरे पर दाढ़ी रखना भी जरूरी है। दाढ़ी अगर खिचड़ी हो या बकरदाढ़ी (फ्रेंच कट) हो तो फिर क्या कहना! मगर इतना कुछ होने के बावजूद जिस शख्स की आँखों पर ऐनक न हो, वह बुद्धिजीवी कि बजाए लफंगा ही माना जाएगा। यदि पावर वाले चश्मे की आवश्यकता न भी हो, तो जीरो पावर का चश्मा लगाकर बुद्धिजीवी कहलाने में हर्ज क्या है!

चाहे मर्द हो या औरत, जीन्स पैंट पर खादी का कुरता या कोई रफ-टफ शर्ट, कंधे से लटकता आयातित बैग बुद्धिजीवी की निशानियाँ हैं। सिर्फ पहनावे-ओढ़ावे में ही नहीं, उठने-बैठने, चलने-फिरने और बोलने-बतियाने में भी इंटेलेक्चुअल्स की खुशबू आनी चाहिए। खाने और चाटने की कला में प्रवीणता तो अपेक्षित है ही। तीखी-खट्टी चीजों की जगह दिमाग चाटना और भोजन की बजाये भेजा खाना बुद्धिजीवियों की फितरत है। कहीं इनकी चुप्पी अखरती है तो कहीं अकारण चाटने की चटोरी अदा। बुद्धिजीवी का मतलब ही होता है बुद्धि को जीनेवाला। सोते-जागते, उठते-चलते बुद्धि का इस्तेमाल। चलते-फिरते बुद्धिविलासी होते हैं बुद्धिजीवी। बुद्धिजीवी तो बस बुद्धि को जीता है। इशारों-इशारों में ही, बिल्कुल उसी तरह, जिस तरह कालिदास ने एक ऊंगली के जवाब में दो ऊंगलियाँ और थप्पड़ के उत्तर में मुक्का दिखाकर विद्योत्तमा को जीत लिया था। अगर अपनी जिद होगी बुद्धिजीवी से शारीरिक श्रम करवाने की तो वह उसी डाल को कालिदास बनकर काटेगा, जिस पर स्वयं बैठा होगा। मान-सम्मान और मान्द उपाधियों का भुक्खड़ बुद्धिजीवी।

तिल को ताड़ और राई को पहाड़ बनाने में बुद्धिजीवी को महारत हासिल होती है। वह जिसे चाहे, शिखर पर पहुँचा सकता है और जिसकी चाहे, मिट्टी पलीद कर सकता है। कालिदास बनने के लिए अपनी ही डाल को काटने की कला उसे विरासत में मिली है। जिस क्षेत्र में वह कार्यरत है, उसका भट्ठा बैठाना वह जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। जो अत्याधुनिक नहीं, वह बुद्धिजीवी कैसा ! अतः अपने हर संस्कार, संस्कृति, परम्परा को सिरे से नकारते हुए इनसे जुड़े लोगों को बुर्जुआ व मनुवादी करार देना और खुद को खुले दिमाग का प्रगतिशील घोषित करना बौद्धिकता का द्योतक है। आस्तिकों की खिल्ली

उड़ाने, खुद को नास्तिक मानने, कट्टरपंथियों, मूर्तिपूजक, ब्राह्मणवादियों की खाट खड़ी करने तथा चोरी-छिपे मंदिरों में माथा टेकने में कोई हर्ज नहीं है। अंतर्विरोध ही तो बुद्धिजीवी होने का पुख्ता प्रमाण है। बगैर बोले महान मौनी वक्ता बनने, बगैर पढ़े विद्वान कहलाने और बगैर लिखे श्रेष्ठ सर्जक बने रहने की कला तो और विलक्षण है। हाँ, रौब गालिब करने की गरज से बात-बात में विदेशी उदाहरण देना न भूलें। मगर आपका लिखना-पढ़ना, बौद्धिकता झाड़ना कोई मायने नहीं रखता, यदि आप ऐरे-गैरे के समारोह-सम्मेलन में चले जाते हैं, नत्थू-खैरे से बोलते-बतियाते या सरोकार रखते हैं। इसलिए निहायत जरूरी है कि बुद्धिजीवी कहलाने के लिए आप बुद्धिजीवियों की कॉलोनी में रहें, बुद्धिजीवियों और सिर्फ बुद्धिजीवियों से सरोकार रखें और आम लोगों से न सिर्फ दूर रहें, बल्कि उन्हें अपने अस्तित्व से दूध की मक्खी की तरह निकाल दें। याद रखें, आप बुद्धिजीवी हैं, सिर्फ बुद्धिजीवियों के लिए हैं और सिर से पाँव तक, तन से मन-मस्तिष्क तक आजीवन बुद्धिजीवी रहेंगे। अगर आप इन मानदंडों के मद्देनजर सचमुच बुद्धिजीवी हैं तो जरा फेंकिये तो सही — इंटेलेक्चुअल्स पार्लर की जगमगाती दूधिया बौद्धिक मुसकान।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

शिद्दत दृढ़ता से साजिश षडयन्त्र पगुराना जानवरों द्वारा खाए गए चारे को अच्छी तरह से चबाना, जुगाली करना दुरुस्त ठीक दीगर अन्य खारिज नकारना, मना करना प्रवीणता निपुणता फितरत स्वभाव, प्रकृति आयातित बाहर से लाया गया महारत निपुणता बुर्जुआ पूंजीवाद द्योतक प्रतीक पुख्ता ठोस इंटेलेक्चुअल बौद्धिक

### मुहावरे

गर्व से सीना फूलना अति प्रसन्न होना लाखों में एक अपवादरूप चिराग लेकर ढूँढ़ना बहुत ढूँढ़ना दिमाग चाटना दिमाग खराब करना मिट्टी पलीद करना दुर्दशा करना खाट खड़ी करना हालत खराब करना ऐरा गैरा नत्थू खैरा साधारण व्यक्ति दूध की मक्खी बेकार की चीज़, फेंकने लायक चार चाँद लगाना शोभा में वृद्धि

### कहावत

- तिल को ताड़ और राई को पहाड़ बनाना छोटी-सी बात को बढ़ा देना
- आम खाने से मतलब पेड़ गिनने से नहीं अपने मतलब से काम रखना

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) लड़की के पिता ने रिश्ते से इन्कार क्यों किया ?
- (2) रिश्ते के लिए लड़के में किन गुणों का होना आवश्यक है ?
- (3) लेखक के अनुसार “बुद्धिजीवी” का क्या तात्पर्य है ?
- (4) चूहों पर किए गए परीक्षण में क्या पाया गया ?
- (5) बुद्धिजीवी होने की पहली शर्त क्या है ?
- (6) लेखक ने बौद्धिकता का पर्याय किसे माना है ?
- (7) लेखक के अनुसार ‘इन्टेलेक्चुअल्स की खुशबू’ से क्या तात्पर्य है ?

- (8) बुद्धिजीवियों की फितरत क्या है ?
- (9) बौद्धिकता के द्योतक से क्या तात्पर्य है ?

## 2. उत्तर लिखिए :

- (1) भगवती प्रसाद द्विवेदी के अनुसार किसे बुद्धिजीवी नहीं कहा जाएगा ?
- (2) बुद्धिजीवी होना और बुद्धिजीवी दिखना अलग बातें हैं, इसके संदर्भ में लेखक के विचार स्पष्ट कीजिए।
- (3) 'इन्टेलेक्चुअल्स पार्लर' में भगवती प्रसाद द्विवेदी के व्यंग्य के सभी सन्दर्भों को स्पष्ट कीजिए।
- (4) लेखक के अनुसार बुद्धिजीवी कहलाने के लिए निहायत जरूरी क्या है ? क्यों ?

## 3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) "जैसे हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती वैसे ही हर बुद्धिजीवी दिखने वाला व्यक्ति बुद्धिजीवी हो, यह कतई आवश्यक नहीं।"
- (2) "दुर्भाग्य है इस देश का कि खूबसूरत दिखने दिखलाने वाले ब्यूटी पार्लरों की भरमार तो गली-कूचों तक में है, पर इन्टेलेक्चुअल-पार्लर सिरे से नदारद।"
- (3) "अन्तर्विरोध ही तो बुद्धिजीवी होने का पुख्ता प्रमाण है।"

## 4. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

ऐरा-गैरा नत्थू खैरा, चार चाँद लगाना

## 5. कहावतों का अर्थ लिखकर वाक्य-प्रयोग कीजिए :

- (1) आम खाने से मतलब पेड़ गिनने से नहीं।
- (2) तिल को ताड़ और राई को पहाड़ बनाना।

### योग्यता-विस्तार

- नए जमाने के कुछ पार्लरों के बारे में जानकारी एकत्रित कीजिए।
- इन्टेलेक्चुअल दिखना आधुनिकता का पर्याय है - अपने विचार व्यक्त कीजिए।



छगन मोहता का जन्म राजस्थान के बीकानेर में हुआ था। राजस्थान के इस सुप्रसिद्ध चिंतक और समाज-सुधारक ने महिला-शिक्षा और अछूतों के क्षेत्र में क्रांतिकारी काम किया। उनकी विधिवत् शिक्षा तो बहुत कम हुई किंतु उन्होंने स्वाध्याय के द्वारा धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाज-राजनीति तथा साहित्य आदि का गहरा अध्ययन किया था। उनका संपूर्ण जीवन समाज-सेवा के लिए समर्पित हो गया।

उनके भाषणों - वक्तव्यों का संकलन 'संक्रांति और सनातनता' के नाम से प्रकाशित हुआ तो उससे गहरी हलचल मच गई और विचारकों ने उनकी बहुत सराहना की। राजनीति से अपने को अलग रखते हुए उन्होंने मानव के बेहतर जीवन के लिए निस्वार्थ काम किया। पर्यावरण को लेकर भी उन्होंने पर्याप्त विचार किया।

प्रस्तुत निबंध में पर्यावरण को व्यापक फलक पर परिभाषित करते हुए उसे बहुआयामी बताया गया है। पर्यावरण का सम्बंध सिर्फ प्रवृत्ति से ही नहीं, प्राणी मात्र की प्रत्येक प्रवृत्ति से है। लेखक ने पर्यावरण की समस्या को भारतीय दृष्टि से समझने का प्रयास किया है तथा इस बात पर बल दिया है कि प्रकृति के साहचर्य और उसके साथ संतुलन को बनाये रख कर ही हम शुद्ध पर्यावरण में साँस ले सकेंगे। औद्योगिक और वैज्ञानिक विकास ने प्रकृति का अनावश्यक दोहन कर पर्यावरण को इतना प्रदूषित कर दिया है कि प्रदूषण से बचने की गंभीर समस्या दिन-दिन विकट बनती जा रही है। इसके हल के लिए हमें पश्चिमी सोच से परे हटकर भारतीय नजरिए से विचार करना होगा। प्रकृति में सर्जन और विसर्जन का जो सहज क्रम है उसे बनाए रखना जरूरी है। चूहों को मारने के लिए बिल्लियाँ हैं, साँप हैं तो फिर मनुष्य को इस में दखल देने की जरूरत नहीं है। प्रकृति ने जो संतुलन बनाया है वही पर्यावरण की रक्षा करने में समर्थ है।

पर्यावरण को भारतीय दृष्टि से समझने की कोशिश करें। इसके साथ हमारी हजारों वर्षों की मित्रता है जिसके अनुसार पर्यावरण का क्षेत्र कोरा प्राकृतिक पर्यावरण का क्षेत्र नहीं है। हमारे यहाँ प्रकृति का बहुत व्यापक अर्थ लिया गया है। संसार की कोई ऐसी चीज नहीं है जो प्रकृति से अलग हो। तो हमारा घर और परिवार वह भी एक पर्यावरण है। पर्यावरण की हमारी शास्त्रीय परम्परा भी रही है कि प्रत्येक मनुष्य पर्यावरण में ही पैदा होता है, पर्यावरण में ही वह जीता है, पर्यावरण में ही वह लीन हो जाता है। पर्यावरण की इतनी व्यापक परिभाषा है। अब पर्यावरण के स्तर देखिए। मनुष्य परिवार में पैदा होता है, परिवार में जीता है, परिवार में मरता है या विलीन हो जाता है। आज उसे चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि पर्यावरण बहुआयामी है। प्रत्येक परिवार के इर्द-गिर्द एक सामाजिक पर्यावरण है और उसके कई आयाम हैं। एक आयाम आर्थिक है, दूसरा आयाम राजनैतिक है, तीसरा आयाम सांस्कृतिक है। बहु-केन्द्रित होने के कारण प्रत्येक आयाम का अपना एक केन्द्र होता है जहाँ से वह क्रियाशील रहता है। इस सारे सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पर्यावरण के इर्द-गिर्द एक और सजीव पर्यावरण है जिसे हम पशु-पक्षियों तथा जीवधारियों का पर्यावरण कहते हैं। उसके भी चारों ओर इन सब स्तरों में ओतप्रोत भौतिक तत्वों का पर्यावरण है। जिसे हम भौतिक, जलीय, वायवीय, आग्नेय और आकाशीय या विद्युत चुम्बकीय कहते हैं। ये प्रकृति के स्थल और प्रत्यक्ष आवरण हैं जिनका हमें अपनी ही इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान और भान होता रहता है। लेकिन पर्यावरण के सम्बन्ध में मीमांसा करते हुए हमारी परम्परा सिर्फ इतने में ही इतिश्री नहीं मान लेती। वह यह भी कहती है कि इन दृष्ट, प्रत्यक्ष स्तरों के अतिरिक्त पर्यावरण के कुछ अदृष्ट और अप्रत्यक्ष स्तर भी हैं जिनमें हम और हमारा दृष्ट और व्यक्त पर्यावरण प्रभावित होता रहता है और प्रभावित करता भी रहता है। उन स्तरों को हम जैविक या पर्यावरण एवं मानसिक या चित्तावरण कहते हैं। इन सब आवरणों से हमारा प्रतिक्षण सम्बन्ध बना हुआ है और हमारे जीवन व्यापारी का इन सब स्तरों से आदान-प्रदान होता रहता है। हमारे यहाँ कहावत है कि "यदि पानी कुएँ में नहीं है तो वह खेमें में यानी ऊपर कुण्ड में कहाँ से आयेगा।"

भारतवर्ष की हजारों वर्षों से यह मान्यता रही है कि प्रकृति से सन्तुलन को कायम रखा जाए। यह बहुत अच्छा है, मनुष्य के लिए भी अच्छा है और प्रकृति के लिए भी अच्छा है। इस सन्तुलन को अस्वाभाविक रूप से तोड़ो। लेकिन विज्ञान का जिस ढंग से

प्रयोग हो रहा है उसमें ऐसा लगता है कि सत्ता के लोभ से, धन के लोभ से ग्रस्त सभ्यता उसे रहने नहीं देती। वह हर हालत में प्रकृति के सन्तुलन को तोड़ना चाहती है। क्यों तोड़ना चाहती है ? मुझे लगता है कि उसमें एक दृष्टि-दोष है। पूर्व की दृष्टि यह रही है कि प्रकृति हमारी माता है और हमें उसके साथ सहयोग करना चाहिए। हमें उसके नियम समझ कर उसके अनुसार बर्ताव करना है। यह सही है कि प्रकृति किसी का लिहाज नहीं करती और उसके नियम समझना साइन्स के जरिए ही हो सकता है। लेकिन साइन्स के द्वारा प्रकृति के नियम समझ कर उसके साथ हमें सहयोग करना है। उसे आदर देना है। दूसरी दृष्टि है पश्चिम की कि प्रकृति एक तेज नाखूनों वाली राक्षसी है जो हर हालत में हमें मारना चाहती है, नष्ट करना चाहती है और इसलिए हमें किसी तरह से उसके साथ संघर्ष करना है। संघर्ष में अगर हम 'फिट' हैं तो हम जिन्दा रह सकते हैं नहीं तो प्रकृति हमें मार देगी। इसलिए प्रकृति को जानकर प्रकृति को अपने वश में करना है, इसका शोषण करना है। यह प्रकृति के साथ दुश्मनी की दृष्टि है और ये पश्चिम की अधिकांश दृष्टि है और इस दृष्टि को यदि आप पूरी तलाश करें तो बहुत पुरानी है यह दृष्टि।

पश्चिम ने दुनिया का नेतृत्व किया और आज हम देखते हैं कि जितना पर्यावरण प्रदूषण पश्चिम के उद्योग और व्यापार ने पैदा किया वह बहुत ज्यादा है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि हमारे यहाँ भी तो एक जमाना रहा है जिसमें व्यापार भी रहा है, सम्पन्नता भी रही है और प्रकृति का दोहन भी किया है। चार शब्दों का फर्क ध्यान में रखें—एक है प्रकृति का पोषण, दूसरा है प्रकृति का शोषण, तीसरा है प्रकृति का दोहन और चौथा है प्रकृति का प्रदूषण। इन चारों को आप समझ लीजिए तो प्रकृति के साथ हमें क्या सम्बन्ध रखना है, यह ध्यान में रखना है।

प्रकृति का हम शोषण करते हैं और जिस चीज का शोषण करते हैं उसे हम बिल्कुल नष्ट कर देना चाहते हैं। मैं आपको बीकानेर का ही एक उदाहरण देना चाहता हूँ। आप सबेरे-सबेरे जस्सूसर गेट जाकर चार-छह घण्टे के लिए बैठ जाएँ। आपको फोग की लकड़ियों के भरे हुए ट्रक दिखाई देंगे। वे लकड़ियाँ जड़ से काटी जा रही हैं एकदम। आइन्दा उगेगा नहीं फोग और आज लगाया जाए और 'बीस सूत्रीय कार्यक्रम' के अनुसार उस वृक्ष को लगाया जाय तो शायद 50 वर्ष में फोग के वृक्ष तैयार होंगे। तब तक क्या होगा ईंधन का। लेकिन आज ईंधन भी एक व्यापार की वस्तु बन गई है और उसके लिए ट्रक के ट्रक फोग को जड़ों से काटा जा रहा है। हमारी परम्परा में हमेशा पर्यावरण का पूजन भी किया जाता रहा। पर्यावरण की चीजों में देवत्व माना गया है और इसीलिए जीवित वृक्ष को काटना पाप समझते हैं। कभी भी नहीं काटना चाहिए उसे, और जड़ से तो कभी उसे काटना ही नहीं चाहिए। अगर सूखा भी है तो उसे जड़ से नहीं काटना चाहिए। जब तक कि वृक्ष पूरा मर नहीं जाता है। उसकी सूखी डालियों को काट लो ताकि वृक्ष फिर जिन्दा रह सके और वह आगे बढ़े। लेकिन आज उसका इतना शोषण होता है कि पन्द्रह-बीस वर्ष के बाद बीकानेर से पूगल के इलाके की तरफ पाकिस्तान की सीमा के इलाके तक आपको फोग की एक लड़की तक नहीं मिलेगी।

प्रकृति का अपना एक सन्तुलन है। मनुष्य को उसमें ज्यादा फेर-बदल करने की जरूरत नहीं है। चूहों को मारने के लिए बिल्लियाँ हैं, चूहों को मारने के लिए पक्षी भी हैं, चूहों को मारने के लिए खेतों में साँप भी हैं। वे सन्तुलन को बनाए रखते हैं। साँप को मारने के लिए पक्षी बहुत सारे हैं। चील भी मार देती है, दूसरे पक्षी भी मार देते हैं और नेवला भी मार देता है। तो प्रकृति में एक ऐसा सन्तुलन है जिसे हद से आगे बढ़ा देते हैं, तोड़ देते हैं, तो वह सन्तुलन बिगड़ता है और सन्तुलन बिगड़ना अस्वास्थ्य का लक्षण है। हमारे शरीर के अंगों का सन्तुलन है। हमारे रक्त-संचार का, हमारे श्वास का, हमारी पाचनक्रियाओं का एक सन्तुलन, एक सामंजस्य है। यह सामंजस्य जब बिगड़ता है तो कोई एक चीज बढ़ती है और दूसरी चीज घटती है। जो घटती है उसका शोषण होता है, जो बढ़ती है उसकी वृद्धि होती है, उससे स्वास्थ्य की हानि होती है। शरीर में आठ-दस ट्यूमर निकल आएँ और अंग सूख जाएँ एकदम 'एट्रोफी' हो जाए तो उसे हम स्वस्थ नहीं कह सकते। लेकिन हमारे उद्योगप्रधान आर्थिक ढाँचे से हमारे समाजिक और सांस्कृतिक शरीर में ट्यूमर पैदा हो जायेंगे। और ट्यूमर हमेशा शरीर के दूसरे आवश्यक अंगों का शोषण करके होते हैं। तो शोषण और उससे ठीक जुड़ी हुई प्रक्रिया है प्रदूषण। जो शोषण करते हैं उसी से प्रदूषण होता है।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि इस युग में हम उद्योग-धन्धे न करें या इण्डस्ट्री न हो। पर इण्डस्ट्री पर जिन लोगों

ने बहुत गहराई से सोचा है उनमें शूमाकर का नाम महत्त्वपूर्ण है। अभी कुछ वर्ष हुए उनकी मृत्यु हुई है। उन्होंने 'स्मॉल इज आ ब्यूटीफुल' नामक एक किताब लिखी है। वह कहते हैं कि इण्डस्ट्री चलाने के लिए पावर लगाएँ, चाहे आप उसे एटम से चलाएँ या बिजली से चलाएँ, किसी तरह से चलाएँ लेकिन उसका परिवेश के साथ सन्तुलन होना चाहिए और परिवेश के साथ सम्बन्ध होना चाहिए — आर्थिक सम्बन्ध भी, प्रशासनिक सम्बन्ध भी, सामाजिक सम्बन्ध भी और सांस्कृतिक सम्बन्ध भी। इन सारे सम्बन्धों का जो कॉम्प्लेक्स है उसमें यदि सन्तुलन, सामंजस्य है, तो वह स्वस्थ रहेगा, शोषण नहीं होगा और उसके माध्यम से एक शोषण भी मिलेगा और पारस्परिकता बढ़ेगी।

मनुष्य भी एक प्राकृतिक प्राणी है और उसका मन और बुद्धि भी प्रकृति का ही एक बहुत सूक्ष्म हिस्सा है। हम देखते हैं कि गुलाब का पौधा है, उसके नीचे खाद होती है, उसके इर्द-गिर्द तना होता है, उसके बाद काँटे होते हैं, काँटों के बाद पत्ते होते हैं, उनके बीच फूल किस तरह से खिलता है। गन्ध होती है। हमारी बुद्धि और हमारा मन फूल की तरह खिली हुई चीज हो सकती है। लेकिन उसके नीचे तो सारा सम्बन्ध इसी तरह का है। काँटे भी हैं, पत्ते भी हैं, तना भी है, मिट्टी भी है और जो 'मिनरल्स' धातुएँ हैं वह उन सबका पोषण करती हैं। इन सबको निकाल दें तो गुलाब के फूल का कोई अस्तित्व नहीं है। तो हमारी बौद्धिकता का, हमारी नैतिकता का, जिन-जिन ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की हम बातें करते हैं उन सबका आपस में निर्भरता का सम्बन्ध है और वह परिवेश के साथ निरन्तर बना रहता है। दो मिनट साँस रोककर देखें तो हमें पता लगेगा कि हवा की कितनी कीमत है। दो मिनट अगर हवा हमारे फेफड़े में नहीं जाए तो दम घुटने लगता है। तो परिवेश के जितने भी भौतिक तत्व हैं — हवा, पानी, प्रकाश, मिट्टी सबके साथ हमारा एक सन्तुलन होना चाहिए। उसी तरह जितने प्राणी, चाहे साँप हो, चीता हो, गाय हो, पशु हो, कोई भी हो, उनके साथ हमारा एक सन्तुलन बना रहना चाहिए। इसे कहते हैं इकोलोजी। एक नया साइन्स पनप रहा है और वह पर्यावरण का ही विज्ञान है। इसका अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से होता है क्योंकि वह सारी एक पुरानी कहावत है संस्कृत में, 'धर्मो रक्षति रक्षितः।' आप धर्म की रक्षा करिए, धर्म आपकी रक्षा करेगा। आप इसी अर्थ में लीजिए कि आप परिवेश की रक्षा करें, पर्यावरण को प्रदूषण से बचाएँ, पर्यावरण आपकी रक्षा करेगा। आप चुपचाप उसे उपेक्षा से नष्ट होने दीजिए, उसकी परवाह न करिए, इसे और जहरीला होने दीजिए, शोषित होने दीजिए, आपका पोषण मर जायेगा। श्वास के जरिए से, पानी के जरिए से, अन्न के जरिए से, मांस-मछली के जरिए से, एक जहर हमारे अन्दर पहुँचता जायेगा और हम धीरे-धीरे मृत्यु की ओर प्रयाण करते रहेंगे। तो मैं समझता हूँ कि मानव जाति के लिए जीवन और मरण का प्रश्न है और इसको सुलझाने के लिए प्रकृति के साथ सन्तुलन और सामंजस्य बनाए रखने की जरूरत है, और यही मनुष्य का धर्म है क्योंकि जो स्वाभाविक होता है वही धर्म होता है। जो अस्वभाविक होता है वह धर्म नहीं, होता है। सम्प्रदाय आदि को मैं धर्म नहीं मानता। 'जैन दर्शन' में लिखा है कि जो वस्तु का स्वभाव है, वही धर्म है। आग का जलना ही आग का धर्म है, पानी का बहना ही पानी का धर्म है, हवा का संचरित होना, श्वास का चलना हवा का धर्म है। जिस वस्तु का जो धर्म है उसके साथ में सन्तुलन ही हमारे शरीर को बनाए हुए है। उसे नहीं बिगाड़े। उसको बिगाड़ने की जो दृष्टि है, वह है—सामाजिक प्रदूषण। यह जो आज की अर्थव्यवस्था है उसे हम भोग-प्रधान अर्थव्यवस्था भी कह सकते हैं। यह सारी चीजों का सन्तुलन बिगाड़ती है।

पर्यावरण की दृष्टि को हमें शोषण रहित बनाना है, वह नारे बाजी से नहीं होगा। जिसे हम इकोलोजी की दृष्टि कहते हैं, इकोलोजी की दृष्टि को, पर्यावरण की दृष्टि को हमें सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र तक में उतारना है। अगर समाज में संघर्ष है, कलह है, शोषण है, अत्याचार है, अन्याय है तो निश्चित बात है कि समाज का यह जो परिवेश है और उसका पर्यावरण है वह भी दूषित हो रहा है। पर्यावरण का दूषण मानसिक तरीके से भी होता है, नारेबाजी से भी होता है, गुण्डागर्दी से भी होता है। उसका शोषण होता है। तत्काल हत्याओं में परिणत हो जाता है, तत्काल दुर्घटनाओं में, आत्मदाह में या आत्महत्याओं में परिवर्तित हो जाता है। तो प्रदूषण पर विचार करते हुए उसके तमाम पहलुओं पर विचार करना चाहिए।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

आयाम विस्तार, फैलाव **मीमांसा** विचारपूर्वक तत्त्वनिर्णय, विवेचना करना **इतिश्री** समाप्ति, पूर्णता **सामंजस्य** औचित्य, अनुकूलता



## स्वाध्याय

### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) पर्यावरण के आयाम बताइए।
- (2) पशु-पक्षियों और जीवधारियों का पर्यावरण किसे कहते हैं ?
- (3) प्रकृति के संतुलन के लिए क्या करना चाहिए ?
- (4) पश्चिम की प्रकृति कैसी है ?
- (5) सबसे ज्यादा प्रदूषण किसने किया है ? कैसे ?
- (6) हमारे जीवन में हवा की क्या अहमियत है ?
- (7) आज की अर्थव्यवस्था कैसी है ?

### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) पर्यावरण का संतुलन कैसे कायम रख सकते हैं ?
- (2) प्रकृति के शोषण से क्या होता है - उदाहरण के साथ समझाइए।
- (3) शोषण से प्रदूषण कैसे होता है - समझाइए।
- (4) इन्डस्ट्रीज को परिवेश के साथ क्यों संतुलन रखना चाहिए ?
- (5) प्रकृति के साथ संतुलन और सामंजस्य कैसे बनायेंगे ?

### 3. संधि विच्छेद कीजिए

अत्याचार, निरंतर, प्रत्यक्ष, चित्तावरण

## योग्यता-विस्तार

- 'पर्यावरण प्रदूषण : एक समस्या' - विषय पर निबन्ध लिखिए।

●

मालती जोशी का जन्म औरंगाबाद में हुआ था। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। कविता, कहानी और उपन्यास उनकी प्रिय विधा है। मूलतः मराठी भाषी मालती जी हिन्दी की महिला लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। बदलते हुए सामाजिक परिवेश में नारी-जीवन की समस्याओं एवं संवेदनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कथा-कृतियों में हुई है। उनका समग्र साहित्य जीवन के उन मानवीय मूल्यों का पक्षधर है जिसका आधार मध्यवर्गीय परिवार की नारी बनती है। भाषा की सहजता और सरलता पात्रों के अनुभवों को संप्रेषित करने में सहायक होती है।

उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं - समर्पिता, पाषाणयुग, पिया पीर न जानी, परिणय और मध्यांतर। उनके उपन्यासों के नाम हैं - राग विराग, सहचारिणी, पटाक्षेप, शोभायात्रा और रहिमान धागा प्रेम का। उनकी कहानियों का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है और हिन्दी में धारावाहिक बने हैं। उन्हें म. प्र. शासन का साहित्य शिखर सम्मान, अहिन्दी भाषी लेखिका सम्मान तथा मध्यप्रदेश हिन्दीसाहित्य सम्मेलन का भवभूति अलंकरण सम्मान प्राप्त हुआ है।

‘अग्निपथ’ कहानी चंदा नामक एक सुंदर, सुशील एवं शिक्षित युवती की व्यथा-कथा है, जो पति के क्रूर व्यवहार, सास की कटूक्तियों और दुर्भाग्य के दारुण खिलवाड़ का शिकार बन गई है। युवावस्था में अपनी सहेलियों में सबसे ज्यादा तेज-तरार चंदा का विवाहित जीवन नरक की यातना-सा बन गया है। इन सबके बावजूद संघर्ष करने की उसकी अदम्य इच्छा और बच्चों का भविष्य सँवारने के लिए आत्मनिर्भर बनने का उसका संकल्प उसके चरित्र को नई गरिमा तथा नई ऊँचाई प्रदान करता है। जीवन की अग्नि-परीक्षा में से सफलतापूर्वक बाहर आने का उसका साहस प्रेरक बन जाता है।

साल-दो साल बाद जब घर लौटती हूँ तो कहने-सुनने को कितनी बातें इकट्ठी हो जाती हैं। नियमित रूप से पत्रों का आदान-प्रदान होता रहता है। फिर भी बहुत कुछ अनकहा रह जाता है। खासकर सखी-सहेलियों की बातें, गली-मोहल्ले के किस्से। कुशल क्षेम की चिट्ठियों में ये सब बातें, कहाँ आ पाती हैं। इसलिए फिर चाय पीते हुए, खाना खाते हुए बातों का सिलसिला चलता ही रहता है।

खाना खाते हुए अम्मा ने पूछा, “चंदा का तो तुझे पता चल ही गया होगा न ? चिट्ठी में लिखा था शायद।”

“नहीं तो। क्या हुआ उसे ?”

“अरे, उसे क्या होना है ? पिछले महीने उसका घरवाला नहीं रहा।”

क्षण भर को, सिर्फ क्षण भर का कौर हाथ ही में रह गया। दूसरे ही पल छुटकारे की साँस लेते हुए मैंने कहा, “चलो अच्छा हुआ। एक पाप कटा।”

इस खबर पर दूसरी कोई टिप्पणी हो ही नहीं सकती थी, पर अम्मा एकदम भड़क गई, “कैसी बात कर रही है ? उस बेचारी की तो दुनिया ही उजड़ गई।”

“अम्मा ! उसकी दुनिया बसी ही कब थी जो उजड़ गई। और बेचारी तो वह तब थी जब वह भला आदमी उसकी जिंदगी को नरक बना रहा था। अब कम-से-कम चैन से जी तो सकेगी। मुझे तो खुशी है, उसकी जिंदगी का एक दुःखद अध्याय समाप्त हो गया।”

“जैसा भी था, उसका पति था वह। उसके दम पर चार लोगों के बीच वह सिर उठाकर चल सकती थी। वह चुटकी भर सिंदूर न रहे तो औरत का जीवन राख हो जाता है बिनो ! पर तुम आजकल की लड़कियाँ यह सब नहीं समझोगी।”

मैं कहना चाह रही थी कि इस चुटकीभर सिंदूर के रहते भी चंदा का जीवन राख ही था। अब और राख क्या होगा ? पर चुप लगा गई। जब से बाबू जी गए हैं, अम्मा इस मामले में बहुत भावुक हो गई हैं। इसलिए उनका दिल दुखाने की इच्छा नहीं हुई। फिर पूरे दिन चंदा ही मन में चक्कर काटती रही। स्कूल से लेकर कॉलेज तक की सारी बातें याद आती रहीं। हम शैतान लड़कियों का एक ग्रुप था। चंदा हम सबकी लीडर थी, क्योंकि वही हम सब में स्मार्ट, निडर और दिलेर थी। शादी के मंडप में जब उसे घूँघट में दबी-ढकी देखी थी तो हम सबकी हँसी छूट गई थी। लगा था, जैसे चंदा कोई स्वाँग कर रही हो।

हमारे ग्रुप में सबसे पहली शादी चंदा की हुई थी। इसीलिए हम सबने गोपियों की तरह उसके दूल्हे को घेर रखा था। वह जैसे सबके सपनों का राजकुमार था। सुदर्शन, आकर्षक, रोबदार....। किसी विदेशी कंपनी में एकजीक्यूटिव पोस्ट पर था। बोल-चाल में एक विदेशी ठसक थी। हम सब उसकी एक-एक भंगिमा पर मिटी थीं। एक-एक मुस्कान पर न्योछावर हो रही थीं।

साल भर तक चंदा हम सबकी ईर्ष्या की विषय बनी रही। फिर एक-एक करके हम सबकी शादियाँ होती गईं। चंदा का ब्याह पुराना पड़ गया।

फिर एक दिन उड़ते-उड़ते खबर सुनी कि वह विदेशी कंपनी डूब गई है। चंदा का पति बेकार हो गया है। उस समय हम सब अपनी-अपनी गृहस्थी में इतनी रच-बस गई थीं कि खबर सुनकर एक उसाँस भर ली। बस, वैसे यह कोई गंभीर बात थी भी नहीं।

एक नौकरी छूटती है तो आदमी दूसरी ढूँढ़ लेता है या कोई धंधा कर लेता है। चंदा के पति ने भी कुछ-न-कुछ जुगाड़ कर ही लिया होगा।

प्रथम प्रसव के समय अम्मा के पास आना जरूरी हो गया था। घर में कोई देखने वाला था नहीं। और डॉक्टरों ने भी काफी डरा दिया था। आने के बाद मालूम हुआ कि चंदा भी इन दिनों आई हुई है। जानकर बेहद खुशी हुई। उससे मिले दो-तीन साल हो चले थे। मेरी जाने लायक स्थिति नहीं थी, पर अम्मा का संदेश मिलते ही वह आ पहुँची। उसे देखा तो मेरी सारी खुशी काफूर हो गई। वह बुझा-बुझा-सा चेहरा और सूखी-सी हँसी। यह चंदा तो पहचानी ही नहीं जा रही थी।

मुझे देखते ही उसका चेहरा खिल उठा। जी भरकर भेंट लेने के बाद मैंने उसे अपने पास बिठाते हुए चुहल की, “तू ऐसी सूखकर काँटा क्यों हो रही है ? हमारे जीजा जी कुछ खिलाते-पिलाते नहीं क्या ?”

“तुम्हारे जीजा जी को मूँछों पर ताव देने से फुर्सत मिले तब तो मेरी ओर देखेंगे।”

मैंने तो मजाक में एक बात कही थी, पर उसने जो उत्तर दिया वह मजाक नहीं था। वह एक कड़वी सच्चाई थी, क्योंकि उसका चेहरा एक असह्य रोष से भर उठा था।

“बात क्या है चंदा ? तुम खुश नहीं लग रही। घर में सब ठीक तो है न ?

“जिसका पति निठल्ला हो, उसके लिए कहीं भी कुछ ठीक नहीं होता शालू। यही घर था जहाँ सब लोग मुझे हाथोहाथ लेते थे। आज मेरी स्थिति नौकरानी से भी बदतर हो गई है। इनकी नौकरी जाते ही सबके चेहरे बदल गए हैं।”

“एक नौकरी चली गई तो क्या हुआ ? करने वाले के लिए काम की कमी थोड़े ही है। वे चाहें तो सौ नौकरियाँ जुटा सकते हैं। पर उन्हें तो वैसी नौकरी ही चाहिए। जरा भी उन्नीस-बीस नहीं चलेगा। ऐसी नौकरी कहाँ मिलेगी ? वह तो बिल्ली के भाग से छींका टूट गया था, समझी। मेरे पापा भी उसी चकाचौंध में मारे गए। नहीं तो क्वालीफिकेशन के नाम पर सिर्फ बी. कॉम. की एक डिग्री है। उसी के लायक काम मिलता है। वह इन्हें करना नहीं है।” चंदा की कहानी सुनकर मन उदास हो गया। लगा कि उसके सुख को हम ईर्ष्यालु सखियों की नजर तो नहीं लग गई ?

कालांतर में दो दुर्घटनाएँ और घटी। चंदा के यहाँ दूसरा बेटा पैदा हुआ और हताशा में डूबे उसके पति ने पीना शुरू कर दिया। दोनों ही बातों ने चंदा को जैसे तोड़कर रख दिया।

छोटे भाई की शादी में जब घर आना हुआ तो चंदा से फिर मुलाकात हो गई। फीकी हँसी हँसकर बोली, “अब तो हमेशा मुलाकात हुआ करेगी। मैं हमेशा के लिए यहाँ आ गई हूँ।”

“क्या बात करती हो ?”

“बर्दाश्त की भी एक हद होती है शालू। और वह मैं पार कर चुकी हूँ। मैंने श्रीमान जी से कहा कि जब तक आपके मनलायक काम नहीं मिल जाता, नौकरी करने दीजिए। मैं अपने बच्चों को दूसरों के टुकड़ों पर नहीं पाल सकती। आखिर मेरा पढ़ा-लिखा कब काम आएगा। बस, मेरा इतना कहना था कि घर में जैसे तूफान आ गया। घर की इज्जत उछालने के लिए मेरी बहुत लानत-मलामत की गई। लेकिन मैंने भी अब ठान लिया है। तबीयत का बहाना बनाकर आ गई हूँ। अब यहीं कुछ करूँगी।”

“चंदा”, मैंने गंभीर स्वर में कहा, “पीहर का रहना चार दिन के लिए अच्छा होता है। हमेशा के लिए रहना चाहोगी तो मुसीबत होगी। यहाँ भी अपमान के घूँट पीने पड़ेंगे।”

“मैं समझती हूँ शालू। इसलिए नौकरी लगते ही अलग कमरा ले लूँगी। पर यहाँ रहने से मुझ पर भी बाप का साया तो रहेगा। भैया का सहारा तो मिलेगा। छोटे-छोटे बच्चों को लेकर मैं किसी तीसरी जगह कैसे रहूँगी।”

उसने जैसा कहा था, करके दिखाया। नौकरी लगते ही तो संभव नहीं हो सका, पर छह महीने में उसने अपने लिए वन रूम व किचन का जुगाड़ कर लिया। सुबह काम पर जाते हुए बच्चों को माँ के पास छोड़ जाती। शाम को उन्हें लेते हुए डेरे पर लौट आती। कई बार माँ उसके पास आकर रह जाती। बच्चों को स्कूल जाने के लिए ले जाने का काम भी नानी ही के जिम्मे था। अस्तित्व के इस संघर्ष में माँ साए की तरह चंदा के साथ रही। न उन्होंने बिरादरी की आलोचना की परवाह की, न समझियाने की धमकियों की। हाँ, चंदा के इस अप्रत्याशित निर्णय से उसकी ससुराल में खलबली मच गई थी। जो कदम चंदा जैसी स्वाभिमानी लड़की के लिए सहज स्वाभाविक था, वही उन्हें बहुत नागवार गुजरा था। एक दिन उसके जेठ और ससुर उसके दरवाजे आकर कहनी-अनकहनी सब कह गए थे और इस रिश्ते को एक तरह से समाप्त कर गए थे।

उसके बाद मैं जब भी अम्मा के यहाँ जाती, चंदा से भेंट हो ही जाती। उसका आत्मविश्वास लौट आया था। वह फिर से पहले जैसी हँसोड़ हो गई थी। जिंदगी का वह दुःखद अध्याय उसने अपने मन की किताब से फाड़कर फेंक दिया था। बच्चे भी बहुत प्यारे थे और जहीन थे। उन्हें देखती तो मन कैसा तो हो आता। क्या इन्हें पिता का अभाव न खलता होगा ? इस अनिवार्य सुख से बेचारे वंचित क्यों रह गए ?

पिछली बार मैं भतीजे के मुंडन पर आई थी तो अम्मा ने बताया कि चंदा का घरवाला आजकल यहीं आया हुआ है।

“अरे, ये सूखी नदी में बाढ़ कैसे आ गई।” किसी एक्सीडेंट में हाथ-पैर तुड़वाकर बैठा है। ऐसे में तो बीबी ही याद आती है।” सुनकर कितनी कोफ्त हुई। इतने सालों से कभी कोई खोज-खबर नहीं ली। कभी यह भी नहीं पूछा कि क्या खा रही हो, बच्चों को क्या खिला रही हो। सेवा के लिए एकदम बीबी याद आ गई। बेशर्मी की भी हद होती है।

जाने का बिलकुल मन नहीं था, पर अम्मा ने टेल-ठालकर भेज दिया। अम्मा को लोकापवाद की बड़ी चिंता रहती है। जब भी आती हूँ, पाँच-दस घर मुझे ऐसे ही घुमा देती है।

मैं समय से ही पहुँच गई थी, पर चंदा तब तक लौटी न थी। दरवाजे में पैर रखते ही उसके पति से सामना हो गया। वही

तो घर का एकमात्र कमरा था। वहीं उसका बिस्तर लगा हुआ था। वह सजीला, सुदर्शन नौजवान वक्त की मार खाकर कंकाल भर रह गया था। चेहरे पर बेचारगी और काइयॉपन का अजीब-सा मिश्रण था। नमस्ते के जवाब में उसने भीतर से किसी को आवाज दी और करवट बदलकर लेट गया।

भीतर से जो निकली, वे शायद चंदा की सास थीं, क्योंकि जब मैंने अपना परिचय दिया तो बोली, “तुम्हारी सहेली को तो घड़ी भर उसके पास बैठने की फुर्सत नहीं है, पर मैंने तो नौ महीने इसे पेट में रखा है। मैं इसे लावारिस कैसे छोड़ दूँ। तभी तो इनके दरवाजे पड़ी हूँ।”

अच्छा हुआ, उसी समय चंदा आ गई, नहीं तो मेरा तो वहाँ से भागने का मन हो रहा था। चंदा बेहद थकी और निढाल-सी लग रही थी। मेरे पास बैठते हुए बोली, “लौटते हुए सब्जी मार्केट उतर जाती हूँ, वहाँ से फिर पैदल ही आना पड़ता है। पस्त हो जाती हूँ।”

वह पस्त हो गई थी, यह तो नजर ही आ रहा था पर मुझे यह भी लगा कि इस बार वह मुझे देखकर खुश नहीं हुई। मेरा भी उस माहौल में दम घुट रहा था। दो-चार औपचारिक बातें करके मैं उठ खड़ी हुई। उसने मुझे रुकने के लिए भी नहीं कहा। दरवाजे तक वह मुझे छोड़ने आई तो मैंने पूछ लिया, “ये लोग क्या अब यहीं रहेंगे ?”

उत्तर में उसने कहा, “शालू, मैं बड़ी खुश थी कि उस नरक से निकल आई हूँ। पर भाग्य तो देखो नरक मेरा पीछा करता हुआ यहाँ तक चला आया है।”

उसकी इस स्पष्टोक्ति पर मैं संकोच से भर उठी। फिर भी मैंने पूछा, “इतनी-सी जगह में तुम लोग कैसे एडजस्ट करते हो ? मेरा मतलब है तुम्हारी सास भी.....”

“उन्हें मैं ही चिरौरी कर ले आई हूँ। तभी तो दिन-रात एहसान जताती हूँ। पर तुम्हीं बताओ, मैं नौकरी करूँ कि इन्हें देखूँ ? कोई दो-चार दिन की बात तो है नहीं। अब जिंदगी भर भुगतना है।”

“मतलब”

“कमर के नीचे का पूरा भाग बेकार हो गया है। अब वे कभी अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकेंगे।”

सुनकर सन्न रह गई मैं। भगवान जैसे इस खुद्दार लड़की की परीक्षा लेने पर ही उतारू था। मैंने पूछा, “एक्सीडेंट हुआ कैसे ?”

“नशे में धुत होकर गाड़ी चला रहे थे। भिड़ गए। पहले तो वहीं इलाज होता रहा, पर जब पता चला कि जिंदगी भर के लिए अपाहिज हो गए हैं तो भाई लोग आकर यहाँ डाल गए। तब से कोई झाँकने नहीं आया, न किसी ने पाँच पैसे ही भेजे हैं। मैं बच्चों के मुँह का कौर छीनकर माँ-बेटे को पाल रही हूँ। दवाइयों का खर्च है, सो अलग।”

उस भले मानस की मृत्यु की खबर सुनते ही पिछला सारा इतिहास मेरी आँखों के सामने तैर गया। एक बार फिर मुँह से यही निकला, “चलो अच्छा हुआ, पाप कटा। जिंदगी भर इस बोझ को ढोना क्या उसके बस का था ? तीन साल में ही छक्के छूट गए होंगे।”

दूसरे दिन सारे काम रोककर मैंने चंदा के घर का रुख किया। अकेले जाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। मातमपुरसी में जाते वैसे ही दिल काँपता है। यहाँ तो मामला और भी पेचीदा था। भीतर से दुःख का जरा भी अहसास नहीं हो रहा था, पर दिखावा करते भी डर लग रहा था। चंदा तो मेरा झूठ फौरन पकड़ लेगी।

अपनी हड़बड़ी में समय का मुझे ध्यान ही नहीं रहा। यह तो वहाँ जाकर पता लगा कि मैं जरा जल्दी पहुँच गई हूँ, चंदा अभी स्कूल से लौटी नहीं है। दरवाजा उसकी सास ने खोला था। मन तो हुआ कि उलटे पैरों लौट जाऊँ, पर मुझे देखते ही उन्होंने पंचम में रोना प्रारंभ कर दिया। उनके पुत्र-शोक का अपमान करके निकल जाना मुझे अशोभन लगा।

उनकी रुलाई का आवेश थोड़ा-सा कम होते ही मैंने पूछ लिया, “चंदा कब तक लौटती है ?”

उनका रोना एकदम थम गया। बोली, “अब जब भी आ जाए। कोई टाइम-टेबल थोड़े ही है। सवा महीना घर में बैठ ली, यही बहुत है। एक बार औरत का पैर घर से बाहर निकल जाए तो फिर चाट-सी पड़ जाती है।”

मुझे उस औरत से एकदम वितृष्णा हो गई। कहाँ तो अभी जार-जार रो रही थी और दूसरे ही क्षण ऐसी घिनौनी बातें। एक करारा-सा मुँहतोड़ जवाब देने की इच्छा हो रही थी, पर संस्कार आड़े आ गए। फिर भी मैंने इतना तो कह ही दिया, “घर से बाहर निकलने का किसी को शौक नहीं होता, मजबूरियाँ होती हैं।”

“ऐसी कोई मजबूरी नहीं थी”, वे ताव खाकर बोलीं, “जितना वह कमाती है, उतना तो हम अपने मुंशी को दे देते हैं। इसे ही जिद चढ़ी थी। मैके वाले भी ऐसे हैं कि बस ! समझाना तो दूर उल्टे शह देते रहे। नहीं तो क्या घर छोड़कर आने की उसमें हिम्मत थी। अब-चार बर्तन जहाँ होते हैं, खनकते ही हैं। इस कारण से कोई घर तो नहीं छोड़ देता। अपने दिन खराब चल रहे हों तो थोड़ा सब्र भी करना चाहिए। क्या बताऊँ बेटा, इसी गम में उसके ससुर चले गए। इसी दुख में बेटे ने शराब की लत पाल ली.....।” कहते-कहते वे फिर सुबकने लगी।

मन हुआ कह दूँ कि अपमान सहने की शक्ति सब में एक-सी नहीं होती। पर मैं किसी नए विवाद को शुरू करना नहीं चाहती थी। विषय बदलने के लिए मैंने कहा, “आप रुक गई, यह अच्छा हुआ। नहीं तो ये लोग एकदम अकेले पड़ जाते।”

“अरे यहाँ किसी को मेरी जरूरत नहीं है, जिसके लिए आई थी, वह तो चला गया। अब मेरे लिए यहाँ क्या रखा है। पर जो चला गया उसके नाम से साल भर मंदिर में दीया जलाना है। यहाँ तो किसी को फुर्सत नहीं है। बच्चे भी ऐसे निर्मोही हैं कि बस। मेरे को क्या याद करेंगे !”

और क्यों करेंगे, मैंने सोचा। बाप ने उनके लिए क्या किया है ? उनके जीवन में सिर्फ अभाव और अपमान ही तो बोया है। अपनी याददाश्त में उन्होंने बाप को सिर्फ खाट पर पसरे ही देखा है। उसकी तुलना में, अस्तित्व के लिए जूझती माँ उन्हें ज्यादा अपनी लगी हो तो आश्चर्य क्या है ? बच्चे फैसला करने में बड़े माहिर होते हैं।

पर ये सारी बातें उस जटिल औरत की समझ से परे थीं। वे केवल अपने ही दुख को बड़ा करके देख रही थीं, सबकी सहानुभूति बटोरना चाह रही थीं। मुझे तो उनकी बातें सुन-सुनकर उबकाई आने लगी थी।

चंदा आई। मुझे देखकर उसके चेहरे पर कई रंग आए और गए। फिर वह कुछ बोली नहीं। चुपचाप मेरे पास आकर बैठ गई। मैंने उसका हाथ अपनी हथेलियों में ले लिया और देर तक हम दोनों निःशब्द बैठी रहीं। वह संवेदनाभरा स्पर्श ही एक-दूसरे को समझने के लिए काफी था।

“बच्चे नजर नहीं आए ?” बड़ी देर बाद मैंने पूछा, “ट्यूशन पढ़ने गए हैं।” घर में तो पढ़ाई हो नहीं पाती। ट्यूशन भी अपने बस की कहाँ थी। वह तो भैया के एक दोस्त हैं। उनकी क्लास चलती है। उसी में दोनों को बिठा लेते हैं।”

फिर हम दोनों शिक्षा के घटते स्तर और बढ़ते बोझ पर चर्चा करने लगीं। उसकी सास ठोड़ी पर हाथ दिए कुछ देर तक हमारी बातें सुनती रहीं, पर उनके मतलब की कोई बात न हुई तो उठकर भीतर चली गई।

उनके भीतर जाते ही मैंने कहा, “ये देवी जी गई नहीं ?”

“कोई लिवा ले जाए तब न जाएँगी। अभी सब लोग आए थे, पर किसी ने चलने के लिए नहीं कहा। इस मुसीबत को कौन गले लगाएगा। तीन साल में उन लोगों को आजादी की आदत पड़ गई है।”

“मतलब, इनसे मुक्ति नहीं है ?”

“मुझे तो आदत हो गई है। उन पर दया भी आती है। इस उम्र में उन्हें यह दुःख भोगना पड़ा है। यहाँ रहेंगी तो मेरे बच्चों के सर पर भी साया रहेगा। उस घर से थोड़ा जुड़ाव बना रहेगा।” चंदा कुछ रुक कर बोली, “लेकिन ढंग से रहती भी तो नहीं। दिन-रात बच्चों के मन में जहर बोती रहती हैं। मेरा पहनना ओढ़ना उन्हें पहले भी नागवार गुजरता था। मैं रोटी की तलाश में बाहर भटकती थी और वे अपने बेटे के कान भरती थीं। उसे रात-दिन कोंचती थीं। “चाय पियोगी ?” प्रस्ताव इतना आकस्मिक था कि मैं कुछ उत्तर ही न दे पाई।

उसने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की और उठकर चाय बनाने चल दी। मैं भी साथ-साथ ही चल पड़ी थी, पर दरवाजे में ही ठिठक गई, क्योंकि उसकी सास कह रही थीं, “तेरी यह सहेली यहाँ चाय पीने आई है या स्यापा करने ?”

मैं संकोच से भर उठी। मन हुआ, उलटे पैरों लौट जाऊँ; पर फिर मुझमें और चंदा की सास में फर्क क्या रह जाता। किंकर्तव्यविमूढ़-सी वहीं चौखट के परे खड़ी रह गई। चंदा ने इत्मीनान से गैस जलाकर चाय का पानी चढ़ाया और सास से बोली, “चाय मैं अपने लिए बना रही हूँ।” दिन भर मगजमारी करके आई हूँ। एक कप चाय का मेरा हक बनता है। शालू बैठी थी, इसलिए उससे पूछ लिया। आप पीना चाहें तो आपके लिए भी बन जाएगी।”

उत्तर में उन्होंने एकदम सुबकना प्रारंभ कर दिया, “अरी करमजली, कभी तो उस अभागे के लिए दो आँसू ढलका लिया कर। बेचारे की आत्मा कलपती होगी।”

वे एकदम फट पड़ीं, “ऐसे लच्छन हैं, तभी तो भरी जवानी में सुहाग उजड़ गया। भगवान सब देखते हैं।”

चाय के कप लेकर चंदा बैठक में आ गई थी। सास की बात सुनकर उसने पीछे पलटकर, “कुछ तो तुम्हारे कर्मों का भी दोष होगा अम्मा ! नहीं तो बुढ़ापे में तुम्हें ये दुःख क्यों झेलना पड़ता। रही मेरे सुहाग उजड़ने की बात, तो मैं सुहागवती थी ही कब ? मेरा गठजोड़ तो दुर्भाग्य के साथ हुआ था। वह तो अब भी मेरे साथ है। फिर मातम किसका मनाऊँ !”

उसकी इस बात का बुढ़िया से कोई जवाब देते न बना। और देती भी क्या ? वह महज एक बात नहीं थी। चंदा के दांपत्य का पूरा इतिहास था।

( पिया पीर न जानी )

### शब्दार्थ-टिप्पणी

आदान-प्रदान लेन-देन काफूर उड़ जाना निठल्ला बेकार हताश निराश बर्दाशत सहन करना जहीन समझदार वंचित रहित वितृष्णा घृणा जार-जार फूट-फूटकर स्यापा विलाप, मरने पर विलाप करना किंकर्तव्यविमूढ़ कुछ न सूझना मातम शोक मातम पुरसी शोक प्रकट करना नागवार बुरा लगना

### मुहावरे

ठान लेना निश्चय करना ताव खाकर क्रोधित होकर गले लगाना स्नेह करना

## स्वाध्याय

### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) चन्दा को देखकर सखियों को ऐसा क्यों लगा कि वह स्वाँग कर रही है ?
- (2) परिवार में चन्दा के प्रति लोगों का व्यवहार क्यों बदल गया ?
- (3) विवाह के पश्चात् सखियाँ चन्दा को ईर्ष्यालु नजर से क्यों देखती थीं ?
- (4) पति ने चन्दा को नौकरी करने से मना क्यों कर दिया ?
- (5) अग्नि-पथ कहानी में चन्दा का पति अन्य नौकरी क्यों न कर सका ?
- (6) चन्दा अपनी सास को क्यों बुला लाई थी ?
- (7) चन्दा ससुराल को नरक क्यों मानती है ?
- (8) चन्दा के पति अपाहिज कैसे हुए ?
- (9) चन्दा के पति के मृत्यु का समाचार सुन शालू दुःखी क्यों नहीं होती ?

### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) चन्दा एक कर्तव्यनिष्ठ, स्वाभिमानी महिला है – स्पष्ट कीजिए
- (2) अस्तित्व के संघर्ष के लिए चन्दा ने किन-किन समस्याओं का सामना किया ?
- (3) चन्दा की सास चन्दा के प्रति संवेदनहीन क्यों है ?
- (4) चन्दा के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
- (5) 'आधुनिक, स्वाभिमानी, कर्तव्यनिष्ठ होते हुए भी चन्दा ने भारतीय संस्कृति को जीवित रखा' – स्पष्ट कीजिए।

### 3. संसदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) “ भगवान जैसे इस खुद्दर लड़की की परीक्षा लेने पर ही उतारू था। ”
- (2) “ मैं बड़ी ही खुश थी कि उस नरक से निकल आयी हूँ। पर भाग्य तो देखो नरक मेरा पीछा करते हुए यहाँ तक चला आया। ”

### 4. मुहावरों का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

- (1) ठान लेना
- (2) ताव खाकर

## योग्यता-विस्तार

- स्वाभिमानी, कर्तव्यनिष्ठ स्त्रियों पर आधारित कहानियाँ ढूँढ़कर पढ़िए।
- 'वर्तमान समय में नारी पुरुष के समकक्ष है' – अपने विचार स्पष्ट कीजिए।





सप्रेजी का जन्म मध्यप्रदेश के दमोह जिले के पथरिया गाँव में हुआ था। इनकी शिक्षा क्रमशः विलासपुर और जबलपुर में हुई। सन् 1900 में इन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक पत्र शुरू किया। सन् 1909 में नागपुर से 'हिन्दी ग्रंथ माला' का प्रकाशन आरंभ किया। इसके बाद बालगंगाधर तिलक के 'केसरी' पत्र से प्रेरित होकर 'हिन्दी केसरी' पत्र का प्रकाशन किया।

सप्रेजी मराठी भाषी थे अतः उन्होंने कई मराठी ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद किया। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के मराठी ग्रंथ 'गीता रहस्य' का हिन्दी में अनुवाद किया। इस दौरान उन्होंने समाज, शिक्षा और राजनीति से संबंधित अनेक निबंध लिखे। इनके हिन्दी प्रेम से प्रभावित होकर इन्हें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पंद्रहवें देहरादून अधिवेशन में सभापति मनोनीत किया गया। मध्यप्रदेश के कई लेखकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया।

'योग्यता और व्यवसाय का चुनाव' युवा पीढ़ी को केन्द्र में रखकर लिखा गया एक विचार प्रधान निबंध है। विवेक और विचारपूर्वक व्यवसाय चुनने में ही जीवन की सफलता है। जिस व्यवसाय का हम चयन करें वह हमारे मन, इच्छा, कार्यक्षमता और प्रकृति के अनुरूप होना जरूरी है। इसके लिए व्यवसाय संबंधी जानकारी, अनुभव और कुशलता अर्जित करना भी आवश्यक होता है। नई पीढ़ी में बाबू - साहिबी की बीमारी बढ़ती जा रही है, शारीरिक श्रम करने में लोगों को शर्म आती है। लेखक के विचार से कोई व्यवसाय छोटा नहीं होता, यदि दृढ़ता एवं लगन के साथ व्यक्ति अपना काम करता रहे तो सफलता उसे अवश्य प्राप्त होती है।

प्रत्येक मनुष्य के लिए किसी न किसी व्यवसाय, रोजगार-धन्धे अथवा पेशे की आवश्यकता है और अपने लिए बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवसाय चुनने में ही मनुष्य जीवन का सफल होना अवलम्बित है। ऐसे बहुत ही थोड़े-हजारों में एक मनुष्य होंगे जिन्हें जीवन-निर्वाह के लिए कुछ उद्योग नहीं करना पड़ता। अर्थात् जिनके पास आवश्यकता से बहुत ही अधिक सम्पत्ति होती है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को अपने लिए कुछ न कुछ कार्य चुनने की आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि ऐसे मनुष्यों को उदर-पूर्ति के लिए भले ही कष्ट न उठाना पड़े, परन्तु अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा उसे आलस्य से बचाने के लिए, इच्छा न होने पर भी कुछ काम करना ही पड़ता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवन काम करने के लिए ही बनाया गया है और धनवान तथा धनहीन कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

यद्यपि इस बात की सत्यता निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ व्यवसाय या कार्य करना ही पड़ेगा, तथापि बहुत-से युवकों को इस बात में डर और घृणा होती है। वे अपने माता-पिता का पिण्ड नहीं छोड़ना चाहते और रोटी के प्रश्न को स्वयं हल करना बेइज्जती समझते हैं। परन्तु उन्हें भी कभी न कभी, जल्दी अथवा देरी से, कुछ कार्यारम्भ करना ही पड़ता है। इसलिए प्रत्येक युवक का, जो संसार में प्रवेश करके विजय कामना रखता हो, यह कर्तव्य है कि वह शीघ्र ही इस बात का निश्चय कर ले, कि वह अपनी सारी शक्तियों को किस काम में लगायेगा। अनिश्चित अवस्था में रहकर विलम्ब करने और व्यर्थ समय खोने से कुछ लाभ न होगा।

बहुत-से मनुष्य सुख का अर्थ नहीं समझते। वे कार्य के अभाव अर्थात् आलस्य के साथ समय बिताने को सुख का साधन समझते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। कहा जाता है कि उद्योग-रहित और कार्यहीन मनुष्यों का मन शैतान का निवास-स्थान होता है। भारतवर्ष के एक बड़े अधिकारी को यह आज्ञा मिली कि "अब तुम्हारे नौकरी के दिन पूरे हो गये। तुमने ईमानदारी से काम किया, इसके उपलक्ष्य में तुम्हें पेंशन मिला करेगी।" जब उसे यह आज्ञा मिली तब वह बहुत ही खुश हुआ। खुशी इस बात की थी कि उसे अब काम नहीं करना पड़ेगा और मजे में दिन काटने का अवसर मिला करेगा। उसने खुशी के आवेश में अपने एक

मित्र को यह पत्र लिख भेजा, “अब मैंने दिन-भर के झंझटों से छुट्टी पायी। दिन-रात काम करने से जी ऊब गया था। अब मुझे दस गुनी तनख्वाह मिले तो भी मैं काम नहीं करूँगा।” दो-चार-आठ दिन बीत जाने पर जब वह बैठे-बैठे तंग आने लगा और जब उसने देखा कि काम किए बिना आलसपूर्ण जीवन बड़ा ही दुःखदायी होता है, तब उसने फिर अपने उस मित्र को शोक के साथ लिखा, “भाई ! मैं समझता था कि काम न करने ही में आनन्द है, परन्तु बिल्कुल उलटी है। अब मुझे साफ़-साफ़ मालूम हो रहा है कि मेरा पूर्व जीवन बहुत ही उत्तम और सुखपूर्ण था। जितना ही अधिक काम करना पड़ता था, उतना ही अधिक सुख मिलता था।” सारांश यह है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना मनुष्य के देह-धर्म के विरुद्ध है। मनुष्य का मन पनचक्की के समान है। जब उसमें गेहूँ डालते जाओगे तब वह गेहूँ को पीसकर आटा बना देगी। परन्तु जब उसमें गेहूँ न डालोगे तब वह स्वयं अपने-आपको पीसकर क्षीण बना डालेगी।

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि काम न करना अथवा आलसपूर्ण जीवन बिता देना देह-धर्म के विरुद्ध है, तब हमारा यही कर्तव्य है कि हम कुछ न कुछ अच्छा व्यवसाय अपने लिए पसन्द करें। यह व्यवसाय हमारे मन, इच्छा, कार्यशक्ति और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए। स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल व्यवसाय करने में सफलता कभी हो नहीं सकती। मनुष्य-जीवन के असफल होने के दो मुख्य कारण हैं — पहला यह कि वह कभी-कभी अपनी स्वाभाविक कार्य-शक्ति के विरुद्ध व्यवसाय में लग जाता है। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य व्यवसाय-कुशल हुए बिना ही अपने कार्यों को शुरू कर देता है, परन्तु जब तक कार्यकुशलता और कामचलाऊ अनुभव न हो जाये तब तक सहसा कोई काम शुरू न करना चाहिए। यह सच है कि अनुभव और कुशलता जल्द नहीं आती, परन्तु इन्हें दृष्टि के बाहर जाने नहीं देना चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवन-संग्राम में मनुष्य अमुक दो कारणों से अकृतकार्य होता है, परन्तु हमारे भारतवर्ष में एक और तीसरा कारण देखा जाता है। इस देश के पढ़े-लिखे शिक्षित लोग मानसिक और मौखिक कार्य करना अधिक पसन्द करते हैं। लोगों में शारीरिक व्यवसायों से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गयी है। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक मनुष्य आठ रुपये माहवार पर म्युनिसिपल नाके का मुंशी बनकर कान में कलम दबा रखने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है, परन्तु अन्य शारीरिक कार्य करके अधिक द्रव्य पैदा करने में उसे लज्जा मालूम होती है। भारतवर्ष में बाबू साहिबी की बीमारी दिनों-दिन बढ़ रही है और शोक के साथ कहना पड़ता है कि यदि किसी ने इस मर्ज की दवा शीघ्र न निकाली तो यह बीमारी असाध्य हो जायेगी। स्मरण रहे कि शारीरिक श्रम करने से और अपनी कर्मेन्द्रियों को किसी उपयोगी कार्य में लगा देने से ही शिक्षित समाज अपने देश के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यार्थियों को उचित है कि वे इस बात पर ध्यान दें और शारीरिक श्रम से घृणा न करें।

जब हम अपनी रुचि और प्रवृत्ति के अनुसार कोई व्यवसाय चुन लें तब फिर हमें उसमें हजारों बाधाओं के होने पर भी लगे रहना चाहिए। बहुधा युवावस्था में कुछ कष्ट, उदासीनता अथवा अकृतकार्यता होने से युवक-गण हताश होकर अपने इच्छित व्यवसाय को यह समझकर छोड़ देते हैं कि कदाचित् वे किसी दूसरे व्यवसाय में लग जाने से अधिक सफलीभूत होंगे, परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। हमें सर्वदा यही उचित है कि हम जिस धन्धे को अपने लिए एक बार चुने लें, फिर उसे कभी न छोड़ें, उसी में दृढ़तापूर्वक लगे रहें। जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल व्यवसाय चुनने की जितनी जरूरत है उससे बढ़कर उसमें दृढ़तापूर्वक लगे रहने की भी है। कठिनाइयों के उपस्थित होने पर यह विचार करना मूर्खता है कि हम किसी दूसरे व्यवसाय में अधिक सफल हुए होते। जब अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे धन्धों में लगने के लिए जी ललचाता है तब उस दूसरे धन्धे के केवल गुण और लाभ ही दृष्टिगत हुआ करते हैं, और अपने धन्धे के केवल दोष और हानि, पर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हम जिस गुलाब को देखेंगे उसी में काँटे मिल सकते हैं। इसलिए अपने एक बार के दृढ़ निश्चित व्यवसाय को बिना समझे-बूझे कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

हमें किसी व्यवसाय के चुनने अथवा छोड़ने में चंचलता अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी-कभी जब मनुष्य अपने व्यवसाय में हजार प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तब उसे व्यवसाय बदलकर दूसरा चुनने की आवश्यकता अवश्य होती है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध होता है कि उसने व्यवसाय को चुनने में बड़ी गलती की। ऐसी गलतियाँ कई कारणों से बुरी संगति, अचानक घटना, माता-पिता की बुद्धिहीनता अथवा अधूरी शिक्षा के कारण बहुधा हुआ करती है। परन्तु युवावस्था में मन बहुत चंचल रहता है। किसी काम को खूब सोच-समझकर करना चाहिए। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि अनेक युवक उस कार्य को करते हैं जिसमें वे कभी सफल नहीं हो सकते, और कुछ युवक भ्रमवश उस व्यवसाय को छोड़ बैठते हैं जिसमें थोड़े ही अधिक परिश्रम से वे सफलीभूत हो गये होते। ध्यान रखने की बात है कि जो व्यवसाय किसी भी दृष्टि से जितना ही अधिक अच्छा होगा, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक समय और परिश्रम भी लगेगा। हाँ, जिस राह से हम जा रहे हैं उस राह में यदि सिंह मिल जाये तो हमारा यह सोचना बिल्कुल स्वाभाविक होगा कि उस रास्ते के सिवा संसार में अन्य किसी रास्ते में सिंह आ ही नहीं सकता, परन्तु बिना परिश्रम के कुछ भी नहीं मिल सकता। इसलिए बाधाओं का सामना करते हुए अपने एक बार के चुने हुए व्यवसाय में दृढ़तापूर्वक लगे रहना श्रेयस्कर है।

बहुत-से युवक अपने योग्यता की डींग हाँके बिना सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहा करते हैं कि यदि हम उस व्यवसाय में न होते तो बहुत ही यशस्वी होते। उनका ईश्वर के सामने यही रोना रहता है कि उसने हमें अपनी अपूर्व योग्यता को प्रकाशित करने का अवसर ही न दिया। अपने साथियों के समक्ष अपनी योग्यता के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता को बर्बाद करना पड़ रहा है, ग्रहदशा अच्छी नहीं है, साधन और संयोग प्रतिकूल हैं इत्यादि परन्तु यह युवकों की बड़ी भारी भूल है। इस तरह के प्रलापों के कारण दुनिया उन्हें आत्म-प्रशंसक समझकर उनका तिरस्कार करेगी, क्योंकि दुनिया की तो आज तक यही समझ है कि जिसमें थोड़ी-बहुत आश्चर्यजनक योग्यता विद्यमान है वह मनुष्य उसे किसी न किसी तरह से संसार को अवश्य ही दिखा देगा। इसलिए अपने व्यवसाय की तुच्छता की शिकायत करते रहने के बदले उसे उच्च और कुलीन बनाने के प्रयत्न में मनोयोगपूर्वक लगे रहने से अधिक लाभ और ख्याति की सम्भावना है। इस व्यवसाय को तुम अपने किसी पाप का प्रायश्चित्त मत समझो, केवल कर्तव्य समझकर उसके सम्पादन में दत्तचित्त हो जाओ और फिर सफलता दूर नहीं रहेगी।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

पिण्ड पीछा प्रश्न प्रश्न अकृतकार्य बिना सम्पन्न किया हुआ कार्य श्रेयस्कर हितकारी

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) प्रत्येक युवक को क्या निश्चय करना चाहिए ?
- (2) व्यवसाय की पसंदगी में क्या ध्यान रखना चाहिए ?
- (3) व्यवसाय चयन के बाद क्या करना चाहिए ?
- (4) व्यवसाय के चयन में असफल व्यक्ति को क्या करना चाहिए ?
- (5) व्यवसाय में कैसे लगे रहना श्रेयस्कर है ? क्यों ?
- (6) लोग अपनी योग्यता की डींगें कैसे हाँकते हैं ?
- (7) तुम व्यवसाय में सफलता के लिए क्या-क्या करोगे ?

2. उत्तर लिखिए :

- (1) मनुष्य-जीवन की असफलता के दो मुख्य कारण बताइए।
- (2) भारत में बाबूसाहिबी और बीमारी दिनों-दिन बढ़ रही है - समझाइए।
- (3) शारीरिक श्रम का जीवन में महत्त्व समझाइए।
- (4) व्यवसाय चुनने में क्या ध्यान रखना चाहिए ?

3. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) 'कार्यहीन मनुष्य का मन शैतान का निवासस्थान होता है।'
- (2) 'हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना मनुष्य के देह-धर्म के विरुद्ध है।'

योग्यता-विस्तार

- अपने भावी व्यवसाय - के बारे में पंद्रह पंक्तियाँ लिखिए।

●

प्रस्तुत गद्यांश कमलादेवी चट्टोपाध्याय की जीवनी से लिया गया है। इसमें भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पुजारिन के रूप में प्रसिद्ध कमलादेवी के जीवन, चरित्र और व्यक्तित्व के हर पहलू को बड़ी सहजता से अंकित किया गया है। बचपन से ही पढ़ने-लिखने की अभिरुचि के साथ जीवन-पथ पर अग्रसर होने वाली कमलादेवी ने हस्तशिल्प, नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य करते हुए उसे जन-जीवन से जोड़ा। देश-प्रेम, जन-सेवा, रोजगारी एवं नारी-सशक्तीकरण के लिए समर्पण भाव से अमूल्य कार्य किया। गाँधीजी की दांडी यात्रा में महिला-मोरचे की अगुआई करते हुए कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए उन्हें अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से नवाजा गया। हस्तशिल्प के व्यापक विकास के लिए संपूर्णतः समर्पित कमलादेवी का निधन भी हस्तशिल्प की अखिल भारतीय प्रदर्शन के आयोजन की व्यस्तता के बीच तबियत बिगड़ने से हुआ। जीवनी में कमलादेवी की जीवन-यात्रा का सुंदर आलेखन किया है।

आज सारा विश्व, भारतीय हस्तशिल्प के विषय में जानता है। उससे प्यार करता है और उसका उपयोग करता है।

इसका श्रेय किसे जाता है ?

इसका श्रेय जाता है कमलादेवी चट्टोपाध्याय को। उन्हें “भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पुजारिन” कहा गया है जो पूर्णतः उचित है, क्योंकि आधुनिक भारत में वे एक जनश्रुति बन चुकी हैं। कमलादेवी ने समाज से विद्रोह किया। वे एक संघर्षशील योद्धा थीं और जीवन के अंतिम क्षणों तक सक्रिय रहीं। उन्हें ललित कलाओं, रंगमंच तथा संस्कृति से बचपन से ही लगाव रहा। कमलादेवी बहुत ही संवेदनशील महिला थीं। शायद इसी कारण उनके लिए ऋतुओं का त्योहार के साथ और त्योहारों का भारतीय जीवन के साथ सहज संयोजन महत्वपूर्ण था।

3 अप्रैल, 1903 को मंगलोर के एक सारस्वत परिवार में जन्मी कमलादेवी चट्टोपाध्याय ही शायद वह विलक्षण व्यक्तित्व है ‘संजीवन व्यक्ति’ की संज्ञा से अभिहित किए जाने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। वे अपने पिता अनंतैया धारेश्वर तथा माता गिरजा बाई की चौथी संतान थीं। कमलादेवी के जन्म के समय उनकी बड़ी बहन ही जीवित थीं। दो भाइयों की उनके जन्म से पहले ही मृत्यु हो गई थी।

जिस परिवार में कमलादेवी पली-बढ़ी वह समृद्ध परिवार था। कमलादेवी के पिता अपने श्रम, शक्ति और प्रतिभा से जीवन में आगे बढ़े थे और कलेक्टर के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। जो उन दिनों बहुत महत्वपूर्ण पद था। उनकी माता भी कर्नाटक के सबसे धनी जमींदारों के एक परिवार से थीं।

कमला के पिता अनंतैया कमला के आमोद-प्रमोद और नटरखट-पन के प्रति सहिष्णु थे। बच्चों के साथ बरताव करने का उनका अपना अलग तरीका था और वे उनके साथ बच्चे बनकर बात कर लेते थे। वे कमलादेवी के विद्रोहात्मक कामों में आनंद लेते थे। अनंतैया ने कभी इस बात पर जोर नहीं दिया कि कमलादेवी प्रकृति का आनंद लेना छोड़कर किताबों से चिपकी रहें। कमला को अध्ययन करना अच्छा नहीं लगता था, लेकिन उसे पढ़ना पसंद था जो उसकी माँ ने उसे बहुत पहले सिखाया था।

कमलादेवी के जीवन पर जिस अन्य व्यक्ति का गहरा असर हुआ, वे थीं उनकी माँ गिरिजा बाई। उसी प्रभाव के कारण कमलादेवी अंधेरे से, भूतप्रेत से या लोगों की बातों से कभी नहीं डरती थीं। वे फालतू की गप्पबाजी से दूर रहते हुए अपना समय पढ़ने में बिताती थीं। रूढ़ियों की उपेक्षा करना उन्होंने अपनी माँ से सीखा। जो चीजें औरों के लिए बहुत महत्व रखती थीं, उनके लिए उन चीजों का कोई महत्व नहीं था।

7 वर्ष की उम्र में स्कूल जाना शुरू करने से पहले ही कमलादेवी संगीत की शिक्षा लेने लगी थीं। स्कूली पढ़ाई के दौरान भी उनकी तेजस्विता में कोई कमी नहीं आई। वहाँ रंगमंच की ओर उनका रुझान हुआ। रंगमंच के प्रति इस रुझान ने आगे

चलकर उनके जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारतीय रंगमंच के विकास व उत्थान पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

छोटी उम्र में ही पढ़ना सीख लेने के कारण कमलादेवी में पढ़ने के प्रति गहरा लगाव पैदा हो गया। यह जाने बिना कि वे क्या पढ़ने जा रही हैं, उन्हें जो कुछ भी मिलता वे उसे पढ़ डालतीं। बड़ी होने पर उन्होंने यशस्वी व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ीं। एनी बेसेंट की जीवनी 'एन ऑटोबायोग्राफी' की उनके मन पर गहरी छाप पड़ी। एनी बेसेंट के प्रति कमलादेवी के मन में बहुत श्रद्धा थी। उन्हें पौराणिक कथाएँ, राजस्थान की वीरता की गाथाएँ, ऐतिहासिक कहानियाँ तथा महिलाओं से संबंधित कहानियाँ बहुत अच्छी लगती थीं।

कमलादेवी का स्कूल नदी के किनारे वनस्थली में सुंदर प्राकृतिक वातावरण में स्थित था। एक दिन झाड़ी में छिपे एक चोर ने कमलादेवी के गले की माला छीनने की कोशिश की। कमलादेवी ने चोर से डटकर मुकाबला किया और उसे भगा दिया।

सन् 1920 में कमलादेवी अपनी माँ और बहन के साथ चेन्नई गईं। इस यात्रा से उनका पूरा जीवन बदल गया। उनकी मुलाकात उदीयमान कवि एवं लेखक हरिन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय से हुई। वे हैदराबाद में बसे एक प्रतिभाशाली बंगाली परिवार से थे। चट्टोपाध्याय ने कमलादेवी को एक विशाल जनसभा में देखा और उसी दिन शाम को जिस मित्र के पास वे ठहरे थे, उससे बोले कि वे इसी लड़की से शादी करेंगे। कमलादेवी को शादी के बारे में फैसला करने में काफी समय लगा। वे उनकी पुस्तकों की प्रशंसक थीं, परंतु उन्हें लगता था कि यह व्यक्ति अस्थिर प्रकृति का है। अंततः वे शादी के लिए राजी हो गईं। शादी हो गई, परंतु गिरिजाबाई ने जोर दिया कि शादी के बाद भी कमलादेवी पढ़ाई जारी रखेंगी। वे अपनी बेटी को ज्ञान के माध्यम से स्वतंत्र बनाने के लिए कृत संकल्प थीं। परंतु हालात बदल गए। शादी के तीन महीने बाद हरिन्द्रनाथ इंग्लैंड चले गए और कमलादेवी मंगलौर लौट आईं।

युवा कमलादेवी के जीवन का यह दौर अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया, क्योंकि उसी दौरान उनकी मुलाकात अंग्रेज महिला मारगरेट कजिन से हुई जो ग्रेटा के नाम से जानी जाती थीं। जिन्होंने भारतीय महिलाओं को उदार विचारों की शिक्षा देने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। कमलादेवी पर उनका बहुत गहरा असर पड़ा। उनके मन में समाज, विशेषकर महिलाओं की कुछ सेवा करने की लालसा अब साकार होने लगी थी। ग्रेटा ने उन्हें नारी मुक्ति और मानवता की सेवा का मार्ग दिखा दिया। कुछ समय बाद कमलादेवी ने हरिन्द्रनाथ के पास इंग्लैंड जाने का फैसला किया। हरिन्द्रनाथ और कमलादेवी दोनों को रंगमंच का शौक था। इंग्लैंड में रहते हुए उन्होंने तय कर लिया कि भारत लौटकर वे रंगमंच आंदोलन चलाएंगे। भारत लौटने पर 'रिटर्न्ड फ्रॉम एवराड' नामक हास्य नाटक में कमलादेवी ने नायिका की भूमिका निभाई।

धीरे-धीरे देशव्यापी रंगमंच आंदोलन खड़ा करने की उनकी योजना साकार होने लगी। हरिन्द्रनाथ नाटक लिखते तथा संगीत संयोजन करते और कमलादेवी दृश्य रचना तथा वेशभूषा आदि का काम संभालती। हरिन्द्रनाथ नायक की भूमिका निभाते तो कमलादेवी नायिका की। कमलादेवी ने कहा, "हमारा विचार है कि नाटक और रंगमंच जीवन के महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू हैं।" उनके नाटक जाति-प्रथा, अस्पृश्यता जैसी सामाजिक समस्याओं पर आधारित होते थे।

सन् 1928-29 में कमलादेवी ने 'वसंत सेना' नामक फिल्म में छोटी-सी भूमिका की। परंतु उन्हें अधिक लगाव रंगमंच से ही था। उन्होंने मुंबई में इंडियन नेशनल थियेटर की स्थापना की। इसके बाद पेरिस में मुख्यालय बनाकर यूनेस्को द्वारा 'इंटर थिएटर इंस्टिट्यूट' स्थापित होने के बाद कमलादेवी ने भारतीय इकाई के रूप में भारतीय नाट्य संघ की स्थापना की।

भारतीयों को अपनी धरोहर की शिक्षा देने के लिए उन्होंने नाट्य शिल्प संग्रहालय की स्थापना की और सन् 1946 में दिल्ली में पहले लोक नाट्य महोत्सव का आयोजन किया।

कुछ महीने बाद टाइफाइड हो जाने पर जब उन्हें आराम करना पड़ा तो उन्होंने स्वयंसेवक के रूप में अपने अनुभव लिखे। गंभीर लेखन का यह उनका पहला प्रयास था जिसमें उन्हें काफी सुख मिला।

कमलादेवी सेवादल के कार्यों में काफी समय लगाने लगीं। वे केन्द्रीय प्रशिक्षण अकादमी में भरती हो गईं, जहाँ शारीरिक

अभ्यास कराया जाता था। वहाँ डंडा, भाला, लाठी, तलवार, छुरी आदि चलाने तथा सूर्यनमस्कार और अन्य योगासनों का अभ्यास कराया जाता था। किसी भी स्वयंसेवक को कोई वेतन आदि नहीं मिलता था। उन्हें केवल भोजन और वस्त्र दिए जाते थे।

सेवादल से कांग्रेस के झंडे को राष्ट्रीय प्रतिष्ठा मिली और ध्वजारोहण तथा ध्वजावतरण नियमित रूप से समारोहपूर्वक किया जाता था। इस मौके पर झंडावंदन के गीत भी इस समारोह का अभिन्न अंग बन गए।

सन् 1927 में नई शिक्षा नीतियों के बारे में सम्मेलन पुणे में करने का फैसला किया गया, क्योंकि उन दिनों वह महिला-शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। अधिकतर गतिविधियों का केन्द्र सेवा सदर था, जिसके नेताओं ने रोजमर्रा कामकाज संभाला हुआ था। कमलादेवी ने स्वयंसेवक के रूप में छोटे-मोटे काम संभालने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने रेलवे स्टेशन पर रात को पहुँचने वाले प्रतिनिधियों की अगवानी की जिम्मेदारी संभाली। उन्होंने इस मौके के महत्व को समझा, क्योंकि इसी सम्मेलन में 'ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस' का जन्म हुआ। जिसने आगे चलकर करीब 30 वर्ष तक देश के राष्ट्रीय मामलों में, विशेषकर भारतीय महिलाओं की स्थिति बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कमलादेवी ने सचिव पद का काम बड़ी गंभीरता से संभाला। वे अपने कार्यालय का प्रबंध स्वयं संभालती थीं। असल में एक तरह से वे खुद ही कार्यालय थीं। उन्होंने शार्ट-हैंड और टाइपिंग सीख ली। वे डाकघर में पत्र डालने से लेकर दफ्तरी तक के सारे काम खुद किया करती थीं। उन्होंने कहा, "मुझे खुशी है कि मैंने सभी काम स्वयं किए, क्योंकि इससे मैं आत्मनिर्भर बन सकी।"

विभिन्न सम्मेलनों में जाने के लिए उन्होंने रेलवे को मासिक आधार पर रियायती टिकट देने को राजी किया, जिससे एक यात्रा के टिकट पर दो यात्राओं की सुविधा मिल सके। इससे बच्चों और घर के बोझ से मुक्त होकर महिलाएँ अकेली ही लंबी यात्राएँ कर सकती थीं। निम्न आय वर्ग की महिलाओं के साथ सतत संपर्क रहने से ही कमलादेवी को ज्ञात हुआ कि वे किन हालात में रहती हैं। उन्होंने महिला श्रमिकों की समस्याओं में गहरी दिलचस्पी ली।

मदुरै में बड़ी कपड़ा मिलों के मालिकों ने नोटिस लगाकर मजदूरों से अपनी यूनियन भंग करने को कहा। कमलादेवी के भाषणों से सविनय अवज्ञा आंदोलन ज्यों-ज्यों जोर पकड़ता गया नमक शब्द बहुत महत्वपूर्ण होता गया। महात्मा गांधी ने नमक कानून तोड़ने के लिए 12 मार्च, 1930 को साबरमती आश्रम से गुजरात के समुद्र तट पर दांडी तक की करीब दो सौ मील की ऐतिहासिक यात्रा प्रारंभ की।

जब इस यात्रा की तैयारियाँ की जा रही थीं तो स्वयंसेवकों में महिलाओं को भी शामिल करने का निश्चय किया गया। कमलादेवी ने महात्मा गांधी से मिलकर कुछ स्त्रियों को यात्रा में शामिल होने की अनुमति देने का अनुरोध किया। कमलादेवी ने कहा, "यदि स्त्रियों को यात्रा में शामिल होने का मौका दिया गया तो उनमें जिम्मेदारी और समर्पण की भावना आएगी।" इसके फलस्वरूप कमलादेवी तथा अनर्तिकाबाई गोखले को कानून तोड़ने वालों के पहले जत्थे में सम्मिलित किया गया। जिसमें उन्होंने गर्वपूर्वक बैनर उठाया। मजिस्ट्रेट ने उन्हें छह महीने की साधारण कैद की सजा सुनाते हुए कहा कि कमलादेवी ने अन्य लोगों की अपेक्षा ज्यादा व्यक्तियों को कानून तोड़ने के लिए उकसाया है।

सन् 1930 में पूरे देश में असंतोष व्याप्त था। सत्याग्रह आंदोलन के साथ-साथ हिंसक घटनाएँ भी हो रही थीं। सन् 1931 में जेल से रिहा होने के बाद कमलादेवी को सेवकदल के स्वयंसेवकों का प्रभारी बना दिया गया। उन्हें महिलाओं को प्राथमिक चिकित्सा से अग्निशामक कार्य तथा लाठी, गोली झेलने आदि का प्रशिक्षण देना था।

अन्य कई पुस्तकें लिखने के साथ-साथ कमलादेवी ने अपने अनुभवों पर पुस्तक लिखी। इनमें 'अमेरिका दि लैंड ऑफ सुपरलेटिब्ज, अंकल सैम्स एम्पायर और टुवर्डस ए नेशनल थियेटर' शामिल हैं। इसके अलावा उन्होंने सूरत में अब्रम में ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस (अखिल भारतीय महिला सम्मेलन) के लिए शिविर का आयोजन किया। कमलादेवी सम्मेलन की अध्यक्ष चुनी गईं। यह सन् 1942 का वर्ष था जब देश में महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ घटित हो रही थीं। कमलादेवी को दो

वर्ष की कैद हो गई। यह समय उन्होंने पढ़ने-लिखने में बिताया। सन् 1944 में जेल से बाहर आने पर उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया। बंगाल के अकाल के दौरान खोले गए बहुत से अनाथालय तथा आश्रमगृह उपेक्षित पड़े थे। अब कमलादेवी ने “बच्चों को बचाओ,” नारे के साथ उनकी भलाई को अपना विशेष कार्य मानकर इन संस्थाओं की ओर ध्यान देना शुरू किया। बच्चों की देखभाल एवं शिक्षा के लिए कई नए संस्थान खोले। उन्होंने बच्चों की देखरेख तथा शिक्षा के कार्य में लगे युवाओं के प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्ति दिलाने की भी व्यवस्था की।

जब उन्होंने देखा कि मुंबई शहर से बाहर चिकित्सा का कोई अच्छा इंतजाम नहीं है तो उन्होंने चलते-फिरते चिकित्सालय शुरू करने का सुझाव दिया। उन्होंने कामकाजी लड़कियों के लिए हॉस्टल खोलने की दिशा में भी शुरुआत की। उन्होंने इस काम पर पूरा ध्यान दिया। न केवल बड़े शहरों में बल्कि जिले के कस्बों में भी लड़कियों के लिए हॉस्टल खोले गए। इस क्षेत्र में उनके योगदान को देखते हुए नई दिल्ली में ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस के हॉस्टल का नाम उनके नाम पर रखा गया।

सन् 1946 में कमलादेवी को कांग्रेस कार्यकारिणी की सदस्य चुने जाने का गौरव प्राप्त हुआ। परंतु उन्होंने असंबली की सदस्य बनने से मना कर दिया। उनकी राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे राजनीति में स्वतंत्रता प्राप्त के खास उद्देश्य से आई थीं और आजादी मिल जाने के बाद कोई भी उन्हें राजनीति में बने रहने के लिए राजी नहीं कर सका।

कमलादेवी को कई महत्वपूर्ण पदों की पेशकश की गई। उन्होंने पहले कैबिनेट मंत्री और बाद में मास्को व काहिरा में राजदूत पद के प्रस्ताव ठुकरा दिए।

कमलादेवी ने जिस एक और नई प्रणाली का शुभारंभ किया, वह थी संघटित ऋण प्रणाली, जिसकी अक्सर नकल की जाती रही है। किसानों को ऋण तथा विशेषज्ञों की सलाह उपलब्ध कराई गई। कमलादेवी ने जोर दिया कि कृषि उपज, दुग्ध उद्योग और मुर्गी-पालन के साथ-साथ फल, सब्जियाँ और फूल उत्पादन को बढ़ावा दिया जाए।

महिलाओं की ओर कमलादेवी विशेष ध्यान देती थीं। उन्होंने वस्त्र बनाने, खाद्य पदार्थ बनाने तथा मसाले तैयार करने, अचार, चटनी और कागज बनाने, कशीदाकारी करने तथा खिलौने बनाने जैसे विविध प्रकार के कार्यों के लिए महिलाओं की अनेक सहकारी समितियाँ गठित कीं। उन्होंने बुनकरों को संगठित किया, उन्हें ऋण तथा अन्य सुविधाएँ दिलवाई और हथकरघा सहकारी समितियाँ बनाईं।

सन् 1966 में उन्हें सामुदायिक नेतृत्व के लिए ‘मेगसेसे’ पुरस्कार प्रदान किया गया।

उन्होंने कॉटेज एंपोरियम का काम संभाला और यह दिल्ली की एक प्रतिष्ठित दुकान के रूप में प्रसिद्ध हो गया। कमलादेवी का मानना था कि हस्तशिल्प से देश की प्रगति में मदद मिलती है। उन्होंने बालूचर व तंचोई की सुंदर बुनाई और कश्मीर के कीमती और भारी जामादार शालों की कला पुनःजीवित करने के भी प्रयास किए।

कठपुतली तथा कलमकारी चित्रकला के केन्द्र भी खोले गए। सन् 1962 में हस्तशिल्प बोर्ड की अध्यक्ष की हैसियत से कमलादेवी ने उत्तर-पूर्व सीमांत एजेंसी (अरुणाचल प्रदेश) और नागालैंड का दौरा किया। इन क्षेत्रों में जाने वाली वे पहली भारतीय महिला थीं। वे जनजातीय लोगों के लिए कुछ करना चाहती थीं।

इन सब प्रयासों से देश में शिल्प की अपार संपदा लोगों के सामने आई और हस्तशिल्प उद्योग देश में सबसे अधिक रोजगार देने वाला उद्योग बन गया, जिसमें 10 लाख से अधिक व्यक्तियों को काम मिला।

कमलादेवी का सबसे बड़ा योगदान था शिल्पकारों की प्रतिष्ठा बढ़ाना। उन्होंने महसूस किया कि वे कलाकार हैं। जब उन्हें संगीत-नाटक अकादमी की फेलोशिप मिली तो उन्होंने महसूस किया कि इसके लिए तो शिल्पकारों का शुक्रिया अदा किया जाना चाहिए।

इसके बाद कमलादेवी को लगातार पुरस्कार मिलने लगे। सन् 1962 में उन्हें सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में सेवाओं के लिए होनोलूलू, हवाई में शुरू किया गया वाटुमल फाउंडेशन पुरस्कार प्रदान किया गया। तत्कालीन चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति ने उन्हें अंतरराष्ट्रीय सद्भाव बढ़ाने के लिए अपने देश का स्वर्ण पदक दिया। विश्वभारती विश्वविद्यालय ने उन्हें



देशकोत्तम उपाधि से सम्मानित किया। वे इतनी विनम्र थीं कि सन् 1966 में मेगसेसे पुरस्कार मिलने की खबर पाकर बोलीं, “जरूर कहीं कोई गलती हुई है। यह पुरस्कार तो महान विभूतियों को दिया जाता है।”

उन्होंने शिल्पकारों तथा उनके शिल्प के प्रति सेवा का अपना आदर्श इस कदर निभाया कि अपनी सारी अचल संपत्ति और मेगसेसे पुरस्कार से मिली राशि का बड़ा हिस्सा उन्होंने मंच शिल्प के लिए श्रीनिवास मल्लैया ट्रस्ट को दान कर दिया।

कमलादेवी ने भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण लाने में अग्रणी भूमिका निभाई। वे भारतीय शिल्प को ख्याति दिलाने की दिशा में जीवन भर अथक प्रयास करती रहीं। देश के कोने-कोने में गाँव-गाँव घूमकर उन्होंने शिल्पकारों से मुलाकात की, नए डिजाइन तथा नए विचार दिए और परंपरागत और आधुनिक प्रवृत्तियों में समन्वय करना सिखाया।

कमलादेवी का निधन 29 अक्टूबर, 1988 को ब्रीच कैन्डी अस्पताल में हुआ, जहाँ उन्हें हस्तशिल्पों की अखिल भारतीय प्रदर्शनी, शिल्पी उत्सव में अचानक तबीयत बिगड़ जाने पर दाखिल कराया गया था। उस समय वे 85 वर्ष की थीं।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

लालसा लालच, लोभ रियायती किफायती

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) कमलादेवी का जन्म कहाँ हुआ था ?
- (2) अनंतैया का व्यवहार बच्चों के प्रति कैसा था ?
- (3) कमलादेवी की मुलाकात किस अंग्रेज महिला से हुई ?
- (4) कमलादेवी के नाटक किन समस्याओं पर आधारित थे ?
- (5) कमलादेवी ने सेवादल में स्वयं सेवक के रूप में क्या जिम्मेदारी संभाली ?
- (6) कमलादेवी को कौन से पुरस्कार मिले ?

#### 2. उत्तर लिखिए :

- (1) कमलादेवी को भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ पुजारिन क्यों कहा गया ?
- (2) कमलादेवी पर किसका प्रभाव था ? कैसे ?
- (3) कमलादेवी का जीवन कैसे बदल गया ?
- (4) नमक कानून तोड़ने के लिए कमलादेवी ने क्या किया ?
- (5) कमलादेवी ने लड़कियों के लिए क्या किया ?
- (6) कमलादेवी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

### योग्यता-विस्तार

- महान स्वतंत्रता सेनानी लक्ष्मी सहगल की जीवनी इंटरनेट के माध्यम से खोजकर पढ़िए और कक्षा में सुनाइए।



भगवानदास मोरवाल

( जन्म : सन् 1960 ई. )

भगवानदास मोरवाल का जन्म हरियाणा के एक पिछड़े एवं उपेक्षित क्षेत्र मेवात के एक छोटे-से कस्बे नगीना में एक श्रमिक परिवार में हुआ था। उन्होंने राजस्थान विश्व विद्यालय से एम. ए. तथा पत्रकारिता में डिप्लोमा किया था।

मोरवालजी ने उपन्यास और कहानियों के अलावा कविताएँ भी लिखीं। उनके उपन्यासों में 'बाबल तेरा देश में', 'रेत' तथा 'काला पहाड़' मुख्य हैं। अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार, सूर्यास्त से पहले, सिला हुआ आदमी-उनके कहानी संग्रह हैं। 'दोपहरी चुप है' कविता संग्रह है। उनकी रचनाओं में लोक जीवन का चित्रण हुआ है। उन्हें हिन्दी अकादमी, दिल्ली का 'साहित्यिक कृति पुरस्कार', डॉ. अंबेडकर फेलोशिप पुरस्कार, भारतीय दलित साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उन्हें अंतर्राष्ट्रीय इन्दुशर्मा कथा सम्मान लंदन में प्रदान किया गया। 'रंग अबीर' कहानी के लिए चेन्नई से राजाजी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत उपन्यास-अंश 'काला पहाड़' से लिया गया है। 'काला पहाड़' मेवात के धार्मिक-सांप्रदायिक सौहार्य की पृष्ठभूमि में लिखा गया उपन्यास है। यहाँ वर्षों से सभी जाति एवं संप्रदाय के लोग परस्पर मेल-जोल से रहते आए हैं। प्रस्तुत कथांश में काला पहाड़ की तलहाटी में बसे नगीना गाँव के लोगों के बीच होने वाली पतंगबाजी का रोमांचक वर्णन है। इस विशेष आयोजन में सारा गाँव पूरे तालमेल के साथ गर्मजोशी से शरीक होता है। सलेमी मुसलमान है लेकिन मँगतू के परिवार से उसका पुश्तैनी रिश्ता है। मँगतू को पतंग-स्पर्धा में जिताने के लिए वह जी-जान से सहायता करता है। लाला नौबतराय की हवेली और चंदू परधान की हवेली से दो समूहों के बीच रोमांचक पतंगबाजी होती है। अंततः जीत मँगतू के दल की होती है। पतंग लड़ने में मँगतू की बराबर का कोई नहीं है। हार-जीत को सभी खेलदिली से लेते हैं। जीत की खुशी में सलेमी मँगतू को कंधे पर उठाकर सारे गाँव का चक्कर लगाता है, यह घटना गाँव के इतिहास में अविस्मरणीय बन जाती है।

एक-एक दृश्य सलेमी की स्मृति में ऐसे लिपटा हुआ है जैसे हुचके से पतंग की रील कि एक बार वह खुल जाए तो फिर देखो कैसे एक के बाद एक दृश्यों के पेच लड़ते चले जाते हैं, यानी आज भी सलेमी को एक-एक बात और दृश्य हू-ब-हू याद है।

वह कैसे भूल सकता है तीज पर कूड़ ऊपर जमा उस भीड़ को जिसकी आँखें पच्छिम की ओर दूर आकाश में गोता लगाती उस पतंग पर टिकी होती हैं, जिसकी डोर मँगतू की खून से सनी अँगुलियों के पोरों को ज़िबह करती हुई, पूरी गति के साथ दूसरी पतंग की डोर को रेत रही होती।

उस सिलौने को तो सलेमी मरते दम तक नहीं भूल सकता है जिस दिन मँगतू को अपने कंधों पर एक नायक की तरह उचककर छोरे-छापों की भीड़ ने पूरे नगीना का चक्कर लगा दिया था, और जैसे ही भीड़ मँगतू के घर पहुँची कि दादा सुगन देखते ही मँगतू पर टूट पड़ा था। मँगतू की यह हालत देखकर भीड़ तो नौ दो ग्यारह हो गई और फँस गया बेचारा मँगतू।

मँगतू को फँसा देख सलेमी हिम्मत कर धीरे से दादा सुगन के पास आया। उसी दादा सुगन के पास जिसकी उम्र तो सलेमी के अपने बाप जितनी है लेकिन पता नहीं गाँव के किस नाते से और कब से, सुगन दादा सुगन और मँगतू उसके लिए काका मँगतू बना हुआ है। सलेमी ने समझाने के अंदाज़ में जैसे ही दादा सुगन से कुछ कहना चाहा कि तड़ातड़ उस पर पणहा पड़ने लगी। मँगतू तो मौक़ा देख कर बच निकला और मरम्मत हुई सलेमी की। लेकिन वाह रे सलेमी, चुपचाप हाथ बाँध कर वह दादा सुगन के आगे सिर झुका कर खड़ा हो गया, "ले दादा, खूब मार ले... जब तेरो जी भर जाए, बता दीजो !"

सलेमी के इस वाक्य के बाद दादा सुगन का पणहा वाला हाथ हवा में जहाँ था वहीं रह गया और मँगतू को गरियाते हुए बोला, "या सुसरा ने घर बरबाद कर राखो है... जब देखो बस रील-हुचकान में मँढो रहवे है... न घर की चिंता, न गिरस्ती की।" कहते-कहते दादा सुगन पुरानी भीत की मानिंद भरभरा कर ढह गया।

सलेमी को दादा सुग्गन का गुस्सा वाजिब लगा, “सई बात है घर-गिरस्ती भी जरूरी है... दादा, मैं समझा दूँगा काका मँगतू ए।”

दादा सुग्गन के पास से सलेमी जब वापस बाज़ार की छतों पर आया, तो देखा मँगतू फिर वहीं है जहाँ से उसे छोरे-छापरे कंधों पर उचककर ले गए थे।

और उस तीज का वर्णन करते वक्त तो सलेमी रोमांचित हो उठता है, जिस तीज की अब सिर्फ़ या तो पन्नियाँ बची हैं या फिर छोटी-छोटी खपच्चियाँ। उसी के बाद से तो सलेमी अपने उस्ताद यानी मँगतू की अँगुलियों की जादू और उसकी दरियादिली का कायल है।

हुआ दर असल यह था कि उस तीज को नगीना के पेच साकरस गाँव के साथ बँध गए थे। पेच बँधते समय यह शर्त भी लगा दी गई कि जिसकी भी पतंग कटेगी उसे फ़ी पतंग एक सौ एक रुपए काटने वाले को शर्त के रूप में देने होंगे।

बस, फिर क्या था पूरा नगीना युद्ध स्तर पर पन्नियों और खपच्चियों में जुट गया। पाटोड़ में दखनी कीकरों से घिरे पत्थरों पर माँजे के लिए शीशा पिसना शुरू हो गया। जितनी भी लालटेन की चटखी हुई चिमनियाँ और पतले शीशों से बनी बोटलें जिसके पास थीं, पूरी उदारता के साथ मँगतू के पास आनी शुरू हो गई। बड़ी-बड़ी पतंगों के लिए मुलायम बाँसों को खोज-खोज कर लाया जाने लगा। मँगतू की दिन-रात सेवा की जाने लगी। उसकी सेवा के लिए विशेष रूप से सलेमी को नियुक्त किया गया क्योंकि सबको पता है कि सलेमी से बेहतर मँगतू का कोई सहयोगी हो ही नहीं सकता।

पूरे नगीना की निगाहें एक बार फिर मँगतू पर आ टिकीं।

पूरे नगीना को अगर उम्मीद थी तो केवल मँगतू से क्योंकि एक सौ एक रुपए की शर्त से बड़ी है गाँव की नाक।

पूरन मास्टर को विशेष रूप से दिल्ली भेजा गया कि वह सदर बाज़ार से जंजीर छाप रील और बढ़िया पतंगी कागज़ लेकर आए। जुम्मा मनिहार ने अपना ताँगा मुफ्त में बड़कली से नगीना के लिए लगा दिया ताकि तीज के दिन लड़ने वाले पेचों के लिए किसी जरूरी काम से जिसे भी आना-जाना हो, वह मजे से आए-जाए।

सारे नगीना के लिए एक चुनौती सामने थी जो तीज के निकट आते-आते और बड़ी होती जा रही थी। इस तरह जैसे-जैसे तीज नज़दीक आने लगी वैसे-वैसे नगीना में गहमागहमी और व्यस्तताएँ बढ़ने लगीं। बुग्गल चक्कीवाला, अतर खाँ और लल्लू चमार को यह काम सौंपा गया कि वे समय-समय पर गुप्त रूप से साकरस जाकर पता लगाएँ कि नगीना की अपेक्षा साकरस की कैसी तैयारी चल रही है, और किस तरह की रणनीति वे अपनाने जा रहे हैं?

पतंग लूटने वालों ने अपने-अपने हिसाब से पतंग लूटने के लिए देसी, दखनी कीकर और बेर की झाड़ियों को लंबे से लंबे बाँस में बाँधकर डंगे तैयार कर लिए। कुछेक ने धोबीघट्ट पर मोर्चा सँभाल लिया, तो कुछेक ने उससे भी आगे बोहराकी के कुएँ पर।

अलग-अलग हिस्सों के डंगेधारियों ने मन ही मन दुआएँ और प्रार्थनाएँ करनी शुरू कर दीं। उपरलीघाँ वाले यह चाह रहे थे कि तीज वाले दिन हवा पुरवा चले और निचल्लीघाँ वाले डंगेधारी मनौती माँग रहे थे कि हवा पछुआ चले लेकिन जैसा कि सावन-भादो में प्रायः होता है, इस बार भी वैसा ही हुआ यानी हवा पुरवा ही थी। परंतु एकाएक तीज से ठीक दो दिन पहले मेह की ऐसी झड़ी लगी कि जब वह रुकी तो दूर-दूर तक जहाँ भी नज़र जाती, बस पानी ही पानी दिखाई देता। सारे जोहड़-पोखर एक हो गए। काले पहाड़ और साँठावाड़ी की पहाड़ी से उतरा पानी रात भर में पूरे इलाके में फैल गया। खेतों में कचरे-ककड़ी की बेलें जगह-जगह पानी में तैरती हुई दिखाई देने लगीं।

अचानक रात में बाढ़ के रूप में आए इस पानी ने तीज का सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। मेह रुकने के अगले दिन तक आसमान में जब कपासी बादल काले पहाड़ को छूते हुए आगे बढ़ते, तो लगता जैसे अभी ऊपर वाले का जी भरा नहीं है।

जुम्मा के बँगले में बैठे मँगतू, सलेमी, बुग्गल, पूरन मास्टर तथा अतर खाँ समेत डेढ़ दर्जन लोग मौसम के इस मस्तमौलेपन

से चिंतित हो उठे कि अगर कल तीज वाले दिन बादल नहीं खुले तो सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा।

“अगर भई, उस दिन बदली नई छटी तो साड्डी मेनत बेकार चली जाएगी।”

पूरन मास्टर ने अपने पंजाबीपने में बात शुरू की।

“मास्टरजी, ऐसो मत सोच... यार, मैंने तो इन पतंगन् के चक्कर में अपनी दिहाड़ी की भी ऐसी की तैसी कर दी।” जुम्मा ने पूरन मास्टर को उसके कुबोल पर टोका।

“यार, बादल खुलने की उम्मेद वैसे कम ही दीख री है... और अगर मौसम ऐसोई रहो तो सारे हुचकान् की रील पसीज जाएगी... पतंगन् की लेही भी अभी गीली है...।” मँगतू ने मौसम के रूठने और उसके बाद होने वाले नुकसान पर चिंता प्रकट करते हुए कहा।

“अरे, अभी तो पूरो दिन पड़ो है... हो सके दुपहर पूछे बादल खुल ही जाएँ...।” बुग्गल ने आशा जताई।

इस तरह आधा दिन आगे की रणनीति और मौसम के साफ़ होने की उम्मीद में बीत गया।

दोपहर बाद जुहू की अज्ञान के आसपास इतनी तेज़ हवाएँ चलने लगीं कि आसमान में छाए बादल तेज़ी से छँटने लगे, बिलकुल ऐसे जैसे बादल भी कल होने वाले इस आकाशीय युद्ध को देखना चाहते हैं। बादलों के छँटते ही धूप निकल आई। देखते ही देखते सभी हरकत में आ गए। सारी पतंगों और रील के हुचकों को धूप में लाकर रख दिया गया। मौसम के बदले हुए इस रूप को देखकर डंगेधारियों के चेहरे मारे खुशी के खिल उठे।

ठीक तीज वाले दिन पूरे नगीना में मेला-सा लग गया। रहड़ीवालों ने बीच गोहरवाली में खाने-पीने की दुकानें सजा लीं। इन रहड़ीवालों की याद ताज़ा होते ही सलेमी का यह भी कहना है कि उस दिन रहड़ीवालों के पास जितना सामान था देखते ही देखते सब ख़त्म हो गया। बहरहाल...

जुम्मा मनहार के बँगले से सारे हुचकों और पतंगों को लाला नौबत राय की हवेली की सबसे ऊपरवाली छत पर लाकर रख दिया गया। मँगतू के हिसाब से लाला नौबत राय की छत ही इस मौक़े के लिए सबसे उपयुक्त थी। पेच शुरू होने से पहले रील के रास्ते में पड़ने वाली ऊँची-ऊँची नीम, पीपल और कीकर की टहनियों को छाँग दिया गया ताकि पेच लड़ते समय रोल इन टहनियों में उलझ न जाए।

सारा नगीना घरों से निकलकर अपनी-अपनी छतों पर आ गया और इंतज़ार करने लगा मँगतू की अँगुलियों की जादू का।

लगभग ग्यारह बजे पूरे नगीना में आग की तरह खबर फैल गई कि साकरसवाले भी पूरी तैयारी के साथ आ पहुँचे हैं। लाला नौबत राय की हवेली से लगभग पचास कदम दूर चंदू परधान की हवेली की छत उन्हें दे दी गई। पेच शुरू होने से पहले ही डंगेधारियों ने दूर-दूर तक फैले पानी में ही पोज़िशन ले ली। आसपास की छतों पर कुछ लोगों को यह देखने के लिए तैनात कर दिया कि कोई पेच लड़ती पतंगों के माँजों में लंगर न डाल जाए।

इस तरह सारी तैयारियों के बाद दोपहर को करीब बारह बजे दोनों ओर के उस्तादों ने अपनी-अपनी पहली पतंग में कन्ना डाला और उनको उड़ाकर हवा का जायजा लिया। हवा का मिज़ाज भाँपने के बाद जैसे ही एक-दूसरे को पतंग लड़ाने का संकेत मिला कि एक रोमांचकारी दृश्य शुरू हो गया।

मँगतू की अँगुलियों पर न केवल नगीनावसियों को पूरा यक़ीन था बल्कि उसकी अँगुलियों के जादू से स्वयं साकरसवाले भी भली-भाँति परिचित थे — किसी हद तक भीतर ही भीतर सहमे हुए भी।

इसके बाद वही हुआ जिसकी उम्मीद थी। अकेली पहली पतंग से मँगतू ने बड़ी चतुराई और अपने कौशल से लगातार चार पतंगों को धराशायी कर दिया। हर पतंग के कटने के बाद आसपास की छतों से ‘बम्बारा’ के तेज़ स्वर गूँजने लगे। हर बम्बारा के समवेत स्वर के साथ ही मारे खुशी के लाला नौबत राय की छत के साथ-साथ आसपास की छतें भी थरथराने लगीं।

जब-जब बम्मारा का स्वर हवा में गूँजता हुआ शून्य में तैरता, तब-तब हवेली के चौक में बैठी लाला नौबत राय की घरवाली, जिसे सब आदर से चाची पुकारते हैं, इस नासपीटी तीज को कोसना शुरू कर देती कि जिसे देखो वही मुँह उठाए चौक को खूँदता हुआ सीधा छत पर ही जाकर दम ले रहा है। किसी का पता ही नहीं चल रहा है कि ऊपर जाने वाला चमार है या चूहड़ा, खटीक है या कुम्हार, मेव है या माली—बस, अपने बाप की छत समझ कर दनदनाते हुए चले आ रहे हैं।

लाला नौबत राय की घरवाली यानी चाची को तो वैसे भी इन चमार, चूहड़ों, कुम्हार, खटीकों, और माली-मेवों से हमेशा नफरत-सी रही है, बावजूद इसके कि टुरमल्ली कुम्हार का इकलौता छोरा घंटोली उसका चौका-बरतन करता हुआ, भाँडे-बरतनों में हाथ घघोलता हुआ और पूरे चौक में निर्बाध रूप से इधर से उधर चप्पलें चटकाता हुआ घूमता है। दौलत माली का सबसे छोटा छोरा खाना बनाने से लेकर बोहराकी के कुएँ से पीने का पानी भरता है, और वही दीन मोहम्मद उर्फ दीना पल्लेदार जिसके बदन से उसे हमेशा गाय के गोशत की बदबू आती है, बे-रोकटोक इसी चाची के पीछे-पीछे पूरे चौक को लाँघकर रसोई के सामने से सबसे आखिरी वाले कमरे में जाता है, जिसे लाल जी ने गोदाम बनाया हुआ है, तथा अनाज की बोरियों को पीठ पर लादे दिन में कोई दर्जन भर चक्कर लगाता है। बस, दीना इतनी भलमनसाहत ज़रूर बरतता है कि वह पैरों से पणहा बायने के बाहर काढ़कर आता है।

लेकिन साकरस की पाँचवीं पतंग ने सारा माहौल गरमा दिया यानी इस पतंग ने नगीना की जैसे ही पहली पतंग काटी कि चंदू परधान की हवेली की छत से एक के बाद एक समवेत स्वर गूँजने लगे।

“बोलो-बोलो नघीणा की फाऽऽट्टी है...”

चंदू परधान की छत खुद शर्मसार हो उठी कि उसी की टाँट पर बैठ कर, उसी के गाँव को कैसे-कैसे विशुद्ध भारतीय बम्मारा सुनने को मिल रहे हैं।

बस, फिर क्या था मँगतू पर एक के बाद एक फ़ब्तियाँ कसी जाने लगीं।

“अरे मँगतू, वाड़ी नघीणा की नाक कटवाई देणगो कहा?” जुम्मा ने दाँत पीसते हुए कहा।

“यार, हमारी तो एक ही पतंग कटी है तिहारी वाई पे फटी जा री है... अब देखियो मँगतू को कमाल...।” बुग्गल ने हिम्मत बँधाते हुए कहा।

बिना विचलित हुए मँगतू ने पतंगों के ढेर के ऊपर से चद्दर को हटाया और कई पतंगों को जाँचने के बाद उसने उनमें से एक तिरंगा झप्पू निकाल लिया। तिरंगा मे कन्ना डालने के बाद उसे हवा में छोड़ा तो पाया तिरंगा मँगतू की इच्छानुसार ही निकला।

आकाश में जाते ही तिरंगा विपक्षी पतंग को देखकर मचल उठा। किसी लड़कू हवाई जहाज के पायलट की मानिंद मँगतू तिरंगा झप्पू को कभी दाईं ओर गोता खिलाने लगा, तो कभी बाईं ओर। कभी वह एकदम आकाश को चीरता हुआ सिर के ऊपर आकर ठहर जाता, तो कभी एक ही गोते में लगभग ज़मीन को छूते हुए पलट कर फिर वापस हो लेता। पूरी लय और गति के साथ जब तिरंगा दाएँ-बाएँ, ऊपर-नीचे फड़फड़ करता हुआ मँगतू की अँगुलियों के इशारे पर आकाश में हरहरा कर मचलता तब लगता मानो किसी जाँबाज़ की बाजूओं की मछलियाँ मचल रही हैं। और अगले पल जैसे ही तिरंगा विपक्षी पतंग के नीचे आया कि पूरन मास्टर चीखा, “मँगतू, शह दे के !”

और इससे पहले कि पूरन मास्टर गले में फँस गए शब्दों को बाहर खींचता, पलक झपकते ही मँगतू ने अपने तिरंगे को गोता खिलाने हुए लगभग ज़मीन से छुआ कर इस सफ़ाई से विपक्षी पतंग के ऊपर डाल दिया कि साकरस के उस्ताद की समझ में ही नहीं आया कि एकाएक यह हुआ क्या ? मँगतू की अँगुलियों का जादू देखकर लाला नौबत राय की छत पर जमा ठट्टा मारे खुशी के झूम उठा। जिन गलों में साँसें लगभग अटक गई थीं और दिल रह-रह कर बाहर आने को हो रहा था, मँगतू की अँगुलियों ने सबको पुनः अपनी-अपनी जगह वापस भेज दिया।

देर तक यह पेच चलता रहा। लोगों के अनुमान के अनुसार यह पेच सबसे लंबा साबित होने लगा। दोनों पतंगों जैसे-जैसे आसमान की ऊँचाइयाँ मापने लगीं वैसे-वैसे पतंगों का आकार निम्नतम होने लगा। देखने वालों को जँच गया कि इस पेच पर दोनों गाँवों की इज्जत टिकी हुई है। डंगेधारी हाथों में ऊँचे-ऊँचे डंगे लिए और आसमान में पतंगों पर नज़र गड़ाए पानी में ही छपाक्-छपाक् तेज़ी से दौड़ पड़े।

दोनों तरफ़ के एक के बाद एक तीन हुचके खाली हो गए लेकिन मजाल है किसी की तो पतंग कट जाए। दोनों पतंगों ने जैसे हार न मानने की क्रसम खा ली। मँगतू की अँगुलियों में थमी डोर के इशारे पर तिरंगा आसमान की ऊँचाई को चीरता हुआ निर्बाध गति से आगे बढ़ रहा है। सलेमी के हाथों में थमा हुचका पूरी गति से घूम रहा है। उसने पूरा ध्यान और पूरी ताकत हुचके को पकड़ने में झोंक दी वरना ऐसा न हो कि हुचके में लिपटी रील कहीं अटक जाए और...। वैसे ऐसे मौकों पर पतंग कटने की आधी से ज़्यादा ज़िम्मेदारी हुचका पकड़ने वाले के सिर मढ़ दी जाती है।

मारे पसीने के मँगतू का ललाट भीग गया। कानों में झूलती सोने की मुर्कियों और पार्थ की तरह आकाश में उड़ती मछली की आँख पर टिके निशाने का दृश्य सचमुच देखने और रोमांच पैदा करने वाला था।

इससे पहले कि कुछ फ़ैसला होता अचानक लोगों ने देखा कि नगीना के तिरंगा ने आकाश में ही पेच के दौरान चकराना शुरू कर दिया। बस, फिर क्या था लाला नौबत राय की छत पर जमा खलकत की साँसें जैसे गले में अटक गईं। इधर तिरंगा का चकराना शुरू हुआ और उधर मँगतू को लगा जैसे उसके हाथ में थमी पतंग की रील से एक नहीं बल्कि एकसाथ कई पतंगें बँधी हुई हैं। ऐसी परीक्षा की घड़ी में ही माहिर उस्ताद का पता चलता है। देखने वालों ने तनी हुई पतंग की रील से अंदाज़ा लगा लिया कि पूरन मास्टर ने रील खरीदते समय अपनी होशियारी का कितना परिचय दिया है, वरना अब तक तो पतंगें रील को तुड़ाती हुई ये जाती, वो जाती। थोड़ी देर के लिए आसपास आसमान में उड़ रही चमगादड़ों की तरह अन्य पतंगों को आसमान से उतार कर छतों के कोनों में दाब दिया गया। सलेमी के काँपते हुए हाथों से चकरघिन्नी होते हुचके को बड़ी ही सावधानी और सफ़ाई के साथ जुम्मा ने अपने हाथों में ले लिया। लोगों की आँखों की पुतलियाँ चकराती हुई पतंग के साथ-साथ घूमने लगीं, और तिरंगे के सही-सलामत वापस लौटने के लिए असंख्य दुआएँ और प्रार्थनाएँ होठों पर थिरकने लगीं।

बड़ी मुश्किल पैदा हो गई मँगतू के लिए कि चलते हुए पेच के बीच एकाएक चकराती हुई अपनी पतंग को कैसे सँभाले ? चलती हुई पतंग को इस समय रोकना ख़तरे से खाली नहीं है क्योंकि रोकते ही पतंग कटे बगैर मानेगी नहीं और यदि उसकी पतंग ने साकरसवालों की पतंग को काट भी दिया, तो इस स्थिति में तिरंगे का वापस आना एकदम असंभव है क्योंकि जिस तेज़ी के साथ वह नियंत्रण से बाहर होती जा रही है, उसे देखते हुए उसका आना एकदम असंभव है। यानी अपने तिरंगे का कटना मँगतू को गवारा नहीं है और सही-सलामत उसका वापस आना संभव नहीं है — तब क्या किया जाए ?

ऐसे ही मौकों के लिए मँगतू को हमेशा याद किया जाता है।

हारकर छत पर जमा भीड़ ने सब नियति और मँगतू के ऊपर छोड़ दिया — यह सोच कर कि चाहे तो ये दोनों नगीना को तिरा दे या डुबो दें।

मँगतू ने पूरा ध्यान लगा दिया तिरंगा पर लेकिन मजाल है तिरंगा सँभले तो सही। मँगतू कभी तिरंगा को शह, तो कभी लच्छा देकर हर तरह से कोशिश करने लगा कि किसी तरह वह क़ाबू में आ जाए किन्तु सब व्यर्थ।

एकाएक मँगतू को एक उपाय सूझा।

उसने सलेमी को पास बुलाते हुए कहा, “सलेमी, जल्दी कोई फेड़ा ला !”

सलेमी बिना कोई प्रश्न किए तेज़ी से छत से नीचे उतर गया।

सलेमी के जाते ही जुम्मा ने पूछा, “फेड़ा की कहा जरूरत आ पड़ी ?”

मँगतू ने जुम्मा के सवाल का कोई जवाब नहीं दिया, देता भी कैसे ? उसकी योजना तो अभी उसके मन में ही पक रही

है, सो भला किसी की समझ में कैसे आती।

सलेमी तुरंत भाग कर एक फेड़ा ले आया।

“मास्टर जी, यार हमारी पतंग तो अब वापस आणा सू रही... नाएँ तो ऐसो ना करें के हम अपनी रील में या फेड़ा ए बाँध के छोड़ देएँ ?” मँगतू ने अपनी योजना का पहली बार खुलासा करते हुए कहा।

“मँगतू बावलो हो गो है... अरे, जब किसी की पतंग कटी ही नहीं है तो पहले कैसे अपनी पतंग ए तोड़ के छोड़ देणो ?” पूरन मास्टर ने आधा तर्क और आधा सवाल करते हुए पूछा।

“यार, हमारी पतंग तो वैसे भी उल्टी ना आएगी... या मारे हमारी पतंग तो जाएगी ही, उनकी भी क्यों छोड़ें !” पतंग पर ध्यान रखते हुए मँगतू ने सुझाव दिया।

तुरंत पूरन मास्टर की समझ में तो मँगतू की यह योजना आ ही गई बल्कि छत पर जमा भीड़ ने भी उसे सराहा। अगले ही पल पूरी छत को खाली करवा दिया गया। कुछ तहमद-पायजामा ऊपर सरका कर मुँडेर पर बैठ गए और कुछ बराबर वाली छत पर चले गए। पूरी छत पर सिर्फ तीन-चार जने रह गए।

“बुग्गल, ओतरी दा छाणा... जल्दी हुचका खाली कर।” पूरन मास्टर ने बुग्गल को मलामत के साथ-साथ आदेश देते हुए कहा।

इसके बाद बुग्गल ने लंबे-लंबे हाथ मारकर हुचके से जल्दी-जल्दी रील खींची और हुचके से रील को तोड़कर उसके अंतिम छोर पर फेड़ा बाँधते हुए बोला, “मँगतू, मैंने फेड़ा बाँध दियो है।”

मँगतू ने मुड़कर पीछे की ओर देखा। जब उसे तसल्ली हो गई कि सब योजना के अनुसार हुआ है, तो अपने हाथ से रील को छोड़ते हुए बोला, “साकरसवालो, तुम भी कहा याद करोगा के काई आदमी सू पल्लो पड़ो हो।”

नगीना के तिरंगा को आकाश में डगमगाते हुए जैसे ही चंद्र परधान की छत पर खड़े साकरसवालों ने देखा कि उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मारे खुशी और विजयी भाव के उनका समवेत स्वर गूँज उठा। “बम्मारा । बोलो नगीना की फाट्टी है” कहकर जैसे ही उनके उस्ताद ने अपनी पतंग को रोका कि उसे लगा मानो उसके हाथों से तोते उड़ गए।

अगले ही पल सबने देखा कि नगीना के तिरंगा के साथ साकरस की पतंग भी डगमगाती हुई चल पड़ी है। दर असल, जैसा वे समझ बैठे थे वैसा हुआ नहीं क्योंकि मँगतू की पतंग की रील, उनकी रील को लगातार रेत रही थी और जैसे ही उन्होंने अपनी पतंग को रोका कि उसके रुकते ही उनकी पतंग भी कट गई।

पूरे नगीना ने मँगतू के इस आत्मघाती निर्णय को खूब सराहा कि किस तरह योजनाबद्ध तरीके से मँगतू ने न केवल नगीना की नाक कटते-कटते बचा ली बल्कि साकरस को भी दिन में तारे दिखा दिए।

मारे खुशी के जुम्मा ने तो मँगतू को कौली में भरकर छाती से लगा लिया। पूरन मास्टर का कहना ही क्या, पहले तो उसने मँगतू को अपनी आदत के अनुसार पाँच-सात भारी-भरकम गालियाँ दीं और फिर वहाँ जमा ठट्टे को संबोधित करते हुए बोला, “ओए, ओतरी दे छाणो ! सीक्खो कुछ... पतंग कैसे उड़ाई जाती है... ये तो मँगतू की ही हिम्मत थी जुम्मा होता न... सर्तिया आज नगीना की नाक कट ही जाणी थी...।”

“मँगतू, तेने तो आज हद ही कर दी...।” सलेमी ने हुचके को ज़मीन पर रख, साफ़ी से माथे पर चू आए पसीने को पोंछते हुए कहा।

मँगतू ने भी कंधे पर पड़ी लाल साफ़ी से पहले पसीना पोंछा और फिर गटागट पानी से भरे गडुए को रीता कर गया। अगली पतंग में कन्ना डालने के लिए वह अभी पतंगों के ढेर के पास पहुँचा ही था कि तभी उसका सबसे छोटा लड़का बदहवास-सा दौड़ा हुआ आया और आते ही बोला, “चाचा जल्दी घर चल।”

“कहा हुआ ?” लड़के की ओर देखे बिना, पतंगों के ढेर से एक पतंग छँटते हुए पूछा मँगतू ने।

“माँ के बहोत तेज बुखार चढ़ रो है।” कहते-कहते इस बार लड़का रुआँसा हो गया।

“चल अभी आरो हूँ।” दियासलाई को सींक से पतंग में कन्ने के लिए छेद करते हुए मँगतू ऐसे बोला जैसे कुछ हुआ ही न था।

“ओए, ओतरी दा छाणा। चल खड़ा हो... माई आवे पेले भरजाई नू दवाई दिला के आ... जुम्मा चल, मैं और बुगल भी चलते हैं...।”

इतना कहकर पूरन मास्टर उन दोनों को साथ लेकर चलने लगा तो मँगतू झुँझलाते हुए बोला, “कौन-सी आफत आ पड़ी यार... तुम यई रहो मैं ही चलो जाऊँगो।” कहते हुए मँगतू लंबे-लंबे डग भरते हुए छत से नीचे उतर गया।

मँगतू के जाने के बाद आगे की बागड़ोर सँभालने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। इधर जब जुम्मा मनिहार, बुगल चक्कीवाला, पूरन मास्टर के अलावा जितने भी अपने आपको तीस मारखाँ मानते थे, बारी-बारी से पूछा गया तो सब आपस में बगलें झाँकने लगे।

उधर चंदू परधान की छत से बार-बार यह पूछा जाने लगा कि नगीना ने पतंग उड़ानी क्यों बंद कर दी? क्या पतंग खत्म हो गई हैं, रील खत्म हो गई है, या फिर साकरस से फटने लगी है?

अंतिम फ़व्वी पर जुम्मा खून का घूँट पीकर रह गया। किन्तु जब लगा कि चंदू परधान की छत से फ़व्वियों का सिलसिला रुक नहीं रहा है तब पूरन मास्टर से रुका नहीं गया, और बोला, “ओए जुम्मा, ओतरी दा छाणा चल... मैं हुचका पकड़ता हूँ और तू पतंग सँभाल.. यार, होगी जो देखी जाएगी।”

जुम्मा को भी शायद ऐसे ही नैतिक प्रोत्साहन की जरूरत थी। उसने तुरंत एक पतंग में कन्ना डाला और उड़ते हुए शह देने लगा। आकाश में जाते ही पतंग जुम्मा से बेक्राबू होने लगी। जुम्मा के हाथ-पाँच फूल गए बेक्राबू पतंग को देखकर। अभी वह पतंग को लच्छा देकर सँभाल ही रहा था कि विपक्षी पतंग ने जुम्मा की पतंग को धर दबोचा।

नगीना की पतंग के नीचे आते ही चारों तरफ से सब जुम्मा पर बरस पड़े।

“जुम्मा, तैने अब कटवा दी या नघीणा की नाक...।” बुगल ने दाँत पीसते हुए कहा।

“अबे पतंग को लच्छा देके दुलकियाँ डाल...।” हुचके को पकड़े-पकड़े पूरन मास्टर झल्लाते हुए बोला।

जुम्मा ने तुरंत रील की लच्छा दिया कि पतंग अगले पल दुलकियाँ पड़ने लगी। पूरी लय और गति के साथ पतंग आसमान को चीरती हुई क्षितिज की ओर बढ़ने लगी।

तभी मुँडेर पर बैठे एक युवक ने लगभग चिल्लाते हुए कहा, “जुम्मा, थोड़ी देर और... मँगतू भगो आ रो है...।”

छत पर आते ही लगभग जुम्मा के हाथों से झपटते हुए जैसे ही मँगतू ने पतंग को सँभाला कि सबकी साँस मानो वापस लौट आई।

इसके बाद शाम तक मँगतू ने साकरस को दम नहीं लेने दिया। उसकी कुशल अँगुलियों ने एक के बाद एक उनकी जो पतंगें काटनी शुरू की, तो यह सिलसिला तभी रुका जब चंदू परधान की छत ने अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर ली।

चंदू परधान की छत द्वारा पराजय स्वीकार करते ही विजयोत्सव के इस नायक को वहीं लाला नौबत राय की छत पर जमा ठट्टे ने कंधों पर उठाकर खुशियाँ मनानी शुरू कर दीं और शाम को तीजन के कुएँ के पास धोबीघट्टा पर आयोजित दंगल में मास्टर हयात खाँ द्वारा नगीना की जीत और मँगतू के जौहर की बाकायदा विधिवत् उद्घोषणा की गई। यहाँ तक कि बाद में कई दिनों तक गोपाल सन्नार्थी की होटल पर चाय की चुस्कियों के बीच पतंगबाजी के नुकतों पर तबसरा होता रहा कि मँगतू ने किस



सयानपत से साकरस के मंसूबों को धूल-धूसरित कर दिया। कि कैसे जुम्मा मनहार ने जोश में आकर साकरस की चुनौती स्वीकार कर उनसे पेच लड़ा दिए कि किस कुशलता से मँगतू ने उस चुनौती को सफलता में परिवर्तित कर दिया। कि नगीना की नाक को मँगतू ने अपनी हिम्मत और दूरदर्शिता से किस तरह बचा लिया।

देर तक सलेमी अतीत के इस साँझे झूले पर पींगे खाता रहा। सलेमी देर तक जैसे खुद मँगतू को अपने कंधों पर उचककर पूरे दंगल में चक्कर लगाता रहा लेकिन जैसे ही वह वर्तमान में लौटा तो लौटते ही उसकी आँखों की चमक क्षीण होती चली गई — क्यों ? क्योंकि यह वर्तमान उस अतीत से कहीं ज़्यादा कड़वा और चोटिल है, जिसकी चोट और कड़वेपन का अहसास ही नहीं होता है।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

हुचके फिरकी हू-बहु प्रतिकृति रेतना काटना ज़िबह रेत-रेतकर गला काटना पणहा जूता गरियाना गाली देना वाजिब औचित्य पूर्ण, उचित कायल अभिभूत पुरवा पूर्व दिशा से चलने वाली हवा मेह बादल दिहाड़ी प्रति दिन मिलने वाली मजदूरी जायजा जाँच-पड़ताल, मुआयना मिज़ाज प्रकृति, स्वभाव समवेत समूह, एक साथ में छोरा लड़का ठट्टा भीड़, समूह खलकत भीड़ माहिर निपुण गवारा सहमत, मंजूर मजाल सामर्थ्य बावलो पागल रीता खाली तबसरा विचार-विमर्श नुक्ता दोष, खामी, कमी

### मुहावरे

नौ दो ग्यारह होना भाग जाना पानी फिर जाना निरर्थक हो जाना ऐसी की तैसी करना बेइज्जत करना मजा किरकिरा होना आनन्द में विक्षेप होना नाक कटवाना अपमानित होना सिर मढ़ना जबरदस्ती जिम्मेदार ठहराना खुशी का ठिकाना न रहना अति प्रसन्न होना तीस मार खाँ होना होशियारी दिखाना बगले झाँकना कुछ कह न पाना हाथ पाँव फूल जाना घबरा जाना दाँत पीसना क्रोधित होना धूल धूसरित करना पराजित करना

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) मँगतू किस कला में निपुण था ?
- (2) दादा सुग्गन ने मँगतू की पिटाई क्यों की ?
- (3) सलेमी को दादा सुग्गन का गुस्सा वाजिब क्यों लगा ?
- (4) पेंच बाँधते समय क्या शर्त रखी गई थी ?
- (5) धूप के निकलते ही नगीनावासी अति प्रसन्न क्यों हो गए ?
- (6) साकरसवाले क्यों सहमे हुए थे ?
- (7) तिरंगा-झप्पू के करतबों का क्या परिणाम निकला ?
- (8) जुम्मा मनहार ने अपना ताँगा मुफ्त में क्यों और कहाँ के लिए लगा दिया ?
- (9) लाला नौबत राय की पत्नी नाराज क्यों है ?
- (10) मँगतू को अचानक घर क्यों जाना पड़ा ?

2. उत्तर लिखिए :

- (1) नगीना वासियों ने मँगतू को नायक का स्थान क्यों दिया ?
- (2) अचानक ऐसा क्या हुआ जिसने नगीना-वासियों का मजा किरकिरा कर दिया, वर्णन कीजिए ?
- (3) 'काला-पहाड़' पाठ के आधार पर पतंगबाजी की तैयारी और इसके रोमांच का वर्णन कीजिए।
- (4) एकाएक मँगतू को क्या उपाय सूझा ? उसने उपाय को क्रियान्वित कैसे किया ?

4. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

- (1) "देखने वालों को जँच गया कि इस पेंच पर दोनों गाँवों की इज्जत टिकी है।"
- (2) "पूरे नगीना ने मँगतू के इस आत्मघाती निर्णय को खूब सराहा।"

5. निम्नलिखित मुहावरे का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

नौ दो ग्यारह होना, नाक कटवाना, दाँत पीसना, बगले झाँकना

योग्यता-विस्तार

- गुजरात सरकार द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय पतंग महोत्सव के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए।
- गुजरात में मनाए जाने वाले पतंग - महोत्सव का वर्णन कीजिए।



दलित साहित्यकार और चिंतक तुलसीराम का जन्म आजमगढ़ के धरमपुर में हुआ था। उच्च शिक्षा-प्राप्ति के बाद उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय के सेन्टर ऑफ इंटरनेशनल स्टडी में अध्यापन कार्य किया। देश की जातिगत व्यवस्था के वे घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि मार्क्स, अंबेडकर और बुद्ध-तीनों विचारों का समन्वय कर देश के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। कम्यूनिस्ट आंदोलन और रूसी मामलों के वे विशेषज्ञ माने जाते थे। अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध चिंतन और दलित आंदोलन में उनकी गहरी सूझ-बूझ थी।

‘मुर्दहिया’ शीर्षक से छपी उनकी आत्मकथा हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। ‘आंगोला का मुक्ति संघर्ष’ सी. आई. ए. राजनीतिक विध्वंस का अमेरिकी हथियार’, ‘पर्शियाटूईरान’, ‘द हिस्ट्री ऑफ कम्यूनिस्ट मूवमेन्ट’, ‘आइडियोलॉजी इन सोसियल ईरान रिलेशंस’ उनके प्रमुख ग्रंथ हैं। तुलसीराम को अस्मितावादी राजनीति के विरोधी और वामजनवादी राजनीति के समर्थक के रूप में जाना जाता है। ‘मुर्दहिया’ को 2011 का चौथा ‘अयोध्याप्रसाद खत्री सम्मान’ प्राप्त हुआ था।

‘मुर्दहिया’ सिर्फ एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं सारे दलित समाज की व्यथा कथा है। आत्मकथाकार के गाँव के निकट मुर्दहिया नामक स्थान उसकी जन्मभूमि भी है और सोर गाँव की कर्मस्थली भी। दलितों के सारे काम वहीं संपन्न होते थे। गाँव में दलितों के साथ सवर्णों का व्यवहार अपमानजनक होता था। लेखक ने आत्मकथा के इस अंश में दलितों के रीति-रिवाज, खान-पान, अंध-विश्वास, लोकगीत, उत्सव-त्योहार, नाच-गान, संगीत-नौटंकी आदि अनेक चीजों का यथार्थ वर्णन करते हुए इस बात पर बल दिया है कि दलितों का संपूर्ण जीवन सवर्णों की जीवन-शैली से भिन्न होता था। सवर्णों द्वारा की जाने वाली उपेक्षा दलितों की हर प्रवृत्ति में अनायास ही झलक जाती थी। दलितों के सारे दुख-दर्दों की साक्षी है मुर्दहिया।

अब छुट्टियाँ दो-चार दिन की ही शेष रह गई थीं। आसमान में हैरतअंगेज नजारा उभरने लगा। लगातार दो साल के सूखे के बाद बादल गरजने लगे। लोग घरों से बाहर निकलकर आसमान को घूर-घूरकर देखने लगे। विशेष रूप से दलित नृत्य मुद्रा में प्रतीत होने लगे थे। पहली बारिश के साथ ही गाँव वाले आपस में चंदा करके एक सूअर खरीद लाए। समारोह चमरिया माई को बलि देकर बारिश का स्वागत किया गया। इसी बीच मुर्दहिया के ऊपर पूरे आसमान को घेरता हुआ एक विशाल अर्ध चंद्राकार इंद्रधनुष दिखाई दिया। हमारे गाँव के दलित इंद्रधनुष देखते ही हाथ जोड़कर ‘इन्नर भगवान’ की जयकार करने लगे, वे कहते थे कि अब ‘इन्नर भगवान’ खुश हो गए हैं, इसलिए खूब पानी बरसाएंगे। धनुष का विश्लेषण करते हुए गाँव वाले यह भी कहते कि जब इंद्र देवताओं की पंचायत बुलाते हैं, तो सभी देवता गोलाइ में बैठ जाते हैं, जिसके कारण वे इंद्र धनुष के रूप में आसमान में दिखाई देने लगते हैं। वर्षा की इस आस के बीच 1 जुलाई, 1959 ने आगमन मेरी चिंता को धधका दिया। यह एक ऐसी तारीख थी जिससे मेरा भविष्य तय होने वाला था। घर में कोहराम मचा हुआ था। नगगर चाचा जैसे विस्फोटक दिमाग वाले घर के लोग आरोप लगाने लगे कि मैं पढ़ाई के बहाने कामचोर बनना चाहता हूँ। बड़ी मुश्किल से दादी की जिद पर मुझे चार आना मिला, जो छठी कक्षा में नाम लिखाने की फीस थी। यह चवन्नी इस बात की गारंटी थी कि अब छठी से लेकर दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई का मार्ग खुल गया। उस दिन मैं दौड़ते हुए स्कूल गया था। छठी कक्षा में मेरा दाखिला युगांतरकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि यहीं से शुरू हुई थी मेरी अंग्रेजी भाषा की शिक्षा, जिसके ज्ञान ने मुझे आगे चलकर अपने गाँव में एक किसी अन्य ग्रह का मानव बना दिया था। छठी में अंग्रेजी पढ़ाने वाले मास्टर थे मुशाफिर लाल, किन्तु उन्हें भी सभी लोग सिर्फ मुंशी जी के नाम से जानते थे। वे उसी जिगरसंडी गाँव के रहने वाले थे, जहाँ के बाबू परशुराम सिंह थे। ये अंग्रेजी वाले मुंशी जी प्राइमरी वाले मुंशी जी से बिल्कुल भिन्न थे। वे अत्यंत मेहनती और अनुशासन वाले व्यक्ति थे। वे किसी के साथ भेदभाव नहीं करते थे। परिणामस्वरूप अंग्रेजी के प्रति मेरा आकर्षण एक तरह के पागलपन में बदल गया। मुंशी जी जो कुछ सिखाते-पढ़ाते, मैं सब कुछ रट लेता था। यहाँ तक कि किताब से जो भी पाठ पढ़ाते मैं दूसरे दिन उसे जबानी सारा कुछ बोल देता था। मेरी इस याद-

दाश के कारण मुंशी जी मेरे सबसे बड़े प्रशंसक बन गए। शीघ्र ही मैं अनेक अंग्रेजी के स्वतंत्र वाक्यों का मालिक बन बैठा, और जब मैं अपनी दलित बस्ती में किसी के सामने इन वाक्यों को बोलता तो लोग चकाचौंध होकर मुझे घूरने लगते थे। किन्तु मेरी दादी इस बात से चिन्तित हो गई थी कि कहीं मैं पागलपन की तरफ तो नहीं बढ़ रहा ? वह अक्सर दोहराती रहती कि सुनने में आता है कि ज्यादा पढ़ने से लोग पागल हो जाते थे। इसलिए मेरे मुँह से अंग्रेजी के शब्द सुनकर वह घबरा जाती थी। मेरी बस्ती के बदलू और बलराम दो ऐसे हरवाहे थे, जो शाम के समय काम से वापस आने पर सीधे मेरे पास आते थे और मुझे हमेशा अंग्रेजी बोलने के लिए कहते। मैं तुरंत दर्जनों छोटे-छोटे अंग्रेजी के वाक्य उनके सामने जड़ देता, जैसे — ‘आई ऐम गोइंग’, ‘यू आर कर्मिंग’ तथा ‘ही इज रीडिंग’ आदि आदि। मेरे मुँह से ऐसे वाक्यों को सुनकर लगता था कि मानो दिन भर की हरवाही से प्राप्त उनकी सारी थकान मिट गई। पागलपन कहीं बढ़ न जाए, इस चिन्ता में दादी मुझसे हमेशा कहती रहती “हरदम अंड बंड मत बोला कर।” इन तमाम अटकलों के बीच मेरा यह पालगपन बढ़ता रहा। प्राइमरी स्कूल में मेरा जो स्थान गणित के लिए था वही छठी के बाद अंग्रेजी के लिए हो गया। अंग्रेजी भाषा के कारण छठी कक्षा मेरे लिए अत्यंत आकर्षक बन गई।

वापस गाँव में अत्यंत खुशहाली का वातावरण छाने लगा था, क्योंकि आषाढ़-सावन के बीच दो साल बाद बड़ी घनघोर बारिश हुई और चारों तरफ बाढ़ ही बाढ़ आ गई थी। लोग रोपनी के लिए धान की जरई तैयार करने लगे तथा खेतों में ‘लेव’ लगाते। खेत में चारों तरफ से मेड़ द्वारा पानी को रोककर हल जोतने को लेव लगाना कहते थे, जिसमें मौसम के अनुसार आगामी फसल बोई जाती थी। लेव के बाद खेतों को हेंगा से हेंगाया जाता था। बाँस के तीन छह-सात फीट लम्बी काड़ियों को एक साथ पचरी ठोककर चौड़ा बना दिया जाता था, जिसे हेंगा या पाटा कहा जाता था। हेंगा को मोटे रस्से में बाँधकर जुआठे में नथे बैलों द्वारा खींचा जाता था। हेंगा के ऊपर अक्सर किसी बच्चे को भी बैठा दिया जाता था तथा हरवाहा स्वयं उस पर चढ़कर हेंगाने के लिए बैलों को हाँकने लगता था। पानी भरे जुताई किए गए खेत को समतल बनाने के लिए हेंगा पर बैठे बच्चों का बहुत मनोरंजन होता था। देखते ही देखते धान की फसलें लहलहा उठीं। दो साल की अत्यंत तबाही के बाद अकाल का दौर समाप्त होते ही बाढ़ के कारण ताल-पोखरे, नदी-नाले, डबरा-डबरी यहाँ तक कि धान के कियारे तरह-तरह की मछलियों से पट गए। मछलियों की बहुतायत इतनी ज्यादा हुई कि लोग टोकरी में भर-भरकर दूर-दूर स्थित अपने रिश्तेदारों के घर पहुँचाने लगे। मछलियों के आगमन ने दलितों की भुखमरी को हवा में उड़ा दिया। आगे आने वाले हर मौसम में इसी की बहार थी। मछलियाँ मारने के सिलसिले में एक वाकया मेरे साथ ऐसा हुआ, जिसे याद करके मैं आज भी विचलित हो जाता हूँ। गाँव की ताल से जुड़ी पतली नहर में मैं कंटिया लगा रहा था। एक जगह गिरई नामक मछली के छोटे-छोटे सैंकड़ों बच्चे पानी की सतह पर तैर रहे थे। ऐसे छोटे बच्चे, जिसे जरई कहा जाता था, उनकी माँ मछलियाँ अक्सर अपने साथ चराने के लिए पानी में इधर से उधर चला करती थीं। मैंने केंचुवा से गुंथी कंटिया को इन जरइयों के बीच फेंका। शीघ्र ही कंटिया का धागा तेजी से खींचा जाने लगा। मैंने कंटिया को उछालकर जमीन पर फेंका और मेरे हाथ में आ गई करीब एक पाव वजन वाली गिरई जो अपनी जरइयों को चरा रही थी। मैंने इस छटपटाती गिरई को जमीन पर पटककर मार डाला, उधर सैंकड़ों जरइयाँ इधर-उधर बिखरकर ऐसे दिशाविहीन हो गईं, जैसे पानी की सतह पर बिछी काई पर बड़ा-सा पत्थर फेंक दिया गया हो। इन मातृविहीन जरइयों को दिशाविहीन देखकर मेरे अंदर एक अति निर्दयी पापी होने की अनुभूति जग गई। आज भी पानी में तैरती जब भी किसी मछली को देखता हूँ तो मैं अपने को उसी निर्दयी पापी की अवस्था में पाने लगता हूँ। जो भी हो, उस बरसात ने हमारे गाँव में आने वाली हर संध्या को अपने पुराने रूप में तब्दील कर दिया था। सूरज डूबते ही झींगुर तथा रेडवाँ की निरंतर जारी रहने वाली चिचियाती धुनों में हजारों मेढकों की टरटराहट मिलकर किसी को सोने नहीं देती थी। वहीं, गोबड़ौरों का समूह मैले के ढेर को गोलाकार ग्लोब का रूप देकर ऐसे ठेलते नजर आने लगे थे कि मानो दुःखों से भरी इस धरती को लुढ़काकर वे किसी अन्य ग्रह पर ले जा रहे हों। ढिबरी तथा लालटेन जैसे रोशनी के स्रोतों पर पतिंगों का हुजूम आत्महत्या के लिए मजबूर होने लगा था। राहत की बात यह थी कि ये सारी गतिविधियाँ उस भीषण अकाल के समापन की ही घोषणा कर रही थीं। सावन आते ही नागपंचमी की आहट पाकर चुड़िहारिन गाँव-गाँव घूमकर कजरी विधा में गाने लगीं थीं :

‘एक दिन छल कइलै हो मुरारी सुनिए-

बनिके अइलै चुड़िहारी सुनिए ना।’

गोदना गोदनेवालियाँ भी ऐसी धुनों पर फेरी लेने लगी थीं। नीम के पेड़ों पर पड़े झूले तो संध्या के समय मनोरंजन के सबसे बड़े केन्द्र बन गए थे। गाँव के दलित मजदूर और मजदूरिनें लोकगीतों की धुन पर झूल-झूलकर दिन भर काम से मिली थकान को हवा में उड़ाने लगीं। इसी बीच घुमंतू नटों की गाँव के बाहर सिरकियाँ भी गड़ने लगीं। ये सारी बरसाती गतिविधियाँ पिछले दो साल अकाल के दौरान एकदम बंद हो गई थी। किन्तु सन् 1959 के बरसाती दिनों में इनकी वापसी से हमारी दलित बस्ती जीवंत हो उठी थी।

उस बरसात में करीब पंद्रह सदस्यीय घुमंतू नटों के एक झुंड ने हमारी दलित बस्ती के दक्षिण में स्थित ऊसर जमीन पर अपनी सिरकियाँ लगा लिया। त्रिकोण झोंपड़ीनुमा सिरकी सरपत तथा कपड़ों से बनाई जाती थीं। उन्हें सैनिक टेंट सरीखे गाड़कर नट रात में उसके अंदर सोते थे। ऐसे खानाबदोश नट बरसात के दिनों में घूम-घूमकर लोगों को पहलवानी सिखाते थे, जिसके बदले उनकी रोजी-रोटी चलती रहती थी। ये नट आल्हा गाने में माहिर होते थे तथा ढोल वादन में अत्यंत पारंगत। हमारे गाँव में जिस नट परिवार ने सिरकी लगाया था, उसका मुखिया बहुत हट्टा-कट्टा पहलवान था, जो तुर्कों जैसा प्रतीत होता था। उस परिवार की युवतियाँ अत्यंत सुंदरी थीं, जिनके बारे में गाँव में तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगी थीं। अपनी किसी बात को मनवा लेने की इन नटों में अद्भुत क्षमता होती थी। वे सब कुछ गा गाकर मनवा लेते थे। वीरता भरे किसी भी आल्हा प्रकरण में वे सामने वाले व्यक्ति को पिरोकर ऐसा दृश्य पैदा कर देते थे, जिससे भावुक होकर लोग उन्हें हर तरह की मदद के लिए राजी हो जाते थे। इसी क्रम में बस्ती के लोग पहलवानी सीखने के लिए राजी हो गए। मुर्दहिया के पहले एक बाग में अखाड़ा तैयार किया गया तथा करीब बीस युवक उस नट पहलवान से कुश्ती, बना-बनेठी, तलवार आदि भाँजना सीखने लगे। अखाड़े में नट तरह-तरह के दाँव सिखाता तथा वहाँ भारी भीड़ तमाशबीनों की इकट्ठा हो जाती। एक बार सिखा दी गई तरकीबों की प्रैक्टिस के लिए वह नट बीच-बीच में वीर रस से ओतप्रोत ढोल की थाप को ऐसी सुरीली बना देता था कि ये सारी नट विद्याएँ सबके सिर चढ़कर बोलने लगती थीं। हमारे परिवार के दो युवक सोबरन तथा गोकुल भैया पहलवानी सीखे। नटों द्वारा ऐसी पहलवानियाँ एक 15 दिवसीय पर्व की तरह होती थीं, जिसके बाद शुरू होता था विदाई समारोह। जिन-जिनके घर के युवक पहलवानी सीखते थे, नट पहलवान बारी-बारी से उनके घर आल्हा का आयोजन करता था। जिस दिन हमारे दरवाजे पर आल्हा का आयोजन हुआ, उस दिन सैंकड़ों लोग वहाँ उपस्थित हो गए थे। लोग घंटों तक मंत्रमुग्ध होकर आल्हा सुनते रहे। अंततोगत्वा, जब वह नटसमूह हमारी बस्ती से विदाई लेकर अपनी सिरकियाँ उखाड़ने लगा, तो घर-घर में मातम सा छा गया था। जब वे सिरकियों को अपनी पालतू घोड़ी की पीठ पर लादकर एक अजनबी मंजिल की तरफ जाने लगे तो मैं भी उन्हें बड़ी ललचाई निगाहों से देखता रहा और बार-बार सोचता रहा कि यदि उनके काफिले में मैं भी होता, तो कैसा लगता ? देखते ही देखते नटों का यह झुंड मुर्दहिया के रास्ते हमारी आँखों से ओझल हो गया।

जाहिर है उस बरसात ने सूखाग्रस्त गाँवों की दलित बस्तियों में अनेक गतिविधियों की भरमार कर दी थी। अब जो चिट्ठियाँ मुझसे लिखवाई जाती थीं, उनमें किसुनी भौजी जैसी युवतियों द्वारा ऋतु वर्णन भी शामिल होने लगा था। उनके अर्थ वैसे ही होते थे, जैसे 'पद्मावत' में महाकवि जायसी की ये पंक्तियाँ —

*'बरिसै मघा झकोरि झकोरी-मोर दोउ नैन चुवै जस ओरी।'*

उधर हमारा स्कूल भी जाड़े की शुरुआत होते ही अनेक सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। पहली पंचवर्षीय योजना चालू तो पहले ही हो गई थी, किन्तु उसका प्रभाव कहीं नहीं नजर आता था। पहली बार सन् 1959-60 के जाड़ों में हमारे क्षेत्र के जहानागंज कस्बे में ब्लॉक विकास केन्द्र खोला गया था, जिसके तहत विभिन्न स्कूलों में कृषि प्रदर्शनी आयोजित होने लगी। अनेक सरकारी अधिकारी जैसे ए.डी.ओ., बी.डी.ओ., तहसीलदार तथा डी.एम. आदि इन स्कूलों का दौरा करने लगे। ऐसी प्रदर्शनियों के अवसर पर मुझे यह अनुभव होने लगा था कि दो वर्ष पहले कौड़ा तापते हुए मुन्नर चाचा जो कुछ भी

रूस में 'समोही खेती' या नेहरू की योजना के बारे में बताते थे, उसका साकार रूप इनमें दिखाई देने लगा था। उस समय हमारे स्कूल पर बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। प्रदर्शनी में लहलहाती फसलों के बड़े-बड़े नमूने रखे गए थे। वहाँ बड़ी संख्या में किसान आते थे। शाम के समय बड़े स्तर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम ब्लॉक द्वारा आयोजित किए जाते थे। उस समय जहानागंज ब्लॉक के एक मशहूर 'विरहा गायक' थे, जो अपनी गायन शैली में विकास कार्यक्रमों को भी शामिल किए हुए थे। उनका नाम था जयश्री यादव। लोहे का करताल बजाते हुए जब बुलंद आवाज में इन लाइनों —

*'होइहैं अब कल्याण पंचवर्षीय योजना से -*

*हरा-भरा खेत-खलिहान पंचवर्षीय योजना से'*

को गाते थे, तो सभी रोमांचित हो उठते थे। ऐसी प्रदर्शनियों के बाद गाँव-गाँव में ग्रामसेवक घूमने लगे। साथ में कभी-कभी स्कूलों के कृषि छात्र भी होते थे। वे सभी डिबलर से बीज बोने के लिए किसानों को प्रेरित करते रहते थे। 'डिबलर' लकड़ी का एक दर्जन खूंटियों वाला चौकोर खाँचा होता था। इसके इस्तेमाल से खेत में खूंटियों द्वारा बनाए गए छेद में फसलों के बीज बोए जाते थे। उस समय डिबलर से खेती का वर्णन विभिन्न लोकगीतों में खूब मिलता था। इन सब क्रियाकलापों से नेहरू जी की छवि ग्रामीण इलाकों में काफी निखरने लगी थी। लोग अकाल से उत्पन्न दुःख-दर्द को भूल गए थे। धान की अच्छी फसलों के बाद चैत-वैशाख के दिनों में जौ, गेहूँ, चना, मटर आदि फसलों की कटाई से दलितों के बीच काफी खुशहाली छा गई थी, इसका कारण था कुछ महीनों के लिए उचित भोजन व्यवस्था, इस संदर्भ में हमारे पूरे क्षेत्र में दूर-दूर तक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जमींदारों के बीच चमारों को लेकर एक काव्यात्मक मुहावरा प्रचलित था —

*'भादों भैसा चइत चमार-इनसे कबहूँ लगै न पार'*

इस निरादरपूर्ण अमानवीय अभिव्यक्ति में चमारों की पेट भरकर खाने की खिल्ली उड़ाई गई थी। उपर्युक्त उक्ति से यह भी प्रकट होता है कि भारत का सवर्ण समुदाय चमारों को भूखे पेट देखना ही ज्यादा पसंद करता है। हाँ, यह भी अवश्य परिवर्तन आया कि चैत आते ही अकाल दौरान बंद शादी-विवाह के समारोह एक बार फिर पुनः जाग्रत हो गए। हल्दी की रश्म तथा 'मटमंगरा' के गीत दलित बस्तियों में गूँजने लगे। ऐसे अवसरों पर —

*'सोने की थारी में जेवना परोसो रामा,*

*जेवना ना जेवै हमार बलमा'*

यह एक अत्यंत प्रचलित लोकगीत हुआ करता था, जिसे मटमंगरा से लेकर शादी के दिन तक लगातार गाया जाता था। इस दौरान दलितों की झोंपड़ियों की दीवारों पर कोहबर कलाकृतियाँ विभिन्न रंगों में उभड़कर अपना एक अलग ही सौन्दर्य बिखरने लगती थीं। दीवार पर गेरू तथा हल्दी से जो पेंटिंग की जाती थी, उसे कोहबर कहा जाता था। ऐसी कलाकृतियों में केले का पेड़, हाथी, घोड़े, औरत, धनुष-बाण आदि शामिल होते थे। इन कलाकृतियों को 'कोहबर लिखना' कहा जाता था। चिट्ठी की तरह कोहबर लिखने के लिए भी गाँव वाले मेरी ही तलाश में रहते थे। अतः मैं जब तक गाँव में रहा, शादी किसी के घर हो, कोहबर मैं ही लिखता रहा। एक विशेष बात यह थी कि इन कोहबर कलाकृतियों का प्रचलन सवर्ण जातियों में नहीं था। इन परम्पराओं से जाहिर होता है कि सदियों से चला आ रहा दलितों का यह बहिष्कृत समुदाय एक अलौकिक कला एवं संगीत का न सिर्फ संरक्षक रहा, बल्कि उसका वाहक भी है। अशिक्षा के कारण लिपि का ज्ञान न होने के कारण दलित लोग संभवतः भारत के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अभिव्यक्ति के लिए कोहबर पेंटिंग का सहारा लिया था। शादी-विवाहों के इन अवसरों पर भाँड़ मंडलियों या नौटंकियों का आयोजन दलितों के बीच एक आम बात थी। इन अत्यंत आकर्षक मंडलियों या नौटंकियों में नाटक से लेकर गायक, तबलची, अभिनेता, स्वांग आदि कोई प्रोफेशनल व्यक्ति नहीं, बल्कि यही अधपेटवा गुजारा करने वाले

हरवाहे हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर एक सिद्धहस्त कलाकार के रूप में उनकी प्रस्तुति से सदियों पुराने उनके दुःख-दर्द कुछ समय के लिए हवा में उड़ जाते थे। मेरे ननिहाल तरवां के एक चचेरे मौसा थे, जो एक बड़े हाजिरजवाब स्वांग (यानी मसखरे) थे। इन भाँड़ मंडलियों में वे सामाजिक कु-रीतियों पर लोकशैली में तरह-तरह के व्यंग द्वारा प्रस्तुति को बहुत ही मार्मिक बना देते थे। उनका एक गीत मुझे आज भी स्मरण होते ही रोमांचित कर देता है जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

‘हरिजन जाति सहै, दुख भारी हो।  
हरिजन जाति सहै, दुख भारी ॥  
जेकर खेतवा दिन भर जोतली,  
ऊहै देला गारी हो, दुख भारी  
हरिजन जाति सहै, दुख भारी हो ॥’

इसी तरह बालविवाह जैसी कुरीतियों पर एक विरहा शैली में बड़ा ही लोकप्रिय गीत गाया जाता था, जिसकी इन पंक्तियों में बहुत गूढ़ तथ्य छिपे रहते थे, जैसे —

‘बाबा विदा करौ लं लरिका क मेहरिया  
रहरिया में बाजै घुंघरू ॥’

उपर्युक्त पंक्ति में छिपा गूढ़ रहस्य यह है कि गाँवों में अरहर के साथ उस जमाने में हमेशा सनई की भी फसल मिलाकर तैयार की जाती थी। सनई से पटसन बनता था तथा उसके फूल का साग बहुत स्वादिष्ट होता था। इसमें मूँगफली जैसी सैकड़ों फलियाँ लग जाती थीं, जिनके अंदर तीसी की तरह बीज भरे रहते थे। सनई की ये फलियाँ जब पककर सूख जाती थीं, तो उनके तने जरा भी किसी चीज के स्पर्श से हिल जाते तो यकायक इनके पूरे पेड़ से सैकड़ों घुंघरू जैसी खनक गूँज उठती थी। उपर्युक्त लोकगीत में छिपा हुआ रहस्य यह है कि बालविवाह से उत्पन्न कुरीति के कारण बालक दूल्हे की जवान पत्नी को उसका ससुर अरहर और सनई की संयुक्त खड़ी फसल के बीच से जाने वाले रास्ते से विदा कराकर ले जा रहा है। अतः सामाजिक रूप से अमान्य व्यवहार के स्पर्श से गहन फसल के बीच सनई के पौधों से घुंघरू की गूँजती आवाजों से सारा रहस्य उजागर हो जाता है। ‘गीत गोविन्दम्’ में जयदेव द्वारा वर्णित कृष्ण के शारीरिक स्पर्श से राधा के पैरों में बंधी पायल के खनक जाने से जो रहस्य खुल जाता है, उससे कहीं ज्यादा सौन्दर्यशास्त्रीय रहस्य इन अधपेटवा दलितों की सनई से उजागर हो जाता है। इस प्रकरण में सनई की फलियाँ राधा के पायल से कहीं ज्यादा खनकती नजर आती हैं। ऐसे ही पति के बूढ़े होने की शिकायत करती युवती का विरह इस लोकगीत में प्रस्फुटित हो जाता था —

‘कइसे सपरी हो भैया कइसे सपरी  
मीलल हमके बूढ़वा भतार,  
भैया कइसे सपरी,  
होइहैं कइसे बेड़ा पार  
भैया कइसे सपरी ॥’

इसी प्रकार इन नाच मंडलियों में दलित समाज में किसी भी नई चीज को अंधविश्वासों के दबाव में न स्वीकारने की भावना भी परिलक्षित होती रहती थी। उदाहरण के लिए जब सरकार अंग्रेजी डॉक्टरों को ग्रामीण क्षेत्रों के कस्बाई दवाखाने भेजने लगी तो दलित उनसे इलाज कराने में हिचकते थे। इसलिए वे अपने लोकगीतों में इन डॉक्टरों का मजाक अपनी बीमार बकरियों के माध्यम से उड़ाने लगते थे। जैसे —

‘हे डकडर बाबू बेमार भइली बकरी।  
संझिया क चरि के अइली खेतवा में लतरी ॥  
हे डकडर बाबू बेमार भइली बकरी ॥’

इन लोककला मंडलियों में लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, सुल्ताना डाकू आदि जैसे नाटकों का मंचन भी दलित कलाकार बहुत आकर्षक ढंग से करते थे। इन सभी नाटकों का अंत एक विचित्र समापन शैली में होता था। मूल नाटक के खत्म होते ही मुख्य कलाकार मंच पर आकर अपने दोनों हाथों को कमर पर रखकर दाएँ-बाएँ हिलाते हुए नृत्य शैली में 'मोहे ले चल रे-मोहे ले चल' गाने लगता था। कुतूहलवश एक के बाद एक सारे कलाकार बारी-बारी से मंच पर आते और सभी वैसा ही करना शुरू कर देते थे। ऐसा लगता था कि 'मोहे ले चल रे-मोहे ले चल' कोई छूत की बीमारी थी जो सबको लग जाती थी। इतना ही नहीं, अंततोगत्वा दर्शक भी 'मोहे ले चल रे-मोहे ले चल' गाने लगते थे। इस तरह, इस लोककला में दर्शक विलुप्त हो जाते थे। इस कड़ी में बरात प्रस्थान के समय एक खास किस्म का नृत्य किया जाता था, जिसे 'दुक्कड़' कहते थे। यह बहुत शक्तिशाली नृत्य होता था। इसमें सिर्फ दो कलाकार एक दफलावादक तथा दूसरा दुक्कड़ची नर्तक होता था, दफले की जोरदार लक्कड़ ध्वनि पर नाचने वाला व्यक्ति गोलाकार आवृत्त में नाचते हुए तरह-तरह की कलाबाजियाँ दिखाता रहता था। इन कलाबाजियों में उसका मुकाबला दफलची स्वयं करता था। मेरे दादा के छोटे भाई के बड़े बेटे सुन्नर काका सिद्धहस्त दुक्कड़ची थे। ऐसे ही एक नाच हुआ करता था 'हूड़क' की ध्वनि पर कहरउवा। हूड़क डमरू की आकृति वाला उससे काफी बड़ा वाद्य होता था जिसे कलाकार अपनी बाँह के नीचे काँख में दबा लेता था तथा उसे अपनी केहुनी से बजाता था। यह बड़ गजब का वाद्य होता था जिससे बहुत सुरीली कहरवा शैली में आवाज निकलती थी। वादक स्वयं जो कुछ गाता था, उसके बीच-बीच में 'दहि दहि दे-दहि दहि दे' नामक तकियाकलाम भी ठोक देता था। हूड़क वाले का 'दहि दहि दे' अत्यंत आकर्षक होता था। उस जमाने में भी इस शैली वाले कलाकार बहुत कम मिलते थे। आज के जमाने में तो वे सम्भवतः विलुप्त ही हो गए हैं। मैं इन नाच मंडलियों तथा लोककलाओं के पीछे एक तरह से पागल-सा हो गया था। अतः दूर-दूर तक गाँवों में मैं रात भर घूम-घूमकर इन्हें देखने-सुनने जाया करता था। अक्सर मैं इन नाचों को देखने के बाद देर रात हो जाने के कारण उन्हीं गाँवों के मैदानों तथा खलिहानों में भूसा फैलाकर बरातियों के साथ सो जाता था तथा सुबह होते ही घर वापस आता था, जिसके कारण घर पर मुझे भीषण गालीयुक्त अपमान से जूझना पड़ता था। एक रोचक बात यह थी कि इस तरह की सारी लोककलाएँ सिर्फ दलितों के बीच ही केन्द्रित थीं। सवर्ण जातियों में किसी तरह की लोककला मौजूद नहीं होती थी। शायद यही कारण था जिसके चलते इन कलाओं के साथ जातिसूचक विशेषण जुड़ गए थे जैसे — चमरउवा नाच या गाना, धोबियउवा नाच, कहैरउवा धुन, गोड़इता नाच (हूड़क के साथ) आदि।

### शब्दार्थ-टिप्पणी

हेरतअंगेज आश्चर्य जनक जरई धान के बीज जिसमें अंकुर फूटे हों सिरकी सरकंडा खानाबदोश गृहहीन अजनबी अपरिचित, अनजान

### मुहावरे

मातम छा जाना शोकमग्न होना

### स्वाध्याय

#### 1. उत्तर दीजिए :

- (1) किस भाषा के ज्ञान ने लेखक को अन्य ग्रह का मानव बना दिया था ?
- (2) हेंगा या पाटा कैसे बनाया जाता था ?
- (3) लेखक को अति निर्दयी पापी होने की अनुभूति क्यों हुई ?
- (4) दलित बस्ती क्यों जीवंत हो उठी थी ?
- (5) नट लोग गाँव में क्या करते थे ?



2. उत्तर लिखिए :

- (1) कृषि प्रदर्शनी के बारे में बताइए।
- (2) दलित बस्ती में खुशी का माहौल क्यों था ?
- (3) कोहबर के विषय में लेखक ने क्या बताया है ?
- (4) दलितों के दुःख-दर्द का वर्णन पाठ के आधार पर कीजिए।

योग्यता-विस्तार

- 'मुर्दहिया' आत्मकथा ढूँढ़कर पढ़िए।
- 'अस्पृश्यता सामाजिक बुराई है' - विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।



## जनसंचार माध्यम : परिचय

‘संचार माध्यम’ जनसंचार का महत्वपूर्ण स्रोत है। जनसंचार माध्यम अर्थात् जन-जन तक घटनाओं, विचारों और नित्य की गतिविधियों की जानकारी पहुँचानेवाला माध्यम? ‘संचार माध्यम’ शब्द ‘संचार’ और ‘माध्यम’ शब्दों के योग से बना है। संचार से अभिप्राय संप्रेषण की संपूर्ण प्रक्रिया से है। जिसमें उद्देश्यपूर्ण और सार्थक अनुभवों, व्यवहारों और आवश्यकताओं का परस्पर आदान-प्रदान होता है। आदान-प्रदान की प्रक्रिया व्यक्ति के व्यवहार को परिमार्जित और प्रभावित करती है।

इस प्रकार संचार माध्यम संप्रेषक और श्रोता को जोड़नेवाला साधन है। इस माध्यम ने सारे विश्व की भौगोलिक दूरियाँ काफी कम कर डाली हैं। जिससे व्यक्ति समग्र विश्व मानव समाज के परिप्रेक्ष्य में अपनी सोच को नई दिशा देने लगा है? अतएव प्रिन्ट और इलैक्ट्रॉनिक जन माध्यमों ने व्यक्ति में विश्व नागरिक बनने का स्वप्न अंकुरित कर दिया है। जनसंचार माध्यम के प्रमुख साधन हैं - समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, इन्टरनेट आदि।

व्यक्ति स्वयं को व्यक्त करना चाहता है और आसपास की हलचलों के विषय में जानना चाहता है। संचार माध्यम की भूमिका इसमें बहुआयामी है। संचार माध्यम हमारे भावों, विचारों और बहुमुखी सर्जनात्मक गतिविधियों को व्यापक जन समूह तक पहुँचाने का कार्य करता है। व्यक्ति से व्यक्ति को जोड़ता है। व्यक्ति, समाज, देश और राष्ट्र को विश्व समाज से जोड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति और विश्व समाज एक दूसरे के पूरक बनने जा रहे हैं।

मनुष्य की संचार यात्रा में नये-नये माध्यम शामिल होते जा रहे हैं। ‘संचार’ की इस दृष्टि से विराट भूमिका है। संचार सीधे विकास से जुड़ा है। वह देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में निर्णायक भूमिका निभाता है। संचार का उद्देश्य है सामाजिक परिवर्तन की मानसिकता को तैयार करना।

### संचार का आरंभिक काल

संचार का प्राथमिक माध्यम ‘चित्र’ था। चित्र अनुभवों की अभिव्यक्ति के माध्यम बने। आदिमानव के गुफा चित्र इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। मानव शिकार जीवन से कृषि जीवन तक पहुँचा तो संचार बोध ने रंग, नृत्य, संगीत और कथाओं को जन्म दिया। संचार यात्रा में ‘लिपि’ के आविष्कार ने नई दिशा दी। नये रंग और भाव, कलाएँ उभरने लगीं। अजन्ता-एलोरा की चित्रकला और मूर्तिकला संचार क्षमता के सशक्त माध्यम बने। कर्नाटकी संगीत और हिन्दुस्तानी संगीत ने दक्षिण और उत्तर भारत को जोड़ा। इस प्रकार भरतनाट्यम, कथक, कुचिपुड़ी, कथकली, मणिपुरी, ओडिसी, यज्ञगान-नृत्यों ने सम्पूर्ण भारत को भावनात्मक नृत्य सांस्कृतिक दृष्टि से एकजुट बनाया। इस प्रकार महाराष्ट्र का तमासा, उत्तरप्रदेश की नौटंकी, गुजरात की भवाई, राजस्थान की फड़, कबीर की साखियाँ आदि ने लोक संचार माध्यम के रूप में कार्य किया। कीर्तन, कव्वाली, कठपुतली, स्वाँग, बाइस्कोप आदि इसी परम्परा के संचार माध्यम हैं। ग्रामीण समाज में जन-जागरण के ये सशक्त माध्यम सिद्ध हुए हैं।

नगर और ग्रामीण समाज में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय उत्सव रचनात्मक तथा प्रभावशाली जनसंचार सिद्ध हुए हैं। जैसे- होली, दशहरा, ईद, गणेश उत्सव, नवरात्रि, दुर्गापूजा, क्रिसमस, वैशाखी, पोंगल आदि।

### संचार माध्यमों के आधुनिक रूप

समाज के विकास के साथ-साथ संचार प्रक्रिया वैविध्यपूर्ण और व्यापक होती चली गई। औद्योगिक क्रान्ति और नये आविष्कारों ने संचार माध्यमों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। पंद्रहवीं शताब्दी में प्रिंटिंग मशीन-आविष्कार और पुस्तक प्रकाशन-इसका प्रारंभिक दौर था। सत्रहवीं शताब्दी में अखबार अस्तित्व में आया। जिसने सूचनाओं के आदान-प्रदान को नई गति प्रदान की। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, शासन-व्यवस्था हेतु नए-नए द्वार खोल दिए जन हृदय लोकतन्त्र, समानता, स्वतन्त्रता और न्याय के बीज बोने आरंभ कर दिए। प्रिन्ट माध्यम ने जनता को नई-दृष्टि और स्वप्न दिए। जन-जन तक समाचार पत्र पहुँचते ही नई चेतना अंकुरित होने लगी। सार्वजनिक सवालियों पर चर्चा शुरू हुई। अन्याय के सामने क्रान्ति हुई। पुस्तकों ने भी उसमें क्रान्तिकारी भूमिका निभाई।

लोकतन्त्र में जनसंचार का विशेष महत्त्व है। निर्वाचित जन प्रतिनिधि क्या कर रहे हैं ? सरकार की नीतियाँ जन विरोधी हैं या हितकारी ? समाज के सामने कौन-सी चुनौतियाँ हैं ? अर्थात् वैश्विक स्तर पर प्रत्येक घटना देश, समाज और व्यक्ति को प्रभावित कर रही है। ऐसी स्थिति में प्रिन्ट और इलैक्ट्रॉनिक जन माध्यमों ने व्यक्ति में वैश्विक भावना को जन्म दिया।

### आधुनिक जनसंचार माध्यमों के प्रमुख प्रकार

**1. मुद्रण माध्यम ( प्रिन्ट मीडिया ) :** इस माध्यमों में मुद्रित पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ एवं जनोपयोगी मुद्रित सामग्री का समावेश होता है। मुद्रण माध्यम को जनसंचार माध्यमों के प्रवर्तक के रूप में देखा जा सकता है।

**2. प्रसारण माध्यम ( रेडियो ) :** यह श्रव्य प्रसारण माध्यम है। देश-विदेश में इसका जाल बिछा हुआ है। प्रसारण माध्यम के प्रारंभिक रूपों में टेलीफोन, टेलीग्राफ, चलती-फिरती एवं स्थिर फोटोग्राफी तथा साउन्ड रिकार्डिंग व्यापक हुए, बाद में इन माध्यमों की प्रौद्योगिकी अस्तित्व में आई।

**3. चलचित्र ( फिल्म ) :** चलचित्र माध्यम की शुरुआत 19वीं सदी में हुई। समाज में मनोरंजन तथा जन-जागरण का यह एक सशक्त माध्यम सिद्ध हुआ। 'प्रदर्शन व्यापार' की शुरुआत हुई। फिल्म स्टूडियो और सिनेमाघरों का निर्माण हुआ। विश्व में बॉलिवुड (भारत) और हॉलिवुड (अमरीका) फिल्म निर्माण के प्रमुख केन्द्र हैं।

**4. रिकार्ड संगीत माध्यम ( रिकार्डेड म्यूजिक ) :** इसका आविष्कार 1880 ई. के आसपास हुआ। इसने सारे विश्व में युवावर्ग को अधिक आकर्षित किया। इस माध्यम के अन्तर्गत - फोनोग्राम, रिकार्ड प्लेयर, ऑडियो कैसेट प्लेयर, काम्पेक्ट डिस्क प्लेयर्स, वीडियो कैसेट रिकार्डर (वी.सी.आर.) आदि प्रमुख हैं।

**5. नव इलैक्ट्रॉनिक माध्यम ( दूरदर्शन ) :** दूरसंचार और सूचना तंत्र पर आधारित जनमत और जनछवि को प्रभावित करनेवाला सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। इसकी पहचान टेलीविजन के रूप में प्रसिद्ध है। भारत में 'दूरदर्शन' के नाम से यह माध्यम लोकप्रिय है। पहले टेलीविजन माध्यम मात्र सरकारी क्षेत्र तक सीमित था। अब अनेक निजी चैनल इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। इस माध्यम ने सारे विश्व को हमारे घरों में समेट दिया है। विश्व की पल-पल की सूचनाएँ इस माध्यम से सुलभ होती रहती हैं। विश्व ज्ञान-विज्ञान हेतु यह माध्यम वरदानरूप सिद्ध हुआ है।

**6. इन्टरनेट :** यह माध्यम टेलीविजन से अधिक तेजगति का होने से संचार की दुनिया में इसने काफी हलचल पैदा की है। पत्रकारिता के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र विधा के रूप में पहचान बना चुका है। आज ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता, पोर्टल पत्रकारिता जैसे शब्द मीडिया में बहुप्रचलित हैं। विश्वभर की पत्र-पत्रिकाएँ एवं प्रसिद्ध पुस्तकें इन्टरनेट पर उपलब्ध हैं। सर्वजन सुलभ न होने से ये माध्यम रेडियो तथा टेलीविजन जैसे लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं, इलैक्ट्रॉनिक तथा कम्प्यूटर इसके मुख्य वाहक हैं।

**7. कनवरजेंस ( अभिसरण माध्यम ) :** कनवरजेंस आधुनिक जनसंचार माध्यम के रूप में प्रचलित हुआ है। यह माध्यम कई विविधतापूर्ण माध्यमों का 'पुंज' या 'समायोजन' है। जिसमें आपके और टेलीविजन के बीच दो तरफा संवाद स्थापित हो सकेगा। आपके कम्प्यूटर और मोबाइल फोन में एक साथ कई प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हो पाएँगी।

नित नई बदलती प्रौद्योगिकी ने जनसंचार माध्यमों में अनंत संभावनाएँ पैदा कर दी हैं।

### समाचार पत्र

समाचार पत्र वर्तमान जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है। यह हमें विश्व की छोटी-बड़ी घटनाओं का प्रामाणिक ब्यौरा और जानकारी देता है। इस दृष्टि से उसकी भूमिका मानवता का दैनिक इतिहास उल्लेखित करने में महत्त्वपूर्ण है।

### समाचार पत्र : उद्भव और विकास

भारत में पहला छापाखाना कोलकाता में सन् 1775 में स्थापित हुआ। 1780 में अंग्रेजी में एक गजट निकाला गया। सन् 1818 में पहला बंगला अखबार 'दिग्दर्शन' निकला। हिन्दी का प्रथम समाचार 'उदंत मार्टड' 30 मई, 1826 कोलकाता से प्रकाशित हुआ। बाद में वाराणसी, आगरा, लखनऊ, मुंबई और प्रयाग से प्रकाशित होने लगे। सन् 1854 में हिन्दी का प्रथम दैनिक समाचार पत्र 'सुधा वर्षण' कोलकाता से प्रकाशित हुआ। सन् 1868 में अंग्रेजी शासन के कोप का शिकार बनने से बंद हो गया। आगे चलकर 'समाचार दर्पण', 'समाचार चन्द्रिका', 'ज्ञानदीपक', 'मालवा अखबार', 'हिन्दी प्रदीप', 'सरस्वती',

‘नवप्रभात’, ‘भारत मित्र’, ‘देवनागरी प्रचारक’, ‘बनारस अखबार’ आदि अखबार एवं पत्रिकाएँ समाचारों के साथ ही ज्ञान, जागृति, प्रगति, साहित्य आदि द्वारा राष्ट्रीय एवं जातीय चेतना, युगबोध और आर्थिक स्थिति-विवरण द्वारा जन मानस को प्रभावित करने लगे थे।

सन् 1868 में काशी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ‘कविवचन सुधा’, का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पत्रिका साहित्यिक थी, साथ ही राजनीतिक और सामाजिक सुधार में उन्मुख थी।

20वीं शताब्दी का प्रारंभ हिन्दी पत्रकारिता के विकास और विस्तार का काल था। राजनीतिक नेतृत्व, पत्रकारिता, सामाजिक सुधार की दिशा में बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, मुंशी प्रेमचन्द, पण्डित मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपतराय जैसे राष्ट्रीय नेता और साहित्यकार एकजुट हो संलग्न हो गये थे। संकुचित दायरों से ऊपर उठ, ये राष्ट्रीय भावना और एकता के लिए प्रेरणादायी भूमिका अदा कर रहे थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई परन्तु उच्च उद्देश्यों का स्थान व्यावसायिकता ने ले लिया। मुद्रण प्रौद्योगिकी ने नई चुनौतियों को जन्म दिया। हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, पंजाब केसरी, अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा आदि समाचार पत्रों से जो अपेक्षाएँ थीं वे नहिं वत् पूरी हुई, यद्यपि हिन्दी पाठकों में वृद्धि हुई है।

### समाचार पत्र के विभिन्न अंग

संपादक के निर्देशन में सहायक संपादक, समाचार संपादक, विशेष संवाददाता, संवाद दाता तथा उपसंपादक अखबार की सामग्री एकत्र करते हैं। अन्य अनेक विभाग अलग-अलग पृष्ठों को प्रस्तुत करने का दायित्व निभाते हैं।

अखबार का केन्द्र बिन्दु मुख्य डेस्क होता है जिस पर प्रथम पृष्ठ प्रस्तुत करने का दायित्व होता है। संपादक के निर्देशन में डेस्क का प्रमुख मुख्य उपसंपादक होता है। राष्ट्रीय महत्त्व की खबरें समाचार संपादक के माध्यम से इसी डेस्क पर आती हैं। खबरों की गुणवत्ता के आधार पर उसे प्राथमिकता दी जाती है। मुख्य उपसंपादक एवं सहयोगी संपादक संपादन के बाद खबरों का तथ्य, भाषा और शैली की दृष्टि से उसका शीर्षक निश्चित करते हैं तब छपने की प्रक्रिया में भेजा जाता है।

### समाचार क्या है

समाचार अर्थात् पर्याप्त संख्या में लोग जिसे जानना चाहें, परन्तु वह सुरुचि एवं प्रतिष्ठा का निर्वाहक होना चाहिए। कुछ पत्रकारों के अनुसार कोई भी घटना जिसमें मानव मात्र की दिलचस्पी हो, वह समाचार है। अर्थात् अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामयिक बात में होती है, वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है जिसमें अधिकतम लोगों की रुचि हो।

प्रत्येक पत्रकार के लिए समाचार की इन केन्द्रीय विशेषताओं की जानकारी की समझ ही ‘समाचार बोध’ है जिसे ‘न्यूज सेंस’ भी कहते हैं। ‘समाचार बोध’ की विशेषता के आधार पर समाचार संपादक, मुख्य उपसंपादक खबर को प्राथमिकता देता है और उसके स्वरूप को तय करता है। समाचार बोध के आधार उनके प्रकाशन का स्थान और स्वरूप तय होता है।

### समाचार संपादक

समाचार संपादक का दायित्व विभिन्न डेस्कों द्वारा चयन किए गए समाचारों के लिए होता है। वह प्रत्येक पृष्ठ की सामग्री के बीच समन्वय का काम करता है। विशेष संवाददाता द्वारा दी गई खबरों के विषय में निर्णय लेता है। उसका मुख्य दायित्व है प्रथम पृष्ठ के मुख्य समाचार के शीर्षकों पर ध्यान देना। विभिन्न पालियों के उपसंपादकों के कार्य का विभाजन, संवाद समिति की खबरों का समन्वय, प्रशासकीय जिम्मेदारी तथा संस्करण का समय पर छपना आदि प्रमुख कार्य हैं।

### विशेष संवाददाता

नियमित खबरों से भिन्न समाचार लाने का काम विशेष संवाददाता का होता है। केन्द्र सरकार के मंत्रालयों और विभिन्न राज्यों की निर्णायक गतिविधियों की खबरें लाना मुख्यतः विशेष संवाददाता का दायित्व होता है।

संसद-समाचार भी प्रायः विशेष संवाददाता लिखता है। समाचार ब्यूरो में भी विशेष संवाददाता ही काम करते हैं। विशेष संवाददाता खबर लिखकर ब्यूरो चीफ को देता है। ब्यूरो चीफ निरीक्षण के बाद मुख्य डेस्क पर संपादन तथा प्रकाशन के लिए भेज देता है।

## संपादन के नियम

उपसंपादकों को समाचार संपादन करते हुए आवश्यक नियमों का पालन करना होता है।

सबसे अधिक समाचार की स्पष्टता और भाषा की सरलता पर ध्यान देना पड़ता है। आम आदमी खबर को समझ सके, इसका ध्यान रखना पड़ता है।

खबर की स्पष्टता के लिए वह प्रत्येक खबर में छः प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश करता है। जिसे अखबार की दुनिया में 'छःककार' कहा जाता है। 'छःककार' हैं-क्या, कब, कहाँ, क्यों, कौन और कैसे ? पाठक खबर में क्रमशः इन प्रश्नों का उत्तर पाना चाहता है ? खबर में इन ककारों का उत्तर न होने से खबर को सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। खबर की घटना का वृत्तांत लिखने का क्रम होता है : क्या घटना हुई ? कब हुई ? कहाँ हुई ? क्यों हुई ? कौन उसमें शामिल था ? अंत में घटना कैसे घटी ? उदाहरणार्थः

“मुजफ्फरपुर, 23 दिसम्बर। वैशाली एक्सप्रेस के तीन डब्बे पटरी से उतर गए जिससे 30 यात्री बुरी तरह घायल हो गए हैं। दुर्घटना दिन में एक बजे रामदयाल नगर स्टेशन के पास हुई। घने कुहरे की वजह से ड्राइवर को सिग्नल के संकेत का पता नहीं चला था। घायलों में दस महिलाएँ और बारह बच्चे हैं। घायलों को नगर के सदर अस्पताल में भर्ती करा दिया गया है।”

रेलवे प्रवक्ता ने बताया कि धुंध में सिग्नल का संकेत न देखकर ड्राइवर ने अतिरिक्त सावधानी बरतते हुए गाड़ी रोकने की पूरी कोशिश की। इसके बावजूद तीन डब्बे पटरी से उतर गए। इसी स्टेशन के पास पिछले साल भी कुहरे की वजह से एक भारी रेल दुर्घटना होते-होते बची थी। उस समय पटरी पर किसी असामाजिक तत्व ने बड़े पत्थर रख दिए थे जिसे ट्रेन का ड्राइवर दूर से नहीं देख पाया था।...

खबर के प्रथम हिस्से में छहों ककारों - क्या ? रेल दुर्घटना, कब ? 23 दिसम्बर से एक दिन पहले, कहाँ ? रामदयाल नगर स्टेशन, क्यों ? सिग्नल संकेत का पता न लगने की वजह से, कौन महिलाएँ और बच्चे - उत्तर मिल जाते हैं। इनमें आमुख, शीर्षक और लीड प्रमुख हैं।

**आमुख :** समाचार के आरंभिक भाग को आमुख कहते हैं। जिसमें अधिकतम ककारों का उत्तर होता है। आमुख पढ़ने से पूरी खबर की झलक मिल जाती है। अर्थात् चार-पाँच पंक्तियों में खबर का सार होना चाहिए।

'आमुख' को अंग्रेजी में इन्ट्रोडक्सन कहते हैं। 'इन्ट्रो' उसका संक्षिप्त रूप है। कुछ लोग इसे मुखड़ा भी कहते हैं। आमुख समाचार का केन्द्रबिंदु होता है। खबर की विषयवस्तु को ध्यान में रखते हुए प्रमुखतः तथ्यात्मक और भावनात्मक आमुख लिखे जाते हैं। छःककारों के आधार पर तथ्यात्मक आमुख लिखे जाते हैं। यदि खबर संवेदनात्मक है तो भावात्मक आमुख भी लिखे जाते हैं। जैसे श्रीमती इन्दिरा गांधी की मृत्यु पर राजस्थान पत्रिता (4 नवम्बर 1984) में तथ्यात्मक आमुख-

नई दिल्ली, 3 नवंबर। श्रीमती इंदिरा गांधी जो 16 वर्ष तक देश की भाग्य-विधाता रहीं, उनका आज यमुना किनारे वैदिक मंत्रोच्चार के साथ अंतिम संस्कार कर दिया गया।

नवभारत टाइम्स ने श्रीमती गांधी के निधन पर भावात्मक आमुख लिखा -

“नई दिल्ली। मर्माहत देश ने भरे हुए दिल और छलकती आँखों से अपनी लोकप्रिय नेता को अलविदा कहा।”

## शीर्षक

शीर्षक खबर का प्राण होता है। आमुख के आधार पर शीर्षक बनाया जाता है। छः ककारों के अन्तर्गत दिए गए उदाहरण के आधार पर प्रभावी शीर्षक हो सकता है।

**वैशाली एक्सप्रेस पटरी से उतरी : 30 घायल**

शीर्षक बोलचाल की भाषा में हो, मुहावरे का प्रयोग उसे अधिक आकर्षक बना देता है। संक्षिप्तता उसका बहुत बड़ा गुण है।

**लीड :** अखबार के पहले पन्ने पर कौन-से समाचार प्रमुख अथवा 'लीड' होंगे, इसका चयन मुख्य संपादक करता है। 'लीड खबर' वही होगी जो राष्ट्रीय जीवन में घटनेवाली घटनाओं की परम्परा में नई हो तथा जिसमें अधिकतम लोगों की रुचि हो।

समाचार पत्र के पहले पन्ने पर फोटो का चयन भी कई बार 'लीड' से जुड़ा हुआ होता है। अखबार का अपना फोटो विभाग तथा कार्टूनिस्ट होता है जो तात्कालिक राजनीतिक-सामाजिक स्थिति को उजागर करते हैं।

प्रथम पृष्ठ के बाद अखबार का दूसरा पन्ना उस नगर या महानगर की खबरों का होता है, जहाँ से वह निकलता है। महानगर संस्करण मूलतः संवाददाता की खबरों के आधार पर निकलता है। अखबार में नगर या महानगर का एक डेस्क भी होता है। उसका दायित्व प्रधान मुख्य संपादक निर्वाह करता है।

अच्छे संवाददाता की विशेषता होती है कि वह आम जन-जीवन से जुड़ी खबरें लाता है। संवाददाताओं के कार्यक्षेत्र बँटे होते हैं। जैसे अपराध क्षेत्र, शिक्षा, राजनीति, नगरपालिका आदि।

### समाचार के प्रमुख स्रोत

समाचार के प्रमुख स्रोत हैं - मन्त्रालय, अस्पताल, पुलिस मुख्यालय, प्रेस विज्ञप्ति, संवाद समितियाँ। इनके अलावा विभिन्न आयोजनों के प्रमुख संवाददाता सम्मेलन कर, समाचार की जानकारी देते हैं।

### संवाददाता सम्मेलन

प्रेस सम्मेलन का आयोजन सरकारी प्रमुख मन्त्रालय, राजनीतिक दल, पुलिस आयुक्त तथा विभिन्न संस्थाओं के प्रधान आयोजित करते हैं। संवाददाताओं को बुलाकर खबर देते हैं। संवाददाता प्रश्न पूछकर, उत्तरों के आधार पर खबर बनाता है।

### संवाद समितियाँ

संवाददाता समाचार पत्र के लिए खबरें एकत्र करते हैं। जो महत्त्वपूर्ण खबरें संवाददाताओं से छूट जाती हैं, उन्हें समितियों से ले लिया जाता है। हमारे देश में 'यूनीवार्ता' और 'भाषा' - हिन्दी की दो प्रमुख समाचार समितियाँ हैं। अंग्रेजी में 'यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यू.एन.आई.)' तथा 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पी.टी.आई.)' हैं।

नगर के पन्ने में प्रायः स्थानीय जन-जीवन की धड़कनें होती हैं। अन्तरराष्ट्रीय खबरों का भी एक विशेष पन्ना होता है। जिसके लिए अलग डेस्क होता है जो विदेशों में नियुक्त अपने संवाददाता और संवाद समितियों के आधार पर पृष्ठ का निर्माण करते हैं। अखबार में एक प्रादेशिक डेस्क भी होता है, जिसमें प्रमुख नगरों में नियुक्त संवाददाताओं की खबरें संपादित कर दी जाती हैं।

### संपादकीय पृष्ठ

एक अच्छा संपादक तमाम दबाओं के बावजूद अखबार का संपादन जनहित में करता है। आम पाठकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए उन्हें विश्व की नवीनतम सूचनाओं एवं विचारों से समृद्ध करता है। संपादकीय बैठक में देश-विदेश की ताजा घटनाओं पर विश्लेषण के बाद संपादकीय विषय तय होने पर संपादक उन्हें विभिन्न सहायक संपादकों से लिखने के लिए कहता है।

**संपादकीय** संपादकीय में पिछले दिन घटी प्रमुख राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर वैचारिक टिप्पणी होती है। उसमें घटनाओं के मर्म का विश्लेषण और आगामी प्रभाव का विवेचन किया जाता है। संपादकीय के अलावा उसी पृष्ठ पर प्रासंगिक विषय पर प्रमुख लेख भी प्रकाशित किया जाता है। इसी पृष्ठ पर मनोरंजनार्थ स्तंभ, पाठकों के पत्र भी होते हैं। पाठकों के पत्र संवाद का काम करते हैं, जिससे समाचार पत्र जीवन्त बनता है।

### डायरी

'डायरी' में दैनिक कार्यों का विवरण होने से हिन्दी में इसे 'दैनंदिनी' कहा जाता है। डायरी को जीवन की खुली पुस्तक माना जाता है। डायरी शैली का प्रयोग कहानी तथा उपन्यास विधा में भी किया जाता है। कितने ही समाचार पत्रों में धारावाहिक डायरी-स्तंभ दिया जाता है। जिसमें पाठकों की रुचि को केन्द्र में रखा जाता है। डायरी के रूप में लिखने से औत्सुक्य बना रहता है। घटित घटनाओं की जानकारी डायरी के रूप में देने से विश्वसनीयता बढ़ती है और औचित्य निर्वाह में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। डायरी में तथ्यात्मक एवं अन्तरंग विवरण होने से रोचकता और मार्मिकता बनी रहती है।

### फीचर

अखबार का अंतिम पृष्ठ अथवा संपादकीय पृष्ठ के बाद फीचर दिया जाता है। जिसमें बालवाड़ी, नारी जगत, फिल्म, कला, पुस्तकें आदि से संबंधित सामग्री होती है। 'फीचर' अंग्रेजी का शब्द है, इसका शाब्दिक अर्थ है आकृति, रूपरेखा, लक्षण

या विशेषता। अखबार में फीचर रोचक विषय पर मनोरंजक शैली में लिखे आलेख को कहते हैं। इनमें तथ्य एवं भावना का समन्वय होता है।

### रिपोर्टाज

‘रिपोर्टाज’ में तथ्यात्मक अनुशासन की अपेक्षा रिपोर्ट में भावनात्मक और ऐन्द्रिकता को प्रमुखता दी जाती है। यों रिपोर्टाज फीचर का समान धर्मी है। हिन्दी में फणीश्वरनाथ रेणु के बाद और सूखे से संबंधित वृत्तान्त रिपोर्टाज के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

### साक्षात्कार

फीचर पृष्ठ पर साक्षात्कार प्रमुखता से छापा जाता है। साक्षात्कार पढ़ने में पाठकों की विशेष रुचि होती है, उसमें महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सीधे मिलने का सुख प्राप्त होता है। साक्षात्कार मूलतः तीन प्रकार के होते हैं :

(1) साक्षात्कार में सीधे ही प्रश्नोत्तर होना। (2) बातचीत के आधार पर साक्षात्कार तैयार करना। तथा (3) फीचर, रिपोर्टाज और प्रश्नोत्तर का मिश्रण होना। तीसरे प्रकार का साक्षात्कार साहित्य के स्तर का होता है। इनमें व्यक्ति के विचार, व्यक्तित्व की विशेषताएँ, परिवेश और विचार साक्षात्कार द्वारा प्राप्त होते हैं। नवभारत टाइम्स में कुछ वर्ष पूर्व प्रथम पृष्ठ पर अटल बिहारी वाजपेयी, शिवराज पाटिल, इन्द्रजीत गुप्त आदि के ऐसे ही साक्षात्कार प्रकाशित हुए थे।

### वाणिज्य एवं खेलकूद जगत का पृष्ठ

अखबार के अंतिम दो पृष्ठ व्यापार एवं खेल जगत के होते हैं। शेरों की जानकारी, मण्डियों के भाव, उद्योग जगत आदि की विस्तृत खबरें होती हैं। इसी प्रकार खेल जगत की गतिविधियों के साथ खिलाड़ियों के आकर्षक चित्र और उनकी उपलब्धियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

### जनसंपर्क और विज्ञापन

अखबार में विज्ञापन तथा जनसंपर्क का परिचय महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अखबार विज्ञापनों से भरा होता है। जनसंपर्क अर्थात् व्यक्ति या संस्था द्वारा अपने पक्ष में वातावरण तैयार करने का सशक्त माध्यम। विधान-सभा, लोकसभा आदि के निर्वाचन के अवसर पर इनका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

व्यावसायिक संस्थान अपने उत्पादकों तथा कार्य कलापों को जनसंपर्क द्वारा व्यवसाय में वृद्धि करते हैं। अखबार टी.वी. चैनल तथा अन्य संचार माध्यमों में विज्ञापनों की भरमार इसीलिए अधिक दिखाई देती है। संचार माध्यमों के लिए विज्ञापन आय का सबसे बड़ा साधन है। कितने ही अखबार समाचार से अधिक विज्ञापनों के संकलन जैसे हो गये हैं। प्रेस आयोग की संस्तुति है कि पठनीय सामग्री और विज्ञापन अनुपात 60 और 40 का होना जरूरी है।

विज्ञापन प्रस्तुति मौलिक, आकर्षक, प्रभावी और सुरुचिपूर्ण हो जिससे उपभोगकर्ता उत्पादन खरीदने में रुचि ले सकें।

### रेडियो की दुनिया

रेडियो और टेलीविजन जनसंचार के प्रमुख इलैक्ट्रॉनिक माध्यम हैं। ये दोनों माध्यम विश्व में घटित घटनाओं के साथ ही जन-जन तक सूचना, शिक्षा और मनोरंजन पहुँचाते हैं।

### रेडियो : अर्थ और स्वरूप

रेडियो सर्वसुलभ, सस्ता और सुविधाप्रद श्रव्य माध्यम है। नेत्रहीनों के लिए वरदान, किसान-मजदूरों तथा आम जन को विश्व के साथ जोड़ने का सशक्त साधन है। बिजली हो या न हो तब भी सुना जा सकता है।

‘रेडियो’ उस यंत्र का नाम है जो रेडियो-संकेतों को प्राप्त कर श्रोताओं तक पहुँचाता है। अमेरिका में पहले इसे रेडियो टेलीग्राम कहते थे, बाद में रेडियो कहा जाने लगा।

‘रेडियो’ शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द ‘रेडियस’ से हुई है। जिसका तात्पर्य उस किरण या प्रकाश स्तंभ से है, जो आकाश में विद्युत चुंबकीय तरंगों द्वारा फैलती है। इन्हीं तरंगों द्वारा ध्वनि को एक जगह से दूसरी जगह भेजा जाता है। इन तरंगों की खोज 1886 ई. में जर्मन वैज्ञानिक हेनरिच हर्ट्ज ने की थी। इसीलिए विद्युत तरंगों की गति मापने के लिए किलो हर्ट्ज, मेगाहर्ट्ज प्रयुक्त होता है। रेडियो सेटों पर KHZ (किलोहर्ट्ज), MHZ (मेगाहर्ट्ज) आदि संकेत अंकित होते हैं।

## रेडियो : उद्भव और विकास

हर्ट्ज ने विद्युत तरंगों की खोज की; पर दूरसंचार में उपयोग कर बताया 1891 ई. में गुगलियो मार्कोनी ने। उन्हें इंग्लैंड के कार्नवाल क्षेत्र के पोलधू स्थान से अटलांटिक महासागर पार कनाडा के न्यू फाउंडलैंड स्थित सेंट जॉस की आवाज सुनने तथा अपनी बात दूसरी तरफ पहुँचाने में सफलता मिली।

इंग्लैंड में पहला रेडियो कार्यक्रम 23 फरवरी 1920 को प्रसारित किया गया। 1947 ई. में अमरीकन वैज्ञानिक राकले, ब्राटने तथा बार्डिन ने ट्रान्जिस्टर का आविष्कार कर इसे जनसाधारण का माध्यम बना दिया।

भारत में सन् 1921 टाइम्स ऑफ इण्डिया तथा डाक-तार विभाग के संयुक्त उपक्रम से मुंबई से एक कार्यक्रम प्रसारित किया गया। 1924 ई. में मद्रास में प्रेसीडेन्सी रेडियो क्लब की स्थापना की गई। 23 जुलाई 1926 को इण्डियन ब्रॉडकास्टिंग ने प्रसारण आरंभ किया। सन् 1936 में इसका नाम ऑल इण्डिया रेडियो रखा गया।

देश स्वाधीन होने पर सन् 1957 में इसका नाम 'आकाशवाणी' हो गया। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले मैसूर के प्राध्यापक गोपाल स्वामी ने प्रसारण केन्द्र के लिए किया था। जबकि हिन्दी जगत में यह नामकरण कविवर सुमित्रानंदन पंत द्वारा लोकप्रिय हुआ। भारत में आकाशवाणी की चार प्रमुख सेवाएँ हैं : राष्ट्रीय प्रसारण, विविध भारती, विदेशी सेवा और एफ.एम.सेवा।

## रेडिया की विशिष्टताएँ

रेडियो एक श्रव्य माध्यम है। इसके द्वारा प्रसारित कार्यक्रम सुने जा सकते हैं, देखा नहीं जा सकता। इसीलिए इसे 'दृश्यहीन माध्यम' कहा जाता है। सुनकर ग्रहण किए जाने के कारण रेडियो से प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों की प्रस्तुति और भाषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बोलचाल की भाषा को प्राथमिकता दी जाती है। अतएव रेडियो हेतु आलेख-लेखन विषयक जरूरी तथ्य निम्नानुसार हैं :

**श्रोताओं की कल्पनाशक्ति का उपयोग :** रेडियो श्रवण का माध्यम होने से श्रोता अपनी कल्पना शक्ति के सहारे दृश्य बनाता है। राजा या राजसभा का वर्णन किया जाता है तो श्रोता स्व-कल्पना अनुसार उसकी वेशभूषा, आकार, भव्यता आदि दृश्य अपने मन में बनाता है। इसी कल्पना-शक्ति का उपयोग रेडियो के लिए लिखते समय उपयोग करना चाहिए।

**सामायिकता का बोध :** रेडियो वर्तमान का माध्यम है। रेडियो का आलेख उसी प्रवाह का वाहक होना चाहिए। श्रोताओं को वर्तमान का बोध कराया जाता है। आभास यों होता है जैसे सब कुछ उसी समय बताया जा रहा है, जबकि 'समाचार' और 'आँखों देखा हाल' का ही सीधा प्रसारण होता है।

**लचीलापन :** रेडियो एक निजी माध्यम है, जिसे एक जगह बैठकर ही नहीं; काम करते-करते भी सुना जा सकता है। रेडियो आलेख लिखते हुए बातचीत की भाषा अपनाई जाती है। श्रोता और प्रस्तुत कर्ता सीधे बात कर रहे हों ऐसा महसूस होना चाहिए। इस प्रकार रेडियो एक लचीला माध्यम है।

**तत्परता :** रेडियो दुनिया में घट रही घटनाओं की सूचना तुरन्त श्रोताओं तक पहुँचता है। मौसम और प्राकृतिक विपत्ति, रेलगाड़ी आवागमन, समारोहों की ताजा जानकारी रेडियो पर तुरन्त और कम खर्च में दूर-दराज के श्रेत्रों तक भेजी जा सकती है। इस प्रकार रेडियो एक तत्पर माध्यम है।

## श्रोतावर्ग की पहचान

रेडियो आलेख तैयार करते समय श्रोतावर्ग की रुचि, मनोविज्ञान और ज्ञान के स्तर को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। श्रोता वर्ग के अनुरूप आलेख विधा, भाषा एवं विषय का चयन होगा। रेडियो के श्रोताओं में अपार विविधता होती है - बच्चे, बूढ़े, महिला, पुरुष, निरक्षर, साक्षर, बुद्धिजीवी-सभी प्रकार के होते हैं।

## रेडियो लेखन के प्रमुख उपकरण

रेडियो श्रोताओं तक अपना संदेश शब्द, ध्वनि, संगीत और मौन द्वारा पहुँचाता है।

**शब्द :** शब्द श्रोता के मन में बिम्ब का निर्माण करते हैं।



**ध्वनि** : रेडियो में ध्वनि का विशेष महत्त्व है। ध्वनि के माध्यम से वातावरण का निर्माण किया जाता है। रेडियो नाटक में इसका उपयोग विशेष होता है। ध्वनि प्रभाव से प्रातःकाल का अहसास कराना हो तो चिड़ियों की चहचहाट, मंदिर की घंटियों आदि का आयोजन, रेलवे स्टेशन के लिए रेलगाड़ी की आवाज, 'चाय गरम चाय', शोर-गुल आदि प्रभावक रहता है।

**संगीत** : संगीत मनोरंजन का लोकप्रिय माध्यम है। रेडियो में प्रसारण सेवा की पहचान उसकी 'संकेत धुन' से होती है। रेडियो नाटक में दृश्य बदलने तथा खुशी या दुःख का माहौल दर्शाने में संगीत का उपयोग किया जाता है। रेडियो में संगीत मनःस्थितियों, घटनाओं, विभिन्न स्थितियों आदि का सूचक होता है।

**मौन** : रेडियो में मौन का सकारात्मक उपयोग किया जाता है। मौन श्रोता की कल्पना शक्ति को सक्रिय बनाता है। रेडियो नाटक में मौन विशेष परिस्थिति का आभास कराता है - बेटा ! रुक जाओ... मत जाओ... - संवाद में मौन मनःस्थिति को दर्शाता है।

### विधा का चुनाव

श्रोता वर्ग को ध्यान में रख, रेडियो विधा का चुनाव किया जाता है। रेडियो की प्रमुख विधाएँ इस प्रकार हैं -

**1. वार्ता** : वार्ता रेडियो की सर्वाधिक प्रचलित विधा है। इसमें बातचीत की शैली अपनाई जाती है। उदाहरण - "आतंकवाद... भारत आतंकवाद से जूझ रहा है। हम अभी तक इसकी दहशत से उबर नहीं पाए हैं। क्या है इसका समाधान ? कब छुट्टेगी इसकी अँधेरी छाया । आइए, इन्हीं सब पक्षों पर विचार करें।"

**2. नाटक और रूपक** : रेडियो नाटक ध्वनि प्रभावकों, शब्दों और संवादों के माध्यम से श्रोता तक पहुँचता है। श्रोता सुनकर अपने मन में दृश्य की कल्पना करता है।

आवाजों, ध्वनि प्रभावों, संगीत, भेंट वार्ता आदि को मिलाकर तथ्यों के साथ किसी विषय को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसे रूपक कहते हैं। विषय चयन समस्या, सूचना, घटना, व्यक्ति आदि पर आधारित होता है - बाल मजदूरी, सूर्यग्रहण, रेलवे दुर्घटना, महात्मा गांधी।

**3. समाचार** : समाचार संक्षिप्त, सरल और स्पष्ट ढंग से सुनाया जाता है, समाचार पत्र की तरह इसमें विस्तार नहीं होता है। श्रोता वर्ग साक्षर-निरक्षर, बाल-वृद्ध तथा समाज के सभी लोग होने के कारण भाषा सहज, स्वाभाविक संश्लिष्ट हो-आग्रह रखा जाता है।

**4. जनसेवा सूचनाएँ** : आम लोगों से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी तुरन्त प्रसारित की जाती है। जैसे रेलगाड़ियों में विलम्ब सूचना, बिजली आपूर्ति में बाधा, संभवित तूफान चेतावनी, रोजगार एवं मौसम समाचार, मंडी के भाव आदि।

**5. विज्ञापन** : किसी उत्पादन की ओर ध्यान खींचने हेतु विज्ञापन सूचना संक्षिप्त, संगीत एवं ध्वनि प्रभाव से प्रभावी बनाई जाती है।

**6. उद्घोषणा** : उद्घोषणा और कम्पेयरिंग रेडियो प्रसारण का महत्त्वपूर्ण भाग है। उद्घोषणाएँ पहले से लिखी होती हैं और दिनभर रेडियो से प्रसारित होती रहती हैं। उदाहरणार्थ - "..... ये आकाशवाणी अहमदाबाद है।..... पेश है भीमसेन जोशी की आवाज़ में एक भजन।"

**7. कम्पेयरिंग** : रेडियो में कम्पेयरिंग अर्थात् किसी कार्यक्रम का संचालन। गीत-संगीत कार्यक्रम, साक्षात्कार, परिचर्चा, आँखों देखा हाल आदि कम्पेयरिंग आधारित कार्यक्रम हैं।

**8. गीत-संगीत** : गीत-संगीत कार्यक्रम में कार्यक्रम संचालक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। गीतों के बीच में शेरों-शायरी, सूचनाओं और ज्ञानवर्धक बातों का सुन्दर समन्वय होता है।

**9. साक्षात्कार** : साक्षात्कार में सूत्रधार की भूमिका प्रमुख होती है। साक्षात्कार लेने से पहले उस व्यक्ति विषयक पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। साक्षात्कार के दौरान पूछे जानेवाले प्रश्न भी पहले से तैयार रख लेने चाहिए।

**10. परिचर्चा** : परिचर्चा में दो या दो से अधिक व्यक्ति भाग लेते हैं। संचालक का दायित्व इनमें प्रमुख होता है। चर्चा विषय से न भटके, संवाद निर्धारित विषय पर केन्द्रित रहे, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इसके अन्तर्गत चैट-शो और

रेडियो-ब्रिज भी आते हैं। 'चैट-शो' परिचर्चा का ही बदला हुआ रूप है।

परिचर्चा में मात्र विषय विशेषज्ञ ही शामिल होते हैं, जब कि चैट-शो में आम नागरिक रेडियो ब्रिज भी एक प्रकार की परिचर्चा ही है। इसमें अलग-अलग रेडियो स्टेशनों पर बैठ विशेषज्ञ किसी विषय पर अपनी राय देते हैं।

**11. फोन-इन :** 'फोन-इन' में श्रोता घर बैठे अपने गाने फरमाइश कर सकता है। किसी चिकित्सक या प्रमुख व्यक्ति से प्रश्न पूछ सकता है और रेडियो पर उसका उत्तर सुन सकता है।

**12. आँखों देखा हाल :** आँखों देखा हाल रेडियो का अति लोकप्रिय कार्यक्रम है। गणतंत्र दिवस, क्रिकेट मैच जैसे महत्वपूर्ण घटनाओं को स्थल से सीधे श्रोताओं तक पहुँचाया जाता है।

**13. रेडियो रिपोर्ट :** इसमें समारोह विशेष की रिकार्डिंग सुनाई जाती है, साथ ही संचालक समारोह की कार्यवाही का विवरण देता रहता है।

### रेडियो की भाषा

रेडियो की भाषा में (1) वाक्य छोटे हों। (2) सरल शब्दों का प्रयोग हो। (3) आँकड़े अंकों में नहीं शब्दों में हों तथा (4) रेडियो के अनुकूल शब्दों का प्रयोग हो। जिससे श्रोता मस्तिष्क में कल्पना से दृश्य निर्मित कर सके।

रेडियो प्रसारण तुरन्त दोबारा नहीं सुना जा सकता, रेडियो श्रव्य सामग्री है, छपे लेख से भिन्न; अतएव आसानी से समझ में आनेवाली भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए।

### दूरदर्शन

दूरदर्शन दृश्य एवं श्रव्य माध्यम है, जिसे हम देखते भी हैं और सुनते भी हैं। सारी दुनिया इस जादुई माध्यम से अभिभूत है।

### टेलीविजन का उद्भव और विकास

टेलीविजन का उद्भव 1926 ई. में जॉन लॉगी बेयर्ड के पहली बार टेलीविजन प्रदर्शन के साथ हुआ। 1936 में लंदन में नियमित रूप से टेलीविजन प्रसारण प्रारंभ हुआ। फ्रान्स में 1938 ई., अमरीका में 1940 तथा यूनेस्को की विशेष योजना के अन्तर्गत 15 सितम्बर 1959 को दिल्ली में प्रथम टेलीविजन केन्द्र की स्थापना की गई। जिसका उद्घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने किया। इस टेलीविजन केन्द्र का नाम 'दूरदर्शन' रखा गया। 15 अगस्त 1956 से नियमित प्रतिदिन घण्टेभर का प्रसारण आरंभ हुआ। 1982 में पहली बार रंगीन टेलीविजन का प्रसारण हुआ।

अब, उपग्रहों की सहायता से 'दूरदर्शन' पूरे भारत में फैल गया है। विदेशी चैनलें भी भारत के टी.वी. सेटों पर उपलब्ध हैं। टी.वी. ओपरेटरों ने इसे और भी आसान बना दिया है। इस प्रकार हमारे टेलीविजन पर सारी दुनिया समा गई है। चौबीसों घण्टे यह सूचना, शिक्षा और मनोरंजन (स्टार प्लस, जी.टी.वी. आदि) प्रत्येक के लिए अलग-अलग चैनलें हो गई हैं। 'दूरदर्शन' पर डी.डी. - 1 तथा डी.डी. - 2 पर मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षापरक, ज्ञानपरक और सूचनापरक कार्यक्रम दिखाये जाते हैं।

### टेलीविजन की विशिष्टताएँ

रेडियो में संप्रेषण माध्यम आवाज़ है। टी.वी. में आवाज़ के साथ दृश्य भी होते हैं। टेलीविजन की विशिष्टताएँ :

1. दृश्यश्रव्य माध्यम 2. वर्तमान का माध्यम 3. अंतरंग माध्यम 4. क्लोज-अप का माध्यम

**1. दृश्य-श्रव्य माध्यम :** जनसंचार के इस प्रभावशाली माध्यम में आवाज़ और दृश्य दर्शक को मंत्र-मुग्ध कर देते हैं। अमरीका में वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर और दिल्ली में संसद पर हुए हमले, कारगिल युद्ध आदि को हमने साक्षात् देखा।

प्रौद्योगिकी विकास के कारण विश्व की प्रत्येक घटना को हम टेलीविजन पर देख लेते हैं। टेलीविजन में दृश्यों की भरमार दर्शकों का सदा आकर्षण बनाए रखती है।

**2. वर्तमान का माध्यम :** रेडियो तथा टेलीविजन पर 'समाचार' और 'आँखों देखा हाल' के अलावा सभी कार्यक्रम पहले से रिकार्ड कर लिए जाते हैं। तब भी ऐसा लगता है उसी समय घटित हो रहा है। टेलीविजन कार्यक्रम के लिए आलेख लिखते समय उसे अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया जाता है।

3. **अंतरंग माध्यम** : टेलीविजन आज बैठक से शयन कक्ष में पहुँच चुका है। वह हमारा अंतरंग सखा बन चुका है। उसकी पटकथा लिखते हुए ध्यान रखना होता है कि वह रोचक और मनमोहक हो। लेखन में चमक-दमक और ऐसे मसाले हों कि दर्शक उसमें लीन हो जाए। अतएव सुन्दर दृश्यों, संवादों और नाटकीयता से भरपूर घटनाओं का समावेश अवश्यक है। दर्शकों के मनोविज्ञान, रुचि और पसंद का ध्यान रखना अपेक्षित है।

4. **क्लोज-अप का माध्यम** : टेलीविजन क्लोज-अप का माध्यम है। क्लोज-अप अर्थात् कैमरा किसी चीज को नजदीक से दिखाता है। नजदीक से दिखाया गया दृश्य स्पष्ट होता है और दर्शकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने में सक्षम होता है। पात्रों के चेहरों की भाव-भंगिमाएँ नजदीक से देखने को मिलती हैं। इसीलिए टेलीविजन में आंगिक भाषा का विशेष महत्त्व होता है। पात्र के हाव-भाव बिना बोले ही बहुत कुछ कह जाते हैं। टेलीविजन का कैमरा छोटे से छोटे भाव को पकड़ लेता है। चित्र और ध्वनियाँ टेलीविजन सेटों तक विद्युत तरंगों के माध्यम से पहुँचती हैं।

### टेलीविजन के विभिन्न कार्यक्रम

टेलीविजन पर प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों को उद्देश्यों के अनुसार-सूचना, शिक्षा और मनोरंजन-तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

**सूचनापरक कार्यक्रम** : टेलीविजन विविध कार्यक्रमों के माध्यम से जन-जन तक सूचना पहुँचाने का काम करता है। समाचार इनमें सबसे प्रमुख है। पहले दूरदर्शन पर तीन बार राष्ट्रीय समाचार प्रसारित होते थे, नेटवर्क आने के बाद समाचारों की बढ़ आ गई है। आज तक, जी न्यूज, सी.एन.ए., बी.बी.सी. आदि चैनलों पर चौबीसों घण्टे समाचार आते रहते हैं। समाचार संक्षिप्त, सारगर्भित और चुटीले होने चाहिए। प्रत्येक समाचार अलग-अलग पृष्ठ पर लिखा हुआ होना चाहिए। क्योंकि समय की बचत करनी होती है। यद्यपि आजकल नवीनतम तकनीक में समाचार वाचक के सामने रखे कैमरे पर छोटा स्क्रीन बना होता है। उस पर लिखित समाचार धीरे-धीरे आगे बढ़ता है और वाचक उसे पढ़ता जाता है। जिससे लगता है वाचक समाचार पढ़ नहीं रहा है, बोल रहा है।

वृत्तचित्र, परिचर्चा, साक्षात्कार, फोन-इन, आँखों देखा हाल-सूचनापरक कार्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं। इन कार्यक्रमों की विशेषता है - सामयिकता। 'नेशनल ज्योग्राफी' और 'डिस्कवरी' टेलीविजन-वृत्तचित्र (डॉक्यूमेंट्री) श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

परिचर्चा में किसी सामयिक विषय पर विशेषज्ञ भाग लेते हैं। विषय साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक कुछ भी हो सकता है। 'चैट शो' भी परिचर्चा का एक परिवर्तित रूप है। जिसमें विषय-विशेषज्ञों के साथ जनता भी शामिल होती है। साक्षात्कार के द्वारा देश-विदेश की महान हस्तियों से सीधे रू-ब-रू हुआ जा सकता है।

**शिक्षा संबंधी कार्यक्रम** : टेलीविजन में सामान्यतः अधिक महत्त्व मनोरंजन और सूचना को दिया जाता है, उसके बाद आती है 'शिक्षा'। यद्यपि भारत सरकार की सजगता के कारण इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय में दूरदर्शन का एक नया प्रसारण केन्द्र खोला गया है जिसे 'ज्ञानदर्शन' के नाम से जाना जाता है और चौबीसों घण्टे शिक्षा संबंधी कार्यक्रम दिखाता है। इसी केन्द्र से एन.सी.ई.आर.टी., एस.सी.ई.आर.टी. (स्कूल शिक्षा) और यू.जी.सी. (विश्वविद्यालय शिक्षा) के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने हेतु शिक्षा के साथ मनोरंजन भी हो यह आवश्यक है। क्विज कार्यक्रम इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

**मनोरंजन ही मनोरंजन** : टेलीविजन घर बैठे सस्ता, सुलभ और प्रभावशाली मनोरंजन का माध्यम है। मनोरंजन प्रदान करनेवाले कार्यक्रम दिखाने के लिए अनेक चैनलों में होड़ लगी हुई है। धारावाहिक, गीत-संगीत, चैट-शो आदि इनमें प्रमुख हैं। मनोहर श्याम जोशी का 'हम लोग', 'बुनियाद' तथा रामायण-महाभारत धारावाहिक इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

टेलीविजन में 'विज्ञापन' का महत्त्व इतना अधिक है कि प्रायः चैनलों पर 60 प्रतिशत कार्यक्रम और 40 प्रतिशत विज्ञापन होते हैं। विज्ञापनों में भाषा और दृश्यों का सर्जनात्मक उपयोग चकाचौंध पैदा कर बच्चों से बूढ़ों तक को प्रभावित कर रहा है। अर्थात् विज्ञापन-लेखन सर्जनात्मक लेखन का नया क्षेत्र है जिसमें प्रयोग और खोज की अपार संभावनाएँ हैं।

## पटकथा लेखन

पटकथा लेखन की आवश्यकता समाचार, वृत्तचित्र, धारावाहिक, गीत-संगीत, विज्ञापन आदि सभी में होती है। प्रत्येक पटकथा टेलीविजन विधा के अनुरूप होनी चाहिए। तथापि पटकथा लेखन की अपनी कुछ शर्तें हैं। जिन्हें समझना जरूरी है :

किस्सागो बनिए।

कैमरे की नजर से देखिए।

तस्वीरों को बोलने दीजिए।

पटकथा में घटनाओं को घटित होता हुआ और पात्रों को बोलता हुआ दिखाया जाता है। लेखक को दृश्य-श्रव्य की कल्पना करनी चाहिए अर्थात् लेखक का दिमाग एक कैमरे की तरह क्रियाशील होना चाहिए। पटकथा लेखक दृश्य-श्रव्य स्मृति के आधार पर कल्पना को किस्सागो बनाकर पटकथा में ढाल ले। पटकथा का एक उदाहरण :

“एक राजा होता है। वह अपने दरबार में बैठा है। दरबार राजकुमारों और मंत्रियों से भरा है। तभी एक बुढ़िया ‘दुहाई महाराज की... दुहाई महाराज की’ कहते हुए प्रवेश करती है।”

आपने देखा, इसमें अनिश्चित वर्तमानकाल शैली अपनाई गई है। इस शैली द्वारा निर्देशक यह बताता है कि कैमरे के आगे क्या घटित होना है। पटकथा में ‘एक राजा था। वह अपने दरबार में बैठा था...’ कथा वाली शैली नहीं चलती। कथावाचक और किस्सागो की शैली अपनानी पड़ती है। भूतकाल की क्रियाओं के स्थान पर वर्तमानकाल का प्रयोग किया जाता है। पटकथा लिखने से पहले दृश्य और संवादों की कल्पना कर लेनी चाहिए और फिर उसे कागज पर उतार लेना चाहिए।

टेलीविजन के सभी दृश्य कैमरा दिखाता है। पटकथा में यह बताना जरूरी होता है कि कैमरा दृश्य को नजदीक से ‘क्लोज शॉट’ दिखा रहा है, मध्यम दूरी ‘मिड शॉट’ से दिखा रहा है या दूर से ‘लॉग शॉट’ दिखा रहा है। यों तो ‘क्लोज शॉट’ का सहारा अधिक पटकथा की अनिवार्य शर्त है कि तस्वीरों को बोलने दीजिए, खुद कम बोलिए। समाचार, वृत्तचित्र, विज्ञापन सब पर यह बात लागू होती है। शब्दों का अधिक प्रयोग पटकथा को कमजोर बना देता है।

## पटकथा लेखन की संरचना

पटकथा लेखन का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। तथापि दृश्य, विचार और रूपरेखा को ध्यान में रखा जा सकता है।

**दृश्य :** टेलीविजन पटकथा को कई दृश्यों में विभाजित करना होता है। पटकथा में कथा को दृश्यों में बाँट कर प्रस्तुत किया जाता है। एक समय में एक बार कैमरा जो कुछ दिखाता है, उसे ‘दृश्य’ माना जाता है। दूसरा दृश्य कथा का अगला भाग प्रस्तुत करता है। दृश्य का पूरा विवरण पटकथा में अवश्य लिखा होना चाहिए।

**विचार ( आइडिया ) :** पटकथा में विचार का विशेष महत्त्व होता है। विज्ञापन लेखन, लोककथाएँ, परीकथाएँ अथवा आसपास में घटनेवाली घटनाएँ आपके विचार का आधार बन सकती हैं।

**रूपरेखा ( स्टेप आउटलाइन ) :** पटकथा की रूपरेखा को मीडिया की भाषा में ‘स्टेप आउटलाइन’ कहते हैं। इसमें दृश्य का क्रम और संवादों का उल्लेख किया जाता है। रूपरेखा पटकथा का मानचित्र है। रूपरेखा बनाने के बाद ही पटकथा लिखी जाती है।

कार्यक्रम रोचक बने, उसमें दर्शक को बाँधने की क्षमता हो – तथ्यों को ध्यान में रखकर रूपरेखा बनाई जाती है। दृश्य निर्धारण कर संवाद की शैली अपनाते हुए पटकथा लिखी जानी चाहिए।

## संचार माध्यम के नवीनतम रूप

ज्ञान के विकास और वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव जीवन को नए-नए संसाधनों की सुविधा प्रदान की। युग के विकास के साथ-साथ संचार माध्यमों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। अतएव, यहाँ संचार माध्यम के नवीनतम रूपों का परिचय प्रस्तुत है।

## कम्प्यूटर

कम्प्यूटर एक एसी इलेक्ट्रॉनिक युक्ति (Device) है जो दिए गए निर्देशन समूह के आधार पर सूचना को संसाधित

(Process) करती है। यह एक तेज गतिशील विद्युत-चलित मशीन है। सन् 1930 में अमरीकी इंजीनियर बेनीवर ने इस मशीन का आविष्कार किया। ब्रिटिश गणितज्ञ चार्ल्स बैबेज ने प्राथमिक स्तर पर कम्प्यूटर डिजाइन किया। कम्प्यूटर की भाषा को बाइनरी अर्थात् 0 एवं 1 कहते हैं। कम्प्यूटर ऑपरेटर की सूचनाओं को चित्र में बदल सकता है, म्यूजिक साउन्ड फ्रीक्वेंसी द्वारा संगीत तैयार कर सकता है।

कम्प्यूटर मानव की कृति है। उसकी अपनी कोई बुद्धिमता नहीं होती है। मानव उसे प्रोग्राम के रूप में शक्ति प्रदान करता है। कम्प्यूटर में डेटा (या जानकारी) लिखित, मुद्रित, श्रव्य, चाक्षुष (Visual) आरेखित या यांत्रिक चेष्टाओं के रूप में उपलब्ध होते हैं।

कम्प्यूटर अर्थात् गणना करनेवाला गणक। परन्तु अब कम्प्यूटर शब्दों, आँकड़ों, संख्याओं और चित्रों की सूचनाओं को 'स्मृतिकोश' में संचित रखने के कारण जटिल से जटिल कार्य करने की क्षमता रखता है। आकार में छोटा और क्षमता में विकसित होने के कारण - पर्सनल कम्प्यूटर - लैपटॉप (गोद में रख काम किया जा सके), पामटॉप (हथेली में रख काम किया जा सके) आदि रूप भी सामने आते जा रहे हैं।

### सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर

विशेष प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विकसित प्रोग्राम को सॉफ्टवेयर कहते हैं। जिनकी मदद से हम कम्प्यूटर को कमांड देकर इच्छानुसार काम ले पाते हैं। ये दो तरह के होते हैं :

**1. सिस्टम सॉफ्टवेयर :** डॉस, विंडोज, यूनिक्स आदि प्रणाली से इसका संबंध है। इनमें फोर्टान, कोबोल, बेसिक, पास्कल आदि में प्रोग्राम तैयार किए जाते हैं।

**2. एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर :** प्रयोग की प्रकृति के आधार पर पुस्तक प्रकाशन, शब्द संसाधन, आँकड़ा संसाधन आदि कार्यों का अनुप्रयोग एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर में होता है।

**हार्डवेयर :** कम्प्यूटर और कम्प्यूटर से जुड़े सभी यन्त्रों तथा उपकरणों को हार्डवेयर कहा जाता है। हार्डवेयर के अन्तर्गत-मानीटर, कुंजीपटल, केन्द्रीय संसाधक एकक, माउस और मुद्रक शामिल हैं।

**फ्लॉपी :** इसे डिजिटल फाइल भी कह सकते हैं। एक कम्प्यूटर से आँकड़े इसमें स्टोर कर हम दूसरे कम्प्यूटर में ले जाकर देख सकते हैं। फ्लॉपी डिस्क आँकड़ों और सूचनाओं को एकत्र करने का काम करती है।

**सीडी-रोम :** यह 12 सेमी की छोटी डिस्क होती है; सूचना एकत्र करने का साधन। इसका पूरा नाम है - काम्पैक्ट डिस्क-रोम ओनली मेमोरी।

**इन्टरनेट :** यह सूचना आदान-प्रदान करने का क्रान्तिकारी साधन है। इस पर सरकारी नियंत्रण और भौगोलिक सीमाओं का दबाव नहीं है। यह दुनियाभर में फैले कम्प्यूटरों को जोड़कर बनाया गया नेटवर्क है।

**इन्ट्रानेट :** इन्टरनेट कम्प्यूटरों का विश्वव्यापी जाल है जबकि इन्ट्रानेट किसी खास संस्था की जरूरतों को पूरा करने का साधन है।

**डब्लू डब्लू डब्लू :** अर्थात् वर्ल्ड वाइड वेब-दुनियाभर में फैला जाल। इसमें इन्टरनेट पर अपनी पसंद की साइट पर हम चीजें पढ़ सकते हैं, सजीव चित्र देख सकते हैं और आवाज़ सुन सकते हैं।

**ई-मेल :** पत्र त्वरित भेजने का इलैक्ट्रॉनिक तरीका। विश्व में कहीं से और किसी भी कम्प्यूटर से इन्टरनेट तक पहुँचकर आप ई-मेल भेज और प्राप्त कर सकते हैं। इसमें आप चित्र और आवाज़ वाली फाइलें भी भेज सकते हैं।

**एचटीएमएल :** एचटीएमएल अर्थात् हायपर टेक्स्ट मार्कअप लैंग्वेज।

**एचटीटीपी :** एचटीटीपी अर्थात् हायपर टेक्स्ट ट्रान्सफर प्रोटोकॉल। डॉक्यूमेन्ट मंगाने या भेजने हेतु इसका उपयोग किया जाता है।

**ब्राउजर :** वर्ल्ड वाइड वेब पहुँचानेवाला सॉफ्टवेयर।

**सर्च इंजन :** इन्टरनेट सूचना का सागर है। इच्छित जानकारी ढूँढ़ने में सर्च इंजन नामक सुविधा वरदान रूप है। आपको जिस विषय में जानकारी चाहिए, उससे संबंधित शब्द लिखने पर पलक झपकते ही सर्च इंजन वर्ल्ड वाइड वेब से सारी जानकारी खोज लाता है।

**ई-कॉमर्स** : अर्थात् इलैक्ट्रॉनिक कामर्स। इन्टरनेट की मदद से कम्प्यूटर द्वारा व्यापार-व्यवसाय करना संभव हो गया है। इसमें रुपयों का भुगतान एक समस्या थी उसका क्रेडिट कार्ड और डिजिटल हस्ताक्षर नामक तकनीक से रास्ता निकल गया है। कंपनी का कंपनी से तथा कंपनी का ग्राहक से ई-कॉमर्स द्वारा व्यवसाय कम्प्यूटर के सामने बैठे-बैठे सहज रूप से संचालित होने लगा है।

**ब्राडबैंड** : अभी चित्रों और आवाज़वाली फाइलों को इन्टरनेट से कम्प्यूटर पर लेने में बहुत समय लग जाता है, अब ब्राडबैंड इस काम को आसान बना देगा।

**बैंडविड्थ** : नेटवर्क कनेक्शन की क्षमता को बैंडविड्थ कहते हैं। नेटवर्क में डाटा का प्रवाह कितनी गति से हो रहा है, इसी से पता चलता है।

**वायरस** : कम्प्यूटर वायरस मानव निर्मित डिजिटल परजीवी है, जो फाइल संक्रामक के नाम से जाना जाता है। वायरस नेटवर्क या कम्प्यूटर पर घुसपैठ कर ऑपरेटिंग सिस्टम को तबाह करनेवाला प्रोग्राम होता है। ये वायरस ई-मेल या टेलीफोन लाइन या फ्लॉपी या डिस्क के माध्यम से घुसपैठ कर करोड़ों की हानि पहुँचा देते हैं। कम्प्यूटर वायरस पर नियन्त्रण पाने के लिए वायरस निरोधी स्मार्ट डॉग, रेड अलर्ट, क्विक हील, वी. सेफ एन्टीवायरस जैसे अनेक प्रोग्रामों का विकास किया जा चुका है।

**वैप** : वायरलेस एक्सेस प्रोटोकॉल-तकनीक द्वारा हम मोबाइल उपकरणों पर इन्टरनेट देख सकते हैं। इन मोबाइल उपकरणों में सेलफोन, पामटॉप, डिजिटल डायरी आदि सम्मिलित हैं।

**आईएसपी** : इसका मतलब होता है इन्टरनेट सर्विस प्रोवाइडर। जो सेवा अब तक इन्टरनेट पर टेलीफोन लाइन पर उपलब्ध थी वही ऑप्टिक फाइबर और केबल के प्राप्त हो रही है।

**एएसपी** : इसका मतलब होता है एप्लिकेशन सर्विस प्रोवाइडर; ई-कॉमर्स की दुनिया में इस सेवा की जरूरत रोज बढ़ती जा रही है।

**3 जी और 4 जी फोन** : मोबाइल फोन पर विकसित की गई तीसरी और चौथी पेढ़ी की तकनीक जिसके द्वारा मल्टीमीडिया संदेश भेजना आसान हो गया है।

**फैक्स** : फैक्स को फैक्सीमाइल भी कहते हैं। इसके द्वारा रेडियो तरंगों या फिर टेलीफोन लाइनों से लिखित (एवं फोटोवाली) जानकारी को एक जगह से दूसरी जगह भेज सकते हैं और उसके मूल स्वरूप में प्राप्त कर सकते हैं। साधारण फैक्स मशीन से जब सूचना भेजी जाती है तो वह उसको लिखित और ग्राफिक जानकारी को स्कैन कर लेती है और टेलीफोन नेटवर्क से दूसरी फैक्स मशीन तक भेज देती है, इन्टरनेट और सूचना क्रान्ति के आने के बाद इन्टरनेट से भी फैक्स भेजना संभव हो गया है। अब तो मोबाइल फोन पर भी फैक्स प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध है।

**मोडेम** : डिजिटल डाटा भेजने के लिए मोडेम का उपयोग किया जाता है। जब हम किसी कम्प्यूटर को टेलीफोन लाइन द्वारा इन्टरनेट से जोड़ते हैं तो वहाँ भी यह काम मोडेम ही करता है। मोडेम डिजिटल डेटा को एनालॉग सिगनल में बदल कर तरंगों के रूप में भेजता है।

**सर्वर** : नेटवर्क का एक ऐसा कम्प्यूटर होता है जो कि सारे नेटवर्क के लिए किसी एक विशेष काम का दायित्व संभालता है। **उदाहरण** : किसी नेटवर्क में प्रिन्ट सर्वर है तो वह नेटवर्क के सभी कम्प्यूटरों के प्रिन्ट निकालने संबंधी काम की देखरेख करेगा।

**इन्टरनेट टेलीफोनी** : भविष्य में इन्टरनेट का उपयोग टेलीफोन की तरह किया जा सकेगा। इस दृष्टि से अगली क्रान्ति इन्टरनेट टेलीफोनी की होगी। कुछ पाश्चात्य देशों में इसका प्रचलन लोकप्रिय हो गया है। इसमें वॉयस ऑन इन्टरनेट तकनीक का उपयोग किया जाता है। इससे टेलीफोन कॉल पर आनेवाला भारी खर्च भी बच जायेगा।

**एसएमएस और ईएमएस** : इन्टरनेट पर ई-मेल संदेश भेजे जाते हैं उसी तरह मोबाइल फोन पर छोटे-छोटे लिखित संदेश किसी दूसरे मोबाइल फोन पर भेजे जा सकते हैं। इन संदेशों को एसएमएस अर्थात् शॉर्ट मैसेज सर्विस कहते हैं। लेकिन इनके आकार की एक सीमा निर्धारित होती है। अतएव लम्बे संदेश (जिनमें चित्र और संगीत वाली फाइल शामिल होगी) एक्सटेंडेड मैसेज सर्विस अर्थात् 'ईएमएस' द्वारा भेजे जा सकते हैं।

## जनसंचार माध्यम : शब्दावली

प्रेस में प्रयुक्त होनेवाली शब्दसूची

**ए.बी.सी. (A.B.C.)** ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन। समाचार पत्रों की प्रसार संख्या जाँच करनेवाली संस्था।

**ऐड (ad)** : एडवरटाइजमेन्ट (विज्ञापन) का संक्षिप्त रूप।

**एडवान्स (अग्रिम)** : समय से पहले छपने के लिए सुलभ सामग्री के लिए प्रयुक्त शब्द। उदा., प्रमुख व्यक्तियों के तैयार भाषण आदि प्रेस में पहले से भेज दिए जाते हैं।

**ऑल इन हैंड (All in hand)** : समाचार पत्र में सामग्री तैयार होकर छपने जब चली जाती है तब ऑल इन हैंड (प्रेषित) प्रयुक्त होता है।

**ए.पी.** : 'एसोसिएटेड प्रेस' का संक्षिप्त रूप।

**एसाइन मेन्ट** : वे निर्देश जिन्हें संपादक, ब्यूरो चीफ या मुख्य संवाददाता खबर लाने हेतु संवाददाताओं को देते हैं।

**बी., एफ.** : बोल्ड फेस। मोटे या अधिक काले प्रभाववाला टाइप।

**बैलून (Ballon)** : व्यंगचित्रों के संवाद में पात्रों के मुँह के पास बैलून जैसे गोलाकार घेरे में लिखे जाते हैं, उसे बैलून कहते हैं।

**बीट (Beat)** : संवाददाताओं के समाचार-संकलन के क्षेत्र को बीट कहते हैं। जैसे अस्पताल, नगर निगम, मंत्रालय आदि।

**बॉक्स** : छोटे रोचक समाचार को चौखट में छापने को बॉक्स कहते हैं।

**क्रॉप (Crop)** : चित्र को काट-छाँट कर संपादित करने का काम क्रॉप कहलाता है।

**ब्यूरो** : विशेष संवाददाताओं के विभाग को ब्यूरो कहते हैं।

**कैप्शन (Caption)** : चित्र के साथ दिए गए चित्र-परिचय को कैप्शन कहते हैं।

**कालम (column)** : समाचार पत्र के पृष्ठ छः या आठ भाग में लंबवत बँटे होते हैं। इनमें से प्रत्येक भाग को कालम कहते हैं।

**कैरी ऑवर** : समाचार के बचे हुए भाग को दूसरे पन्ने पर ले जाना।

**कालमिस्ट** : समाचार पत्र का स्तंभ लेखक।

**डेड लाइन** : प्रेस में खबर भेजने की 'अन्तिम अवधि'।

रेडियो और टेलीविजन में प्रयुक्त होनेवाली : शब्द-सूची

**फ़ेड आउट** : रेडियो में ध्वनि और टेलीविजन में दृश्य के धीरे-धीरे अदृश्य होने की प्रक्रिया को फ़ेड आउट कहते हैं।

**फ़ेड इन** : रेडियो पर ध्वनि और टेलीविजन में दृश्य के धीरे-धीरे उभरने की प्रक्रिया को फ़ेड इन कहते हैं।

**क्रॉस फ़ेड** : रेडियो में एक ध्वनि का पूरा होना और दूसरी का सुनाई देना, इस प्रक्रिया को क्रॉस फ़ेड कहते हैं।

**डिजाल्व** : टेलीविजन में एक छबि के अदृश्य होने और दूसरी के सामने आने की प्रक्रिया को डिजाल्व कहते हैं।

**फ्लैश-बैक** : बीते हुए जीवन को याद करने की प्रक्रिया को फ्लैश बैक कहते हैं।



## हिन्दी साहित्य का इतिहास

‘इतिहास’ शब्द इति + ह + आस के योग से बना है। ‘इति’ का अर्थ है – ऐसा, ‘ह’ से तात्पर्य है – निश्चित रूप से और ‘आस’ का मतलब है – था। इस तरह इतिहास शब्द का अर्थ होगा – ‘ऐसा निश्चित रूप से था।’ सामान्यतः इतिहास अतीत की वास्तविक घटनाओं का आलेख होता है जबकि साहित्य का इतिहास अतीत की साहित्यिक घटनाओं-गतिविधियों का आलेख होता है। सच तो यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, समाज, राजनीति, कला, शास्त्र, दर्शन, विज्ञान, भाषा आदि हर चीज के विकास का अपना-अपना इतिहास होता है। यहाँ तक कि इतिहासों का भी इतिहास होता है।

हिन्दी भाषा और साहित्य का भी अपना इतिहास है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की बात करते समय हमारे मन में यह स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि हिन्दी एक विशाल एवं वैविध्यपूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र की भाषा है। जिसकी पाँच उपभाषाएँ और अनेक बोलियाँ हैं। पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी जैसी पाँच उपभाषाओं के अंतर्गत विविध बोलियाँ आई हुई हैं। हिन्दी भाषीक्षेत्र के अंतर्गत हिमाचल, उत्तराखंड, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और झारखंड का समावेश होता है। इन प्रदेशों में ब्रज, अवधी, मैथली, भोजपुरी मालवी, मारवाड़ी, छत्तीसगढ़ी एवं पहाड़ी आदि कई बोलियाँ आई हुई हैं। यद्यपि मानक हिन्दी के रूप में खड़ी बोली को ही मान्यता प्राप्त है, लेकिन उपर्युक्त सभी बोलियाँ भी साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध होने के कारण अपना महत्वपूर्ण मूल्य रखती हैं। अतः जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विचार करते हैं तब हिन्दी बोलियों में उपलब्ध साहित्य का भी समावेश करते हैं। अतः हिन्दी साहित्य के इतिहास से तात्पर्य होगा – खड़ीबोली एवं हिन्दी की विविध बोलियों में लिखित साहित्य का इतिहास।

किसी भी भाषा के साहित्य के अध्ययन के दो मुख्य स्रोत होते हैं, अंतःसाक्ष्य और बाह्य साक्ष्य। अंतःसाक्ष्य के अंतर्गत स्वयं रचनाकार द्वारा उसकी रचनाओं, संपादनों में की गई टिप्पणी, आत्मनिवेदन आदि के आधार पर इतिहास लिखा जाता है। इतिहासकार इन रचनाओं में प्रतिबिंबित परिस्थितियों-प्रवृत्तियों का अध्ययन-अनुशीलन कर इतिहास-लेखन करता है। बाह्य साक्ष्य के अंतर्गत रचनाकारों की मूल रचना के अलावा अन्य व्यक्तियों द्वारा दी गई जानकारी या अन्य किसी माध्यम से प्राप्त जानकारी के आधार पर इतिहास की रचना करता है। बाह्य साक्ष्य से उपलब्ध सामग्री को लेकर उसकी प्रामाणिकता प्रश्नों के घेरे में अक्सर रहती है। इतिहास के लेखन और पुनर्लेखन की प्रवृत्ति बराबर चलती रहती है। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिए जो प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं : (1) गार्सा द तासी द्वारा फ्रेंच भाषा में लिखित ‘इस्तवार द ल लितरेत्युर एं दुई ए हिन्दुस्तानी’ (हिंदुई तथा हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास), जॉर्ज ग्रियर्सन-रचित ‘मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान’, शिवसिंह सेंगर का ‘शिवसिंह सरोज’, मिश्र बंधुओं का ‘मिश्रबंधु विनोद’ आदि हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक इतिहास हैं। इस परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखा गया ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ (सन् 1929) सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास माना जाता है। आगे चलकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ‘हिन्दी साहित्य की भूमिका’ एवं ‘हिन्दी साहित्य का उद्भव एवं विकास’ नामक इतिहास ग्रंथ लिखकर अपनी कुछ नई स्थापनाओं को समाने रखा।

उपलब्ध इतिहास ग्रंथों के आधार पर यह बात साफ हो जाती है कि हिन्दी साहित्य का प्रारंभ ई. सन् 1000 के आसपास माना जा सकता है। इससे कुछ पीछे जाकर देखा जाए तो आठवीं शताब्दी (ई.स. 800) के आसपास सिद्धों और नाथों की परंपरा प्राप्त होती है जिसमें अपभ्रंश-मिश्रित पुरानी हिन्दी के दर्शन होते हैं। इसी क्रम में आगे जैन साहित्य की रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। ई.स. 1000 के आसपास प्रारंभ होने वाला हिन्दी साहित्य उस हिन्दी भाषा का साहित्य है जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पुरानी हिन्दी से होती हुई आदिकाल की हिन्दी तक आती है।

**हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन :** आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहासग्रंथ में प्रत्येक काल की प्रमुख प्रवृत्ति को केन्द्र में रखकर हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार काल-खंडों में विभाजित किया है :

- (1) वीरगाथा काल (आदिकाल) संवत् 1050 से 1375 तक



- (2) भक्ति काल (पूर्व मध्यकाल) संवत् 1375 से 1700 तक  
 (3) रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल) संवत् 1700 से 1900 तक  
 (2) आधुनिक काल (गद्यकाल) संवत् 1900 से अब तक

यद्यपि हिन्दी साहित्य का इतिहास का काल-विभाजन कई लोगों ने किया है किंतु आचार्य शुक्ल द्वारा किया गया विभाजन सामान्यतः सर्वस्वीकृत है।

### आदिकाल ( 1000-1400 ई. )

आदिकाल विविध और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का काल है। राजनीतिक दृष्टि से उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद किसी ने केन्द्रीय सत्ता स्थापित नहीं की। छोटे-छोटे राजवंश जैसे चंदेल, चालुक्य, चौहान, तोमर, राठौर आदि आपस में लड़कर शक्तिहीन हो रहे थे। बाहरी आक्रमण भी तेज हो गए थे। परन्तु राजाओं के आपसी युद्ध या बाहरी हमलों का कोई परिवर्तनकारी प्रभाव सामान्य जनता पर नहीं पड़ता था।

कवि अधिकतर राज्याश्रित थे। वे आश्रयदाताओं के पराक्रम, रूप और दान की प्रशंसा करते थे। इस काल में राजाओं पर लिखे गए काव्यों का सामान्य विषय भूमि और नारी का हरण है।

सामान्य जनता के दैनिक जीवन पर राज्य की अपेक्षा धार्मिक मतों का अधिक प्रभाव था। धार्मिक दृष्टि से इस काल में अनेक साधनाएँ प्रचलित थीं। सिद्ध, जैन, नाथ आदि मतों का व्यापक प्रचार किया गया था। इनका साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इस्लाम का प्रवेश हो चुका था, किंतु उसका प्रभाव साहित्य पर आदिकाल के अंतिम कवि अमीर खुसरो में ही दिखलाई पड़ता है।

इस काल में आवागमन के साधन आज जैसे विकसित नहीं थे। इसका परिणाम यह दिखलाई पड़ता है कि विभिन्न स्थानों पर रची हुई कृतियों में भाषागत भिन्नता अधिक है। इसलिए आदिकाल का हिंदी साहित्य अनेक बोलियों का साहित्य प्रतीत होता है। उपलब्ध साहित्य अपभ्रंश हिंदी का साहित्य है, शुद्ध अपभ्रंश या शुद्ध हिंदी का नहीं।

#### सिद्ध कवि

बौद्ध धर्म कालांतर में मंत्र-तंत्र की साधना में बदल गया था। वज्रयान इसी प्रकार की साधना थी। सिद्धों का संबंध इसी वज्रयान से था। इनकी संख्या 84 बताई जाती है। प्रथम सिद्ध सरहपा को सहजयान का प्रवर्तक कहा जाता है। उन्होंने सहज जीवन पर अधिक बल दिया है। सिद्धों ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र प्रहार किया है। इन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसके सांकेतिक अर्थ निकलते हैं। जो **संधा** भाषा के नाम से जानी जाती है। कबीर आदि निर्गुण संतों की इसी भाषा-शैली को 'उलटबाँसी' कहा जाता है।

#### नाथ कवि

बौद्धों की वज्रयान शाखा से ही नाथ पंथ का संबंध माना जाता है। यह सिद्धों के बाद का समय था। चौरासी सिद्धों की जो सूची मिलती है, उसमें कई नाम नाथों के भी हैं। नाथपंथ में गोरखनाथ शिव के रूप में माने जाते हैं, अतः इनका शैव होना स्पष्ट है। गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया और ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक शुचिता तथा मद्य-मांस के त्याग का आग्रह किया। इनका सिद्धांत था - 'जोई-जोई पिंडे सोई ब्रह्माडे' अर्थात् जो शरीर में है वही ब्रह्मांड में है। इला-पिंगला, नाद-बिंदु की साधना, षटचक्र भेदन, शून्य चक्र में कुंडलिनी का प्रवेश आदि नाथों की अंतरसाधना के मुख्य अंग हैं। गोरखनाथ के गुरु मत्सेन्द्रनाथ थे, और उनके गुरु जलंधर थे।

#### जैन मतावलंबी कवि

जैन मत के प्रभाव में अधिकांश काव्य गुजरात, राजस्थान और दक्षिण में रचा गया है। यह प्रायः प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है। जैन मतावलंबी रचनाएँ दो प्रकार की हैं - १. जिनमें नाथ सिद्धों की तरह अंतरसाधना, उपदेश, नीति सदाचार पर बल और

कर्मकांड का खंडन है। ये मुक्तक हैं। प्रायः दोहों में रचित हैं। २. जिनमें पौराणिक जैन साधकों की प्रेरक जीवन-कथा या लोक प्रचलित कथाओं को आधार बनाकर जैन मत का प्रचार किया गया है। जैन पौराणिक काव्य एवं चरित काव्य इसी श्रेणी के काव्य हैं।

इस काल में कुछ वैष्णव साहित्य भी लिखा गया। 14वीं शताब्दी में कवि लक्ष्मीधर द्वारा संकलित 'प्राकृत पैंगलम्' के कई छंदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों से संबंधित पंक्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार हेमचंद्र के 'प्राकृत व्याकरण' में संकलित अपभ्रंश दोहों में भी राधा, कृष्ण, दशमुख आदि की चर्चा आती है। किन्तु विष्णु के अवतारों से संबंधित आदिकालीन साहित्य अब उपलब्ध नहीं है।

### वीरगाथा काव्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथा काल' कहा है। उन्होंने इस काल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति की पहचान जिन 12 ग्रंथों के आधार पर की है, वे इस प्रकार हैं - विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिकला, कीर्ति पताका, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद्र प्रकाश, जय मयंक - जस-चंद्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति पदावली।

इन सभी ग्रंथों में कुछ प्रामाणिक हैं और कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इन सभी ग्रंथों में **पृथ्वीराज रासो** आदिकाल का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस काव्य का रचनाकाल और इसका मूलस्वरूप विवादास्पद है। इसके रचयिता चंदबरदाई पृथ्वीराज चौहान के अंतरंग बताए जाते हैं। रासो में पृथ्वीराज के विभिन्न युद्धों और विवाहों का वर्णन है। वीर एवं शृंगार इसके प्रमुख रस हैं लेकिन अंगीरस वीर ही माना जाएगा। चंदबरदाई ने बड़ी कुशलता से नायिका का नखशिख वर्णन, सेना के प्रयाण, युद्ध, षड्भक्त-वर्णन आदि को चित्रित किया है। विविध छंदों का प्रयोग भी उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है, किंतु छप्पय उनका प्रिय छंद है।

अन्य ग्रंथों में विद्यापति की कीर्तिलता, कीर्ति पताका, पदावली और नरपति नाल्ह की बीसलदेव रासो प्रामाणिक रूप से उपलब्ध हैं। जगनिक कृत परमाल रासो आल्हा के रूप में पहचाना जाता है। नल्लसिंह रचित विजयपाल रासो में युद्ध वर्णन है। हमीर रासो, जयचंद्र प्रकाश और जयमयंक-जस-चंद्रिका उपलब्ध नहीं है। खुमान रासो के रचयिता दलपति विजय हैं।

### आदिकाल के अन्य कवि

**विद्यापति** (14वीं शताब्दी) इस काल के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं : कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। **कीर्तिलता** छोटा-सा प्रबंध काव्य है। इसमें कीर्तिसिंह द्वारा अपने पिता का बदला लेने का वर्णन है। यह काव्य 'अवहट्ट' देशी भाषा अर्थात् मैथिली युक्त विकसित अपभ्रंश है। **पदावली** में राधा-कृष्ण अपना अलौकिकत्व छोड़कर लौकिक व्यक्तियों के समान प्रेमभावना से विह्वल होते हैं। लोक में जिस प्रकार किशोरी लोकलाज के कारण तीव्र अंतर्द्वन्द्व झेलती है, उसी प्रकार राधा को चित्रित किया गया है।

**अमीर खुसरो** (14वीं सदी) इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं। वे संगीतज्ञ, इतिहासकार, कोशकार, बहुभाषाविद् और सूफी औलिया थे। उनकी हिन्दी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने अभी तक लोगों की जबान पर हैं। उनके नाम से निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह दोहा खुसरो ने हजरत निजामुद्दीन औलिया के देहांत पर कहा था -

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल घर खुसरो आपने, रैन भई चहुँ देस ॥

उनका महत्त्व इस बात में है कि अपभ्रंश-मिश्रित भाषा और डिंगल के स्थान पर उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली और ब्रजभाषा का सफलता पूर्वक प्रयोग किया।

## आदिकाल की प्रवृत्तियाँ

- आदिकाल अपभ्रंश और हिन्दी का संधिकाल है।
- इस काल में नाथ-सिद्धों और जैन कवियों का साहित्य मिलता है, जिसमें वैदिक मत और कर्मकांड की आलोचना है।
- आदिकालीन साहित्य में सामंतों एवं आश्रयदाताओं का गुणगान किया गया है।
- इस काल के साहित्य में युद्धों का सजीव चित्रण किया गया है।
- वीरगाथात्मकता इस काल की प्रधान प्रवृत्ति है।
- इस काल के साहित्य में वीर रस एवं शृंगार रस की प्रधानता है।
- इस काल के अंतिम कवि विद्यापति ने अपभ्रंश और आधुनिक भाषा (मैथिली) दोनों में रचना की है।
- अमीर खुसरो ने दो सखुने, मुकरियाँ, पहेलियाँ जैसे लोक प्रचलित काव्यरूपों का प्रयोग किया है। उनमें फारसी, खड़ी बोली और ब्रजभाषा तीनों का प्रयोग है।
- आदिकाल की अधिकांश रचनाएँ अप्रामाणिक या अर्द्धप्रामाणिक हैं।

## भक्ति काल ( 1400-1700 ई. )

भक्ति काल और भक्ति कालीन साहित्य के मूल में भक्ति आन्दोलन है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति आन्दोलन भारतीय चिन्ता-धारा का स्वाभाविक विकास है। यह आंदोलन और साहित्य लोकोन्मुखता एवं मानवीय करुणा के महान आदर्श से युक्त है।

भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ की परिस्थितियाँ भी विशिष्ट हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने इसे इस्लामी आक्रमणों से पराजित हिन्दू जनता की असहाय एवं निराश मनःस्थिति से जोड़ा है। उनका मानना है कि दक्षिण से आई हुई भक्ति की लहर को उत्तर भारत की जनता ने बड़े व्यापक रूप में अपना लिया।

भक्ति आन्दोलन का उदय और विकास किसी सुसंगत विचारधारा या दर्शन के बिना नहीं हो सकता था। इस दृष्टि से रामानुज और रामानंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। रामानुज के अनुसार जगत मिथ्या नहीं वास्तविक है। इस जगत को वास्तविक मानकर उसे महत्त्व देने में ही भक्ति की लोकोन्मुखता एवं करुणा है। जगत मिथ्या नहीं वास्तविक है, यह लौकिकता की दार्शनिक स्वीकृति है।

रामानुज की ही परंपरा में रामानंद हुए, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे भक्ति को दक्षिण भारत से उत्तर भारत ले आए। भक्ति एक प्रवृत्ति के रूप में रामानुजाचार्य के पहले भी थी, किन्तु वह साधना पद्धति मात्र थी, आन्दोलन नहीं। जो अनुकूल स्थितियों में धार्मिक आन्दोलन बन गई।

### भक्ति की धाराएँ : विभिन्न संप्रदाय

भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं – निर्गुण धारा और सगुण धारा। निर्गुण और सगुण धारा में अंतर इस बात का नहीं है कि निर्गुणियों के राम गुणहीन हैं और सगुण मतवादियों के राम या कृष्ण गुण सहित। वस्तुतः निर्गुण का अर्थ संतों के यहाँ गुणरहित नहीं है। निर्गुण और सगुण मतवाद का अंतर अवतार एवं लीला को लेकर है। निर्गुण मत के इष्ट भी कृपालु, सहृदय, दयावान, करुणाकर हैं, वे भी मानवीय भावनाओं से युक्त हैं, किन्तु वे न अवतार ग्रहण करते हैं, न लीला करते हैं। वे निराकार हैं। सगुण मत के इष्ट अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं। अतः सगुण मतवाद में विष्णु के अवतारों में से अनेक की उपासना होती है, यद्यपि सर्वाधिक लोकप्रिय और लोकपूजित अवतार राम एवं कृष्ण ही हैं।

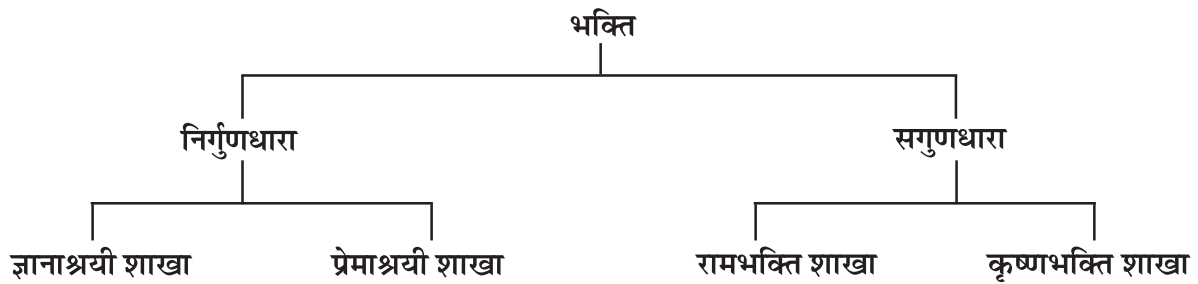
निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की भक्ति का मुख्य लक्षण है – भगवद् विषयक रति अर्थात् भगवान से अनन्य प्रेम। नाथ-सिद्धों के आसन-प्राणायाम, सहज-समाधि, शरीर, प्राण, मन, वाणी की अचंचलता का योग – सब इसी प्रेम में विलीन हो गए हैं।

भक्ति के अनेक संप्रदाय हैं। उनमें से चार प्रमुख संप्रदाय – श्री, ब्राह्म, रुद्र और सनकादि या निंबार्क हैं। **श्री संप्रदाय** के आचार्य रामानुजाचार्य हैं। इन्हीं की परम्परा में रामानंद हुए। इन्होंने अवर्ण-सवर्ण, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक सभी को शिष्य बनाया। रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद आदि इन्हीं के शिष्य हैं। इनके मत के प्रचार की भाषा हिन्दी थी। **ब्राह्म संप्रदाय** के प्रवर्तक मध्वाचार्य थे। इस संप्रदाय में चैतन्य महाप्रभु दीक्षित हुए। इस संप्रदाय का सीधा संबंध हिन्दी से नहीं है। **रुद्र संप्रदाय** के प्रवर्तक विष्णु स्वामी थे। यह महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय के रूप में जाना जाता है। जिस प्रकार रामानंद ने राम की उपासना पर बल दिया था, उसी प्रकार वल्लभाचार्य ने कृष्ण की उपासना पर। सूरदास और अष्टछाप के कवियों पर इसी संप्रदाय का प्रभाव है। **सनकादि संप्रदाय** के प्रवर्तक निंबार्काचार्य थे। हिन्दी भक्ति साहित्य को राधावल्लभ संप्रदाय से प्रभावित बताया जाता है। इसमें राधा की प्रधानता है।

भक्ति आंदोलन इतना व्यापक एवं मानवीय था कि इसमें हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी आ जुड़े। जो सूफी संत कहलाए। सूफी यद्यपि इस्लाम मतानुयाई हैं, किन्तु अपने दर्शन एवं साधना पद्धति के कारण भक्ति आंदोलन में महत्त्वपूर्ण हैं। इस्लाम एकेश्वरवादी है। किन्तु सूफी संतों ने 'अनहलक' अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' की घोषणा की।

आधुनिक हिन्दी क्षेत्र के बाहर पड़नेवाले दो संत कवियों – महाराष्ट्र के नामदेव और पंजाब के गुरुनानक ने हिन्दी में रचना की। नामदेव की प्रारंभिक रचनाएँ सगुणोपासना और बाद की निर्गुणोपासना से संबंधित हैं। गुरु नानक का संबंध किसी संप्रदाय से जोड़ना कठिन है। ये सिख संप्रदाय के प्रवर्तक एवं प्रथम गुरु हैं।

अब हम भक्ति की निर्गुण और सगुण दोनों काव्य-धाराओं का तथा उनकी उपधाराओं के कवियों और उनकी रचनाओं पर विचार करेंगे।



### भक्ति की निर्गुण धारा : ज्ञानाश्रयी शाखा

भक्ति साहित्य की दो धाराओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनमें से निर्गुण की दो उपधाराएँ संत और सूफी काव्य धारा हैं। संत काव्य धारा को ज्ञानाश्रयी एवं सूफी काव्य धारा को प्रेमाश्रयी कहा जाता है। कबीर ज्ञानाश्रयी शाखा अर्थात् संतकाव्य धारा के प्रमुख कवि हैं और मालिक मुहम्मद जायसी प्रेमाश्रयी अर्थात् सूफी काव्य धारा के कवि हैं। कबीर आदि की धारा को ज्ञानाश्रयी कहने का कारण यह प्रतीत होता है कि इन संतों ने 'ज्ञान' पर सूफियों की अपेक्षा अधिक बल दिया है। कबीर आदि के यहाँ भगवत्प्रेम पर कम बल नहीं है किन्तु सूफी कवि प्रेम का जितना विस्तृत चित्रण करते हैं, कबीर आदि नहीं करते।

### कबीर ( 1398-1518 ई. )

भक्तिकाल की इस निर्गुण संत-काव्य परम्परा में कबीर का स्थान प्रमुख है। उनके जन्म और माता-पिता को लेकर बहुत विवाद है। परन्तु इस बात में कोई विवाद नहीं है कि कबीर जुलाहा थे, क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में स्वयं को कई बार जुलाहा कहा है।

कबीर रामानंद के शिष्य थे। उन्होंने खूब पर्यटन किया, संतों और सूफियों का सत्संग किया। कबीर के काव्य पर वेदांत, अद्वैत, नाथ पंथ के रहस्यवाद, हठयोग, कुंडलिनीयोग, सहजसाधना, इस्लाम के एकेश्वरवाद सभी का प्रभाव मिलता है। कबीर का वाणी-संग्रह 'बीजक' कहलाता है। इसके तीन भाग हैं – रमैनी, सबद और साखी। रमैनी और सबद के अंतर्गत गाने के पद आते हैं। जिनकी भाषा में ब्रज और पूरबी का रूप मिलता है। साखियों में दोहा छन्द के माध्यम द्वारा साम्प्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' कही जाती है, साथ ही उन्होंने साहसपूर्वक जन बोली के शब्दों

का प्रयोग अपनी कविता में किया, बोली के ठेठ शब्दों के प्रयोग के कारण ही आ. हजारी प्रसाद ने उनको 'वाणी का डिक्टेक्टर' कहा है। उनकी तेजस्विता उनकी भाषा-शैली से ही प्रकट होती है।

उन्होंने 'राम' शब्द का प्रयोग भी किया, किन्तु उनके राम दशरथसुत राम नहीं हैं, उन्होंने 'राम' का प्रयोग निर्गुण ब्रह्म के रूप में किया है :

'निर्गुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई'  
'दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना।  
राम नाम का मरम है जाना ॥'

कबीर के काव्य में अन्य तत्त्वों के साथ 'माधुर्य-भाव' भी मिलता है :

'हरि मोर पीउ मैं राम की बहुरिया।'

कबीर ने अज्ञान को मिटाने के लिए आत्मज्ञान का निर्देश दिया और आत्मज्ञान बिना गुरु के नहीं मिल सकता। इसलिए उन्होंने गुरु के महत्त्व को प्रतिपादित किया :

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।  
सतगुरु की किरपा भई सिर तें उतर्या बोझ ॥'

कबीर भक्ति के बिना सारी साधनाओं को व्यर्थ और निरर्थक मानते हैं। वे अपने अनुभव, पर्यवेक्षण और बुद्धि को निर्णायक मानते हैं, शास्त्र को नहीं, इस दृष्टि से वे यथार्थबोध के रचनाकार हैं। इसीलिए वहाँ कथनी और करनी में अंतर नहीं। साथ-साथ वे गहरी मानवीयता और सहृदयता के कवि हैं, अक्खडता और निर्भयता उनके कवच हैं। अपने इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण कबीर आधुनिक भाव-बोध के बहुत निकट लगते हैं। कबीर की व्यंग्यात्मक एवं प्रहारात्मक शैली उनकी खास विशेषता है। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के कट्टरवाद, आडंबर, धर्मांधता, अज्ञानता आदि पर काफ़ी तीव्र प्रहार किए हैं। इसके अलावा 'माया' को भी उनके साहित्य में काफ़ी स्थान मिला है, कबीर ने माया को 'महा ठगिनी' कहा है और बताया है कि माया का पर्दा उठ जाता है, तब सारे भ्रम टूट जाते हैं, आत्मा या ब्रह्म परमात्मा या परब्रह्म में समा जाता है -

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहरि भीतर पानी।  
फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना, यह तत कथौ गियानी।

कबीर की महानता इस बात में थी कि 'मसि कागद छूयो नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ' कहने वाले कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, इसलिए उनका ज्ञान अत्यन्त सरल और व्यावहारिक ढंग से प्रकट हुआ है। उनके ग्रंथ शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध किए गए हैं। इसलिए भाषा, ग्रन्थ-संख्या आदि के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहना बहुत कठिन है। कबीर का मूल और शुद्ध पाठ आज तक नहीं मिला।

### अन्य प्रमुख सन्त कवि

रामानन्द के बारह शिष्यों में से एक **रैदास** भी निर्गुण सन्त काव्य धारा के महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। रैदास भी काशी के रहनेवाले थे। समय 15वीं शताब्दी बताया जाता है। रैदास की कुछ स्फुट बानी मिलती है। 'प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी' इनका प्रसिद्ध भक्तिगीत है। **गुरुनानक** (1469) सिख सम्प्रदाय के संस्थापक थे, ये तलवंडी गाँव के निवासी थे, जो लाहौर से तीस मील दूर था। नानक आत्मज्ञानी थे। उनकी रचनाएँ 'गुरु ग्रन्थ साहब' में मिलती हैं।

दादूपंथ के प्रणेता **दादू दयाल** गुजरात से संबंधित बताए जाते हैं। क्षितिमोहन सेन के अनुसार दादू मुसलमान थे, उनका सही नाम दाउद था। दादू के गुरु का भी पता नहीं है। इनकी बानी में कई स्थान पर कबीर का नाम आया है, इनका मृत्यु-स्थल जयपुर है और वही दादू पंथियों का केन्द्र भी है। इनका संग्रह 'हरडेवानी' के नाम से छापा गया, बाद में एक शिष्य ने इसका संपादन 'अंगवधू' नाम से किया। कबीर की भाँति दादू निर्गुण निराकार की आराधना करते थे। भाषा सहज और सरल है - राजस्थानी से प्रभावित, अरबी-फारसी मिश्रित यह भाषा सुगम है।

दादू दयाल के एक शिष्य **सुंदरदास** का नाम भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। निर्गुण संत कवियों में ये सबसे ज्यादा शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे। इन्होंने गेय पदों के साथ-साथ कवित्त और सवैये भी लिखे। इन्होंने निर्गुण साधना और भक्ति के अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार, लोकनीति और भिन्न-भिन्न आचार व्यवहार पर भी लिखा। लोकधर्म-लोकमर्यादा का ध्यान उन्होंने विशेष रखा।

**रज्जब** भी दादू दयाल के शिष्य और संत परम्परा के कवि थे।

**मलूकदास** का नाम भी इस परम्परा में उल्लेखनीय है, इनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं : 'ज्ञानबोध' और 'रामलीला'।

संतों की परंपरा आगे भी बराबर चलती रही और समय-समय पर नए-नए पंथ निकलते रहे। कबीर की संत परंपरा में दिल्ली में चरणदासी सम्प्रदाय, गाजीपुर में शिवनारायणी सम्प्रदाय, रोहतक में गरीबदासी सम्प्रदाय, रामचरण द्वारा रामसनेही सम्प्रदाय आदि स्थापित हुए। इनके बाद इस परम्परा में दो महत्वपूर्ण सम्प्रदाय बने। सतनामी सम्प्रदाय और राधास्वामी सम्प्रदाय। हिंदी की इस संत-परंपरा में केशवदास, यारी साहब, पलटू साहब, भीखा साहब, सहजो बाई, दयाबाई, दूलनदास आदि अनेक संत कवि हुए, जिनकी केवल स्फूट वाणी उपलब्ध है। इन संत कवियों की विचार परम्परा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं मिलता - कबीर जैसा ही खण्डन-मण्डन और सिद्धान्त-निरूपण मिलता है।

### ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- इन कवियों पर नाथ-संतों की अंतस्साधना का प्रभाव है। हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग इन्होंने खूब किया है।
- इन कवियों ने प्रबंध काव्य में रचना न करके मुक्तक का ही उपयोग किया है।
- इन कवियों ने मनुष्य मात्र की मूलभूत एकता पर बल दिया है तथा वर्णाश्रम व्यवस्था, कर्मकांड पर तीव्र प्रहार किया है।
- इस काव्यधारा में गुरु, भक्ति, साधु-संगति, दया-क्षमा आदि का उपदेश दिया गया है।
- ये निर्गुण संत मूलतः भक्त हैं।
- इन संतों ने 'ज्ञान' पर सूफियों की अपेक्षा अधिक बल दिया है।
- इनकी कविता में भाषा के लोक प्रचलित रूप का अधिक प्रयोग हुआ है।

### प्रेमाश्रयी शाखा ( सूफी काव्य धारा )

इस्लामी शासन स्थापना के साथ ही देश में धार्मिक संघर्ष छिड़ गया था। लेकिन समाज में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मावलंबियों में सौहार्द भाव जगाने की भावना रखते थे। कुछ मुसलमान ऐसे थे जो एक ओर तो सूफी धर्म की प्रचार-भावना में विश्वास रखते थे तो दूसरी ओर हिन्दू धर्म के आदर्शों को सौजन्य की दृष्टि से देखते थे, प्रेम काव्य की रचना का मूलाधार यही भावना है।

प्रेमाश्रयी धारा के कवियों पर इस्लाम के सूफी मत का सबसे अधिक प्रभाव है। सूफी मत का अपना विशेष तत्त्वज्ञान है, किन्तु वह सूफी कवियों में अलग से दिखलाई नहीं पड़ता। इस मत पर आधारित काव्य में प्रेम की उत्कट विरह-व्यंजना और प्रतीकात्मकता है; इसीलिए सूफी कवि 'प्रेम की पीर' के गायक माने गए हैं।

ऐतिहासिक या कल्पित व्यक्तियों के साथ किसी राजकुमारी, सेठ की पुत्री, गणिका या अप्सरा की प्रेमकथा की परंपरा प्राचीन है। किन्तु ये कथाएँ शुद्ध लौकिक प्रेम कथाओं के रूप में प्रचलित थीं। सूफी कवियों ने उन्हें ढाँचे में बाँधा। सूफी काव्य परंपरा के पहले कवि मुल्ला दाऊद हैं। इनकी रचना का नाम '**चंदायन**' है। यह पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की प्रेमकथा पर आधारित है। इसकी भाषा अवधी है।

### कुतुबन

कुतुबन ने 'मिरगावत' नामक ग्रंथ की रचना की थी। ये सोहरावर्दी पंथ के ज्ञात होते हैं। मिरगावत में नायक मृगी रूपी नायिका पर मोहित हो जाता है और खोज में निकल पड़ता है। अंत में शिकार खेलते समय सिंह के द्वारा मारा जाता है।

### मलिक मुहम्मद जायसी ( 1492-1542 ई. )

हिन्दी में सूफी काव्य-परंपरा के श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं। ये अमेठी के निकट जायस के रहनेवाले थे, इसलिए जायसी कहलाए। ये अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं - **अखरावट**, **आखिरी कलाम** और **पद्मावत**। 'अखरावट' में देवनागरी वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर रचना की गई है। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। लेकिन जायसी के कीर्ति का आधार 'पद्मावत' है।

'पद्मावत' प्रेम की पीर की व्यंजना करनेवाला विशद प्रबंधकाव्य है। यह दोहा-चौपाई में निबद्ध मसनवी शैली में लिखा गया है, जिसमें कवि ने अल्लाह हजरत मुहम्मद, गुरुओं, पीरों एवं शेरशाह सूरी आदि की वंदना की है। 'पद्मावत' की काव्य-भूमिका विशद एवं उदात्त है, कवि ने प्रारंभ में ही प्रकट कर दिया है कि जीवन और जगत को देखनेवाली उसकी दृष्टि व्यापक और परस्पर विरोध को आँकनेवाली है। कवि अल्लाह को इस विविधतामय सृष्टि का कर्ता कहता है। विविध प्राणियों, वस्तुओं, स्थितियों का परिगणन करता है, फिर उनमें परस्पर-विरोध देखता है। उनकी दृष्टि सामाजिक विषमता की ओर भी जाती है -

‘कीन्हेसि कोई भिखारि कहि धनी। कीन्हेसि संपत्ति बिपति पुन धनी।

काहू भोग भुगुति सुख सारा। कहा काहू भूख भवन दुख भारा।’

जायसी ये सारी बातें अल्लाह की देन मानते हैं।

'पद्मावत' की कथा चित्तौड़ के शासक रतनसेन और सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती की प्रेम-कथा पर आधारित है। कवि ने इसमें बड़ी कुशलता से कल्पना और ऐतिहासिकता का मिश्रण किया है। इसमें अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण और विजय प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना है। कथा में हीरामन सुग्गा द्वारा संसार की अनिन्द्य सुन्दरी पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन, रतनसेन की रानी नागमती की ईर्ष्या, राजा की सुग्गा के बिना व्याकुलता, सुग्गा के साथ जोगी के वेष में रतनसेन का घर से निकल पड़ना तथा मार्ग की अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए सिंहल द्वीप पहुँचकर पद्मावती से विवाह, राघवचेतन नामक पंडित द्वारा अलाउद्दीन से पद्मिनी के रूप की प्रशंसा, रतनसेन को अलाउद्दीन द्वारा दिल्ली ले जाना, गोरा-बादल का वीरतापूर्वक लड़कर रतनसेन को छोड़ा जाना। पद्मिनी और नागमती रतनसेन के शव के साथ सती हो जाती हैं, जब अलाउद्दीन चित्तौड़ पहुँचता है तो उसे उनकी राख मिलती है।

जायसी ने इस प्रेमकथा को आधिकारिक एवं आनुषंगिक कथाओं के ताने-बाने में बहुत जतन से बाँधा है। 'पद्मावत' मानवीय प्रेम की महिमा व्यंजित करता है। इसका कथानक सुगठित और भाषा शुद्ध अवधी है।

### मंझन

मंझन जायसी के परवर्ती थे। उन्होंने **मधुमालती** की रचना की। इसमें नायक को अप्सराएँ उड़ाकर मधुमालती की चित्रसारी में भेज देती हैं और वहीं नायक नायिका को देखता है। इसमें मनोहर और मधुमालती की प्रेमकथा के समानांतर प्रेमा और ताराचंद की प्रेमकथा चलती है। इसमें प्रेम का बहुत ऊँचा आदर्श रखा गया है।

इन कवियों के अतिरिक्त अन्य सूफी कवि और उनके काव्य इस प्रकार हैं - उसमान ने **चित्रावली**, शेख नबी ने **ज्ञानद्वीप**, कासिम शाह ने **हंसजवाहिर**, नूरमुहम्मद ने **इन्द्रावती** और **अनुराग बाँसुरी** लिखी।

### प्रेमाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- इस काव्यधारा का काव्य प्रेम की पीर की व्यंजना करने वाला काव्य है। प्रेमिका परम सत्ता का प्रतीक है और प्रेमी साधक का।
- सूफी काव्य प्रबंधात्मक है, मुक्तक नहीं।
- यह दोहे-चौपाइयों में निबद्ध मसनवी शैली में लिखा गया है।
- इनकी भाषा अवधी है।

- इस काव्य के प्रायः सभी रचयिता मुसलमान हैं।
- इस धारा में रचित काव्य प्रतीकात्मक हैं। लौकिक कथा के साथ-साथ आध्यात्म की भी व्यंजना करते हैं।
- इन रचनाओं में विरह वर्णन एवं नख-शिख वर्णन श्रेष्ठ कोटि का है।

### भक्ति की सगुण धारा : राम भक्ति शाखा

भक्ति की सगुण धारा की दो उपशाखाएँ हैं – राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा। राम की भक्ति निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के भक्त करते हैं। अंतर 'राम' के अर्थ को लेकर है। कबीर के राम दशरथ सुत नहीं, किन्तु तुलसी के राम दशरथ सुत हैं। हिंदी क्षेत्र के भक्त कवियों का संबंध रामानंद से है। रामानंद, राघवानंद के शिष्य थे और रामानुजाचार्य परंपरा के आचार्य थे। ये काफी उदारमना गुरु थे। हिन्दी के निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के संत कवियों का संबंध उनसे जुड़ा है। उनका कोई काव्य ग्रंथ नहीं मिलता, केवल फुटकर रचनाएँ ही प्रचलित हैं। रामानंद और उनके शिष्यों द्वारा प्रचारित रामभक्ति के वातावरण में राम कथा के श्रेष्ठ हिन्दी कवि और गायक तुलसीदास का आविर्भाव हुआ।

### तुलसीदास ( 1532-1623 ई. )

तुलसी का बचपन घोर दरिद्रता एवं असहाय अवस्था में बीता था। उन्होंने लिखा है कि जन्म के बाद ही इनके माता-पिता ने उनका त्याग कर दिया था। उनके जन्म स्थान के विषय में काफी विवाद है। किन्तु अधिकतर विद्वान राजापुर को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित १२ प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध हैं : दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्न, विनयपत्रिका, रमलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य-संदीपिनी, श्रीकृष्ण गीतावली।

तुलसीदास हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं। उन्होंने हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल में प्रचलित दोनों काव्य भाषाओं ब्रज और अवधी में समान अधिकार से रचना की। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने मध्यकाल में व्यवहृत प्रायः सभी काव्यरूपों का उपयोग किया है। केवल तुलसीदास की ही रचनाओं को देखकर समझा जा सकता है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में किन काव्यरूपों में रचनाएँ होती थीं। उन्होंने वीरगाथाकाव्य की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, गंग आदि कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, रहीम के समान दोहे और बरवै तथा जायसी की तरह चौपाई-दोहे के क्रम से प्रबंध-काव्य रचे। पं. रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में – “हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता किसी और को प्राप्त नहीं।”

‘रामचरितमानस’ तुलसीदास की अनन्य देन है। उनके अन्य ग्रंथ भी राम-भक्ति को ही केन्द्र में रखकर लिखे गए हैं। वे राम के अनन्य भक्त थे। राम ही उनकी कविता के विषय हैं। नाना काव्य रूपों में उन्होंने राम का ही गुणगान किया है, किन्तु उनके राम पर ब्रह्म होते हुए भी मनुज हैं और अपने देशकाल के आदर्शों से निर्मित हैं। तुलसी के राम ब्रह्म भी हैं – मानव भी। तुलसी ने वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुनः प्रतिष्ठित नहीं किया। वे ब्रह्म होते हुए भी ऐतिहासिक स्थितियों के आधार पर व्यक्ति हैं। वे अपार मानवीय करुणा वाले, ‘गरीब निवाज’ हैं।

राम के ब्रह्मत्व और मनुजत्व को लेकर तुलसी के यहाँ जो दार्शनिक स्तर का द्वन्द्व है, उसे तुलसी ने बड़ी कुशलता पूर्वक सहस्थिति बनाकर चित्रित किया है। इसीलिए यूँ देखा जाए ‘मानस’ की पूरी कथा शंकर द्वारा पार्वती के प्रश्न या शंका के निवारण के रूप में ही प्रस्तुत की गई है। वैसे तो वे स्वयं भी ‘रामचरितमानस’ में अनेक मार्मिक अवसरों पर यह उद्घाटित करते हैं कि राम लीला कर रहे हैं। इन्हें सचमुच मनुष्य न समझ लेना। ‘रामचरितमानस’ में यह द्वंद्व बड़ी ही कुशलता से पाया गया है और राम में ब्रह्मत्व और मनुजत्व की सहस्थिति को बताया गया है।

तुलसी-साहित्य में हमें तत्कालीन स्थितियों के चित्रण भी मिलते हैं। विशेष रूप से रामचरितमानस और कवितावली में। दरिद्रता, रोग, अज्ञान, कामाशक्ति आदि कलियुग के प्रभाव से है। तुलसी ने महामारी, अकाल, बेरोजगारी आदि का मार्मिक वर्णन किया है। इसके अलावा उनकी रचनाओं में हमारा समग्र देश उसकी प्रकृति, वन, नदियाँ, पशु-पक्षी, फसलें, भाषा, मुहावरे, सौन्दर्य-असौन्दर्य सब बिखरे पड़े हैं। वे प्रधानतः किसान जीवन के कवि हैं। प्रकृति वर्णन में तो वे जैसे चित्रकार हैं।



नारी जीवन के लगभग सभी पहलुओं को उन्होंने चित्रित किया है, कहीं निन्दा की है, तो कहीं अपार करुणा भी दिखाई है। तुलसीदास ने तत्कालीन विषमताओं से दुःखी होकर ही रामराज्य की कल्पना की है। ऐसा राज्य कि जिसमें दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित सब-कुछ सुखद हो। तुलसी का रामराज्य एक आदर्श व्यवस्था है, इसमें नायक एवं व्यवस्थापक तुलसी के राम हैं।

आदर्शनिर्माण के चलते ही तुलसी ने आदर्श पात्रों का भी निर्माण किया है – वे राम को आदर्श राजा, पुत्र, भाई, पति, स्वामी, शिष्य तथा सीता को आदर्श पत्नी एवं हनुमान को आदर्श सेवक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन सभी के साथ उनका सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा आदर्श है : रामोन्मुखता, उससे विमुख होकर सभी संबंध त्याज्य हैं –

‘जाके प्रिय न राम-वैदेही

तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।’

एक सफल प्रबंधकार के रूप में भी तुलसीदास की छवि महत्वपूर्ण बनती है। उन्हें प्रबन्ध की कथा के नियोजन की पहचान थी, मार्मिक स्थलों की पहचान थी, वे पात्रों के भीतर पैठकर उसके व्यवहार को परख लेते थे। तभी तो उनके चित्रण के आधार पर कहा जाता है, ‘वे मानव-मन के परम-कुशल चित्ते हैं।’ रामचरितमानस में इस बात के दृष्टांत यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। जैसा अधिकार उन्हें प्रबन्ध-रचना पर था वैसा ही मुक्तक-रचना पर था। भाषा की दृष्टि से उनका ब्रज और अवधी पर समान अधिकार था।

तुलसी की महानता इसमें है कि वे लोक कवि हैं। उनकी भाषा लोकभाषा है। उनकी दी गई रामराज्य-आदर्श राज्य की कल्पना भी लोक हित के लिए है, इसलिए वे लोकनायक हैं। रामभक्ति शाखा के अन्यतम कवि तुलसीदास हिंदी भाषी जनता के सर्वाधिक प्रिय कवि हैं।

हालांकि तुलसीदास रामभक्ति शाखा के एक मात्र चमकते सितारे हैं, पर कई ऐसे कवि भी हैं जिन्होंने इस धारा में अपना योगदान दिया है। इतिहास की दृष्टि से इनका योगदान भी उल्लेखनीय है :

### नाभादास ( 16वीं शताब्दी )

इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है ‘भक्तमाल’। इस ग्रन्थ का अभूतपूर्व ऐतिहासिक महत्त्व है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें मध्यकालीन कवियों रामानंद, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि के संदर्भ में अनेक तथ्यों का पता लग जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का यह एक आधारभूत ग्रंथ है।

रामभक्ति शाखा में प्राणचंद चौहान (17वीं सदी) का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने संवादशैली में ‘रामायण महानाटक’ लिखा। हृदयराम ने 1613 ई. में ‘भाषा हनुमन्नाटक’ लिखा। ‘रामचंद्रिका’ को ध्यान में रखा जाए तो केशव रामभक्ति शाखा के कवि ठहरते हैं किन्तु साहित्य के इतिहास की दृष्टि से वे रीतिकालीन आचार्य माने जाते हैं। उनका महत्त्व उसी दृष्टि से अधिक है। केशवदास ने ‘रामचन्द्रिका’ की रचना 1601 ई. में की थी।

### रामभक्ति काव्य धारा की प्रवृत्तियाँ

- यह साहित्य विशेष रूप से सामाजिक मर्यादा और लोकमंगल का साहित्य है।
- इस काव्य में राम को ‘मर्यादा पुरुषोत्तम’ के रूप में चित्रित किया गया है।
- इस धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने प्रचलित प्रायः सभी काव्यरूपों, छंदों और लोकगीतों के रूपों का उपयोग किया है।
- रामभक्ति काव्य में वैष्णव और शैव संप्रदायों में सामंजस्य लाने का प्रयास मिलता है।
- इस धारा में कुछ रसिक कवि भी हुए लेकिन उन्हें लोकप्रियता नहीं मिली।
- लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांतः सुखाय थी।

- रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई छंद में हुई है।

### कृष्णभक्ति शाखा

महाप्रभु वल्लभाचार्य (1977-1530) ने कृष्णभक्ति धारा की दार्शनिक पीठिका तैयार की और देशाटन करके इस भक्ति का प्रचार किया। भागवत धर्म का उदय प्राचीनकाल में ही हो गया था। श्रीमद्भागवत के व्यापक प्रचार से माधुर्य भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

कृष्णभक्ति में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम और आत्मचिंतन की अपेक्षा आत्मसमर्पण की भावना प्रधान पाई जाती है। वल्लभाचार्य के अनुसार जिस भक्ति से कृष्ण या ब्रह्म की अनुभूति होती है वह स्वयं कृष्ण के अनुग्रह स्वरूप है, इस अनुग्रह का नाम पुष्टि है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य स्वयं सत्संगी और परम विद्वान् थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का विशाल मंदिर बनवाया, वहीं अपनी गद्दी स्थापित की। मंदिर में होनेवाली कृष्णभक्ति की उपासना से हिन्दी साहित्य की कृष्ण भक्ति शाखा का गहरा संबंध है।

### सूरदास ( 1478-1583 ई. )

कृष्ण-काव्य में भक्ति की परंपरा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सूरदास का है। सूरदास विठ्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के सर्वप्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनका समय और स्थान संदिग्ध है, किन्तु 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन' की वार्ता में इनके बारे में काफी जानकारी मिलती है। सूर ने स्वयं अंतःसाक्ष्य प्रमाण के रूप में अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं कहा। किन्तु यह निर्विवाद है कि सूरदास गायक थे गौघाट पर निवास करते थे, विनय के पद गाते थे, पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे। अकबर से भेंट भी की थी और अंत में परासोली में प्राण छोड़े थे। अंध थे, किन्तु किस अवस्था में अंध हुए यह नहीं कहा जा सकता। हालाँकि सूरदास ने अपने आपको 'जन्म आँधर' कहा है, किन्तु इसके शब्दार्थ पर जाए बिना हमें यह देखना होगा कि उनके काव्य में प्रकृति और जीवन का जो सूक्ष्म सौंदर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतर्द्वंद्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ दी थी। इस सबसे यह निश्चित हो जाता है कि वे जन्मांध नहीं थे कालान्तर में अपनी आँखों की ज्योति खो बैठे थे।

सूरदास के ग्रंथों में सूरसागर, सूर सारावली और साहित्यलहरी विशेष रूप में उल्लेखनीय है। इनमें सूर सारावली और साहित्य लहरी सूरदास की है या नहीं इनमें मतभेद है, किन्तु सूरसागर के बारे में ऐसा कोई मतभेद नहीं। इसकी रचना 1530 के बाद मानी जाती है। इसका आधार भागवत है और इसमें विष्णु के अवतारों, विनय, भक्ति और पौराणिक कथाओं का चित्रण है।

एक यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि जिस समय वल्लभाचार्य और सूरदास की भेंट हुई तब तक वे विनय के पद ही गाया करते थे और अत्यन्त दीनभाव के साथ-साथ संसार की निःसारता का अनुभव करते थे। महाप्रभु ने उनकी प्रतिभा को पहचाना। उनसे 'घिघियाना' छुड़वाकर उन्हें माधुर्य भक्ति की ओर खींचा और वात्सल्यभाव के गायन की शक्ति को बताया। इसी से सूरदास कृष्णभक्ति की ओर प्रेरित हुए। उनकी रचनाओं में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य पाँचों प्रकार के भक्तिभाव समाविष्ट हैं, किन्तु सबसे अधिक माधुर्यभाव है।

मूल रूप से सूरदास माधुर्य वात्सल्य और शृंगार के कवि हैं। वात्सल्य के क्षेत्र में भारतीय ही नहीं विश्वस्तर पर उनके कोई समकक्ष नहीं, यह उनकी ऐसी विशेषता है कि मात्र इसी के आधार पर वे साहित्य के क्षेत्र में अत्यंत ऊँचे स्थान के अधिकारी माने जा सकते हैं। बाल जीवन का ऐसा निरीक्षण और चित्रण कोई महान मानवप्रेमी और सहृदय व्यक्ति ही कर सकता है। सोने में सुहागा यह है कि सूरदास ने वात्सल्य और शृंगार का वर्णन जनसामान्य की भाव भूमि पर किया है। मार्मिकता, मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता ये सभी जीवन के यथार्थ के रूप में विविध आयामों में सूर साहित्य में आए हैं। किन्तु सूर ने इन्हें जितना सहज बनाया है, उतने ही सहज तौर से महान और आध्यात्मिक संदर्भ से जोड़ दिया है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीला और कृष्ण की बाल लीला को प्रकृति और कर्म के विशाल क्षेत्र का संदर्भ प्रदान कर दिया है। लोक साहित्य की

जैसी जीवन्तता सूरदास में है ऐसी कहीं नहीं। सूर का बाललीला वर्णन अत्यंत मार्मिक, मनोवैज्ञानिक और जीवन्त है -  
मैया कबहिन बढैगी चोटी।

कितिक बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

तू जो कहति, 'बल' की बेनी सम हवै हैं लांबी मोटी।

इसके अतिरिक्त सूरदास ने लौकिक आचारों में जन्मोत्सव, छठी नामकरण, अन्य प्रसंग आदि का वर्णन भी किया है। पुष्टिमार्गियों के नित्य होनेवाले कीर्तन का भी उन्होंने सुंदर वर्णन किया है।

सूरदास के वात्सल्य वर्णन में एक ऐसा पक्ष भी है जो वियोग से जुड़ा है और अत्यन्त मार्मिक है। कृष्ण के चले जाने पर नंद यशोदा की व्याकुलता का वर्णन इसके अंतर्गत आता है। कृष्ण से जुड़ी मधुर स्मृतियाँ उन्हें विकल कर देती हैं। उनकी इस व्याकुलता में सारा ब्रज शामिल है।

राधा और कृष्ण का प्रेम सूर के यहाँ परिचय से प्रारंभ होता है और जन्म-जन्मांतर के साथ में बदल जाता है। प्रकृति और कर्मक्षेत्र में यह प्रेम पुष्पित और प्रल्लवित होता है। विशेषता यह है कि यह प्रेमलीला जीवनलीला से कहीं भी अलग नहीं है। सूर का यह पद जीवन्त चित्र का अद्भुत उदाहरण है :

‘बूझत स्याम कौन तू गोरी।

कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी।

काहे कौ हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।

सुनत रहति स्रनावननि नंद ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी।

तुम्हारौ कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी।

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ॥

सूर ने राधा और गोपियों के माध्यम से तत्कालीन नारी सम्बन्धी विचारों को भी स्थान दिया है। उस समय नारी स्वाधीन नहीं थी, किन्तु सूरदास ने गोपियों के माध्यम से नारियों को उस चार दीवारी और सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने के लिए प्रेरित किया है जो उनकी साधना में बाधक है। सूर साहित्य में रासलीला साधना का प्रतीक है।

इसी तरह उनका विरह-वर्णन भी अद्वितीय बन पड़ा है। गोपियाँ और राधा कृष्ण के विरह में ब्रज में अत्यधिक व्याकुल हो रही हैं। राधा तो इस पीड़ा को सहन न कर सकने के कारण विक्षिप्त-सी हो गई है। उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता, मात्र कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को याद करते-करते वह बावरी हो गई है, मलीन हो गई है -

‘अति मलीन वृषभानु कुमारी

हरि-स्रमजल अंतर-तनु भीजे, ता लालच न धुआवति सारी ॥

अधोमुख रहति उरध नहीं चितवति ज्यों, गथ हारे थकित जुआरी ॥

छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ॥

हरि-संदेश, सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिनि दूजे अलिजारी ॥

सूर स्याम बिनु यों जीवति हैं, ब्रजबनिता सब स्यामदुलारी ॥

इसके अलावा यशोदा का वात्सल्य विरह भी ‘संदेशो देवकी सो कहियो,’ नामक पद में मार्मिक ढंग से व्यक्त हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं सूरदास हिन्दी साहित्य में कृष्ण के जीवन से संबंधित प्रसंगों को अमर कर गए हैं। वे मुक्त सम्राट है जहाँ राम-भक्ति के क्षेत्र में तुलसीदास को प्रबंधों की रचना करनी पड़ी वहाँ सूरदास मुक्तकों के माध्यम से साहित्य में अपना अमर स्थान बना गए। ब्रज-भाषा को उन्होंने चरम उत्कर्ष प्रदान किया। इस प्रकार वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने सूरदास को

अष्टछाप के कवियों में जो महत्त्वपूर्ण स्थान दिया सूर ने उसे सार्थक किया और व्यक्ति एवं साहित्य के बीच का सेतु बने।

**नंददास :** नंददास 16वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में भक्तमाल में लिखा है 'चन्द्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम-पथ में पगे।' दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता के अनुसार ये तुलसीदास के भाई थे, किन्तु अब यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जाती। इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है: 'और कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' इसमें प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला-पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम इस प्रकार हैं - रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, भागवत दशम स्कंध, रुक्मिणी मंगल, रूपमंजरी, रसमंजरी, दानलीला, मानलीला आदि। इनके यश का आधार रासपंचाध्यायी है। रासपंचाध्यायी भागवत के 'रासपंचाध्यायी' अंश पर आधारित है। यह रोला छंद में रचित है। कृष्ण की रासलीला का वर्णन इस काव्य में कोमल एवं सानुप्रासिक पदावली में किया गया है, जो संगीतात्मकता से युक्त है :

'ताही छन उडुराज उदित रस-रास-सहायक,  
कुं कम-मंडित-बदन प्रिया जनु नागरि नायक।  
कोमल किरन अरुन मानो बन व्यापि रही यों,  
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्यों।'

भँवर गीत में उन्होंने रोला, छंद के साथ ध्रुवक जोड़कर उसे और अधिक संगीतात्मक बना दिया है। सिद्धांत पंचाध्यायी भक्ति सिद्धांत का परिचायक ग्रंथ है और रसमंजरी नायिका भेद का। रूप मंजरी में इसी नाम की एक भक्त महिला का चरित्र वर्णित है। नंददास ने अनेक काव्य-रूपों में रचना की है। वे काव्य-शास्त्र से सुपरिचित कवि ज्ञात होते हैं।

अष्टछाप के शेष कवियों ने भी लीला-गान के पद कहे हैं, जो प्रधानतः शृंगारी हैं। राधा और कृष्ण के रूप एवं शृंगार के साथ-साथ उनके चरित का गुणगान इन कवियों का विषय रहा है। इनकी रचनाएँ बहुत कुछ समान हैं।

**कुंभनदास :** ये वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्य थे। जाति से शूद्र थे, किन्तु इन्हें मंदिर में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। इन्हें परमानंददास का समकालीन माना जाता है। इनकी प्रसिद्धि एक विशिष्ट प्रसंग से है। कहा जाता है कि एकबार अकबर ने इन्हें अपनी राजधानी फतेहपुर सीकरी बुलाया था, किन्तु अत्यन्त स्वाभिमानी होने के कारण इन्होंने जवाब दिया था -

'संतन को कहा सीकरी सों काम,  
आवत जान पनहियाँ घिस गई बिसर गयो हरि नाम।'

इनका कोई संपूर्णग्रंथ नहीं मिलता मात्र कुछ फुटकर पद मिलते हैं।

अष्टछाप के इन कवियों के अलावा छीत स्वामी, गोविंद स्वामी और चतुर्भुजदास के भी फुटकर पद मिलते हैं जिनसे कृष्णभक्ति का लगातार प्रवाह रहता है। इनके अलावा राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश का भी नाम इस धारा में उल्लेखनीय है।

### नरोत्तमदास ( 1493-1542 ई. )

नरोत्तमदास सीतापुर में बाड़ी नामक स्थान के निवासी थे। उनका 'सुदामाचरित' अत्यंत प्रसिद्ध ग्रंथ है। जो हिन्दी साहित्य का अमूल्य धरोहर है। यह ब्रजभाषा में है। उनकी भाषा भी व्यवस्थित और परिमार्जित है।

### मीराबाई ( 1498-1546 ई. )

मीरा के जीवन के विषय में तथा उनके व्यक्तित्व के संदर्भ में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। इनका विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। कहा जाता है कि विवाह के कुछ वर्षों पश्चात् जब उनके पति का देहांत हो गया तो ये साधु-संतों के बीच भजन-कीर्तन करने लगीं। राणा परिवार को यह पसंद नहीं था। उन्होंने मीरा को नाना प्रकार के कष्ट दिए। खिन्न होकर मीरा ने राजकुल का त्याग कर दिया। इनकी मृत्यु द्वारिका में हुई।

मीरा मध्यकालीन नारी के स्थिति का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसा समाज और ऐसी तथाकथित मर्यादा कि जिसमें नारी

भक्ति के लिए भी स्वतंत्र नहीं थी। तभी तो मीरा ने गोपियों की तरह विद्रोह का मार्ग अपनाया था।

मीरा ने अपने इष्टदेव गिरधर नागर का जो रूप चित्रित किया है, वह अत्यंत मोहक है। वे भक्त कवयित्री हैं। उनकी व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविता में निश्चल अभिव्यक्ति पाती है।

मीरा के काव्य में निर्गुण-सगुण दोनों साधनाओं का प्रभाव है। नाथ मत का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने रामकथा से संबंधित कुछ गेयपद भी लिखे हैं।

### रसखान ( 1548-1628 ई. )

रसखान पठान सरदार थे। इनका उल्लेख 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मिलता है। माना जाता है कि गोसाईं विठ्ठलदास से दीक्षा लेकर रसखान लौकिक प्रेम से कृष्णप्रेम की ओर उन्मुख हुए। इनकी प्रसिद्ध कृति 'प्रेमवाटिका' है। इसका रचनाकाल 1614 ई. माना जाता है।

रसखान ने कृष्ण का लीलागान 'कवित्त-सवैयों' में किया है। सवैया छंद उन्हें सिद्ध था। जितने सरस, सहज, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य हिन्दी कवि के हों। रसखान का कोई ऐसा सवैया नहीं मिलता जो उच्च स्तर का न हो। उनके सवैयों की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियों की योजना में है। वही योजना रसखान के सवैयों के ध्वनि-प्रवाह में है। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है। रसखान सूफियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला पर काव्य रचते हैं। उनमें उल्लास, मादकता और उत्कटता तीनों का संयोग है। ब्रज-भूमि के प्रति जो मोह रसखान की कविताओं में दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशेषता है। रसखान प्रेम-भावना की अछूती स्थितियों की योजना करते हैं। इसलिए रसखान के यहाँ दूसरों की कही हुई बातें कम मिलेंगी। निम्नलिखित सवैये में गोपी की जिस मनःस्थिति का चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह समूचे भक्तिकाव्य में दुर्लभ है -

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।

ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन गोधन ग्वालन संग फिरौंगी।

भावतो सोई मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।

या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।

अर्थात् सब स्वाँग किया जा सकता है, किन्तु कृष्ण के अधरों पर रखी हुई मुरली को अपने अधरों पर रखने का स्वाँग नहीं किया जाएगा।

### रहीम ( 1556-1627 ई. )

रहीम का पूरा नाम अब्दुरहीम खानखाना था। उनकी गणना कृष्ण भक्त कवियों में ही की जा सकती है। रहीम ने 'बरवै-नायिका भेद' भी लिखा है, जिससे उनकी यह रचना तो निश्चित रूप से रीतिकाव्य की कोटि में रखी जाएगी, किन्तु रहीम को भक्त हृदय मिला था। उनके भक्तिपरक दोहे उनके व्यक्ति और रचनाकार का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं। कहते हैं, उनके मित्र तुलसी ने बरवै रामायण की रचना रहीम के बरवै काव्य से उत्साहित होकर की। रहीम सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति बैरम खाँ के पुत्र थे। वे स्वयं योद्धा थे। गंग ने रहीम पर जो छप्पय लिखा है, उससे प्रकट होता है कि रहीम पराक्रमी सेनानी थे।

'खलभलित सेस कवि गंग भन-अमित तेज रविरथ खस्यो।

खानान खान बैरम सुवन जबहिं क्रोध करि तंग कस्यो।'

रहीम अरबी, फारसी, संस्कृत आदि कई भाषाओं के जानकार थे। वे बहुत उदार, दानी और करुणावान थे। अंत में उनकी मुगल दरबार से नहीं पटी और अनुश्रुति के अनुसार उनके अंतिम दिन तंगी में गुजरे। रहीम की अन्य रचनाएँ हैं : रहीम दोहावली या सतसई, शृंगार सौरठा, मदननाष्टक, रासपंचाध्यायी। उन्होंने खेल कौतुक नामक ज्योतिष का भी ग्रंथ रचा है, जिसकी भाषा संस्कृत-फारसी मिश्रित है। रहीम ने तुलसी के समान अवधी और ब्रज दोनों में अधिकारपूर्वक काव्य-रचना की है।

रहीम के भक्ति और नीति के दोहे आज भी लोगों की जुबान पर हैं।

### कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- यह काव्य कृष्ण की लीला पर आधारित लीला काव्य है।
- कृष्णभक्ति काव्य प्रधानतः शृंगार काव्य है।
- वात्सल्य सख्य, माधुर्य एवं दास्य भाव की भक्ति का प्राधान्य इस काव्य में है।
- इसमें संयोग एवं वियोग दोनों का उत्कृष्ट वर्णन है।
- कृष्ण भक्ति काव्य ब्रजभाषा में है।
- गेय शैली का प्रयोग हुआ है।
- संपूर्ण साहित्य मुक्तक शैली में है।
- कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रह्म के सगुणरूप का मंडन और निर्गुण रूप का खंडन है।
- कृष्ण भक्ति काव्य रीति काव्य का आधार बना।

### भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्तिकाल सही अर्थ में हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है। क्योंकि यह लोक से जुड़ा हुआ साहित्य था। इसने लोकजीवन को रस-रंजित कर दिया था। भारत की सभी भाषाओं के साहित्य पर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव है। हिन्दी भक्त कवियों ने आध्यात्मिक साधना की ही बात नहीं की, उन्होंने सामंतवादी युग में सामंतवादी व्यवस्था की अमानवीयता की आलोचना की, यथासंभव हर प्रकार की पीड़ा एवं हिंसा का विरोध किया। इस युग ने अनेक श्रेष्ठ कवि दिए - कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, नानक आदि। मुसलमान कवियों का विशेष योगदान इस युग की विशेषता है। सगुण भक्ति में रसखान-रहीम का आविर्भाव अद्वितीय घटना है। प्रबंधकार सूफी कवि भी अन्य भाषा-साहित्य में शायद ही मिलें। इसका कारण यह है कि इस्लामी संस्कृति का प्रभाव सबसे पहले उत्तर भारत में हुआ। उसकी पहली टक्कर यहीं हुई, इसलिए साधनाओं का समन्वय भी यहाँ अधिक दिखाई पड़ा। यह साहित्य व्यापक मानवीय संवेदना के साथ-साथ व्यवस्थाओं को चुनौती देनेवाला साहित्य है।

### रीति काल ( 1700-1850 ई. )

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित है। (1) भक्तिकाल और (2) रीतिकाल। भक्तिकाल के बाद जिन परिस्थितियों में रीतिकाल का आविर्भाव हुआ वे परिस्थितियाँ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी प्रकार की थीं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल के उद्भव पर विचार करते हुए उसमें आर्थिक कारणों को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना, किन्तु अन्य कारण भी काफी महत्वपूर्ण थे। द्विवेदी के अनुसार आर्थिक कारण इस प्रकार कि जब भक्तिकाल के समय से ही मुगलकाल के अंतिम समय में आर्थिक दृष्टि से समाज में दो वर्ग हो गये थे। (1) जिसमें उत्पादक वर्ग था (2) समृद्ध भोक्ता वर्ग था। उत्पादक वर्ग का काम भोक्ता वर्ग को प्रसन्न करके जीविका निर्वाह करना था। इसलिए उन्होंने प्राचीन ग्रंथों का जिनमें रसशास्त्र, कामशास्त्र और नाट्यशास्त्र आदि मुख्य थे सहारा लिया और भोक्ताओं और आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए काव्य रचना करने लगे। यही साहित्य रीतिकाल का साहित्य कहलाया।

दूसरी ओर एक यह मत भी है कि सत्रहवीं शताब्दी में जब धार्मिक आंदोलन की पवित्रता समाप्त हो गई तो प्रेम और शृंगार से डूबे हुए वासनामय साहित्य को स्थान मिला। राधा-कृष्ण का लीलारूप कवित्त और सवैयों में आने लगा। यही कारण था कि कवियों ने जीवनयापन के लिए राजदरबारों का आश्रय लिया। अपने आश्रयदाता राजाओं पर कविता लिखी। जो शृंगार में डूबी हुई थी और बहाना बनाया राधा-कृष्ण की कविता का। इनका सूत्र था -

“आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई नाहिं तौ राधा-कन्हाई को सुमिरन को बहानो है।”

इसी गुण के कारण कुछ लोग इसे शृंगारकाल भी कहते हैं, किन्तु शृंगारकाल कहना उचित नहीं है क्योंकि इस युग में मात्र शृंगार नहीं लिखा गया। कवि भूषण ने वीररस की कविता भी की है।

रीतिकाल का आशय रीति अर्थात् कवित्त रीति या सुकवि रीति अथवा काव्यरीति सम्बन्धीकाल से भी लिया गया, क्योंकि इस युग में काव्य रीति के ग्रन्थों में काव्यांग निरूपण का प्रयास किया गया। किन्तु इस बहाने से बात तो कवियों ने शृंगार की ही की। रीति और शृंगार एक दूसरे से भलीभाँति जुड़कर आए। इस काल के काव्य की विशेषता यह रही कि इसके अधिकतर कवि राज्याश्रित थे। इन कवियों में कुछ ऐसे थे जो **रीतिबद्ध** कहलाए, जिन्होंने रीतिशास्त्र के बंधन में कविता लिखी। कुछ रीति **मुक्त** कहलाए जो इन बंधनों से मुक्त थे तथा कुछ **रीति सिद्ध** कहलाए, जिन्होंने रीतिशास्त्र पर सिद्धि हाँसल कर ली थी। वे उसे जानते-समझते थे किन्तु बाँधे हुए नहीं थे। साथ-साथ इस युग में आचार्य और कवि ऐसे दो रूप भी देखे गए। क्योंकि कुछ विद्वान ऐसे थे कि जिन्होंने मात्र रीतिग्रन्थ लिखे वे आचार्य कहलाए और कुछ ऐसे थे कि जिन्होंने रीतिशास्त्र भी लिखा और उसे समझाने के लिए उसमें काव्य रचना भी की। वे आचार्य-कवि कहलाए। इन काल की काव्यभाषा प्रमुख रूप से ब्रजभाषा है। यह युग मुक्तकों का युग है। इस काल में जो कुछ भी लिखा गया उस पर राजनैतिक और सामाजिक वातावरण का असर है।

### प्रमुख रीतिबद्ध कवि

#### केशवदास ( 1555-1617 ई. )

केशवदास ने हिन्दी में सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचना की। वे हिन्दी के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उनका मत अलंकारवादी है। कुछ विद्वान मानते हैं कि उन्होंने आनंदवर्धन, मम्मट और भामह आदि आचार्यों का अनुकरण करके अपना मत दिया है। उनके मन में मौलिकता नहीं है किन्तु हिन्दी काव्यशास्त्र की दृष्टि से उनका स्थान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

केशवदास ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के सभा-कवि थे। इनका वहाँ बहुत सन्मान था। इनके ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण है - कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंह चरित, विज्ञान गीता, रतनबावनी और जहाँगीर-जस चंद्रिका।

इन ग्रन्थों में कविप्रिया और रसिकप्रिया हिन्दी काव्यशास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। रामचंद्रिका, रामकाव्य परंपरा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी संवाद-शैली अद्वितीय है, किन्तु उत्तम काव्य के अन्य गुण केशव के हाथों से सरक जाते हैं। क्योंकि उनकी चमत्कार प्रियता, छंदज्ञान का उपयोग करने की लालच, अलंकारों का उपयोग करने की आतुरता और वाग्विदग्धता उनकी सहृदयता को कुंठित कर देती है। फिर भी हिन्दी काव्यशास्त्र में केशवदास का काफी महत्त्व है।

#### देव ( 1673-1767 ई. )

देव का पूरानाम देवदत्त है। वे रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। वे अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ रहे और उनकी रुचि के अनुकूल रचनाएँ कीं। इनके प्रमुख ग्रंथ 'भावविलास', 'भवानी विलास', 'रस विलास', 'सुखसागर तरंग', 'अष्टयाम', 'प्रेमचंद्रिका', 'काव्य रसायन' आदि हैं।

देव ने लक्षण-ग्रंथ लिखे हैं, परन्तु वे मूलत आचार्य नहीं, कवि हैं। इन्होंने प्रकृति के क्रियाकलाप को देखकर अनेक उत्तम रूपक बाँधे हैं।

डार द्रुम पालना बिछौना नव पल्लव के,  
सुमन झिंगूला सोहै तन छवि भारी दे।  
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै देव  
कोकिल हलावै-हुलसावै कर तारी दै।  
पूरित पराग सों उतारो करे राई नोन,  
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।  
मदन महीप जू को बालक वसंत ताहि,  
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

**भूषण ( 1613-1715 ई. )**

भूषण रीतिकाल के दो प्रसिद्ध कवियों चिंतामणि और मतिराम के सगे भाई थे। इन्हें 'भूषण' नाम चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने दिया था। ये वीर रस के कवि थे। इन्होंने 'शिवराज भूषण', शिवा बावनी, छत्रसाल दसक नामक ग्रन्थ लिखे हैं।

रीति कालीन कविता के मुख्य स्वर शृंगार से हटकर भूषण ने वीररस में कविता लिखी। उन्होंने अपनी काव्य पंक्तियों में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख किया है। शिवाजी के प्रति उनकी निष्काम भक्ति उनके काव्य में झलकती है।

**मतिराम ( 1603-1701 ई. )**

मतिराम रीति काल के प्रसिद्ध आचार्य कवि हैं। ये कवि भूषण और चिंतामणि के भाई हैं। 'छंदसार', 'रसराज', 'साहित्य सार', 'लक्षण शृंगार' और 'ललित ललाम' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। मतिराम की भाषा सरल तथा प्रवाहयुक्त है। शब्द चयन में उन्हें निपुणता हासिल है। उनकी भाषा ब्रजभाषा है। वे रीतिकालीन चमत्कारिता से लगभग अछूते रचनाकार हैं।

**पद्माकर ( 1753-1833 ई. )**

पद्माकर का जन्म बाँदा में हुआ था। वे रीतिकाल के अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि हैं। जयपुर और ग्वालियर के दरबारों में इनका बड़ा आदर था। इनके प्रमुख ग्रंथ 'हिम्मत बहादुर बिरुदावली', 'जगद्विनोद', 'पद्माभरण', 'प्रबोध पचासा', 'राम रसायन', 'गंगालहरी' प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

पद्माकर की कविता शृंगार, भक्ति और वीरता तीनों क्षेत्रों से समान रूप से जुड़ी है। वे विभिन्न भावों के अनुरूप भाषा को सहज रूप से ढाल लेने में कुशल थे।

पद्माकर के काव्य की विशेषता भावों को व्यंजित करने में समर्थ सजीव चित्र खींच देने में है -

फागु की भीर अभीरन में गहि गोबिंद लै गई भीतर गोरी,  
भाइ करी मन की पद्माकर ऊपर नाई अभीर की झोरी।  
छीनि पितंबर कम्मर तें विदा दर्ई मीड़ि कपोलन रोरी,  
नैन नचाय कही मुसुकाय लला फिरि आइयो खेलन होरी।

**गंग ( 16 वीं शताब्दी )**

गंग अकबर के दरबारी कवि थे। ये रहीम के मित्र थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इनकी कविताएँ मुख्यतः शृंगार की हैं। समकालीन और परवर्ती कवि इनका नाम बड़े सम्मान से लेते हैं।

**प्रमुख रीति सिद्ध कवि****बिहारी ( 1600-1663 ई. )**

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि रहे। वे रीतिसिद्ध कवि थे, उन्होंने रीतिग्रन्थ नहीं लिखा किन्तु काव्यरीति उनकी रचनाओं में रची-बसी है। बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। 'बिहारी-सतसई' उनकी कीर्ति का आधार है। इसके बारे में कहा जाता है :

“सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।

देखन में छोटे लगेँ घाव करेँ गंभीर ॥”

बिहारी सतसई की जितनी टीकाएँ लिखी गई उतनी शायद किसी ग्रंथ की लिखी गई हों। बिहारी मूलतः शृंगार के कवि हैं, हालांकि भक्ति और नीति के भी कुछ दोहे उन्होंने लिखे हैं। बिहारी की बहुज्ञता उनके दोहों से बरबस प्रकट होती है। वैदक, ज्योतिष, गणित, रसोई आदि का ज्ञान तथा दैनंदिन जीवन के चित्रों में देवर, जेठ, भाभी, ननद, सास, पड़ोसिन एवं प्रकृति के अनेक चित्र मिलते हैं।



बिहारी का प्रस्तुत दोहा ऐतिहासिक महत्त्व रखता है :

“नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास इहि काल।

अली कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल ॥”

बिहारी ने दोहे छन्द को उसके सौन्दर्य की चरमसीमा पर पहुँचा दिया। उनका एक-एक दोहा जैसे गागर में सागर है। एक संपूर्ण चित्र है। उनकी भाषा उत्कृष्ट ब्रजभाषा है, उनकी शैली सामासिक है। सबसे छोटे छन्द ‘दोहा’ में उन्होंने सबसे बड़ी बात कह दी है।

“तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस-राग, रति-रंग।

अनबूड़े, बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग ॥”

### प्रमुख रीतिमुक्त कवि

#### घनानंद ( 1673-1760 ई. )

घनानंद का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में हुआ था। वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी थे। कहा जाता है कि सुजान नाम की नर्तकी से वे प्रेम करते थे। उसी से संबद्ध एक घटनाक्रम में बादशाह ने आज्ञा के उल्लंघन के अपराध में घनानंद को दरबार से निकाल दिया था। विरक्त होकर वे वृन्दावन चले गए और वैष्णव होकर काव्य रचना करने लगे। उनकी कविता में ‘सुजान’ शब्द बार-बार आता है। प्रेम के संबंध में प्रेयसी का और भक्ति के संबंध में कृष्ण का सूचक बनकर आता है।

वे मूलतः प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। प्रेम की पीर और उसकी गूढ़ अंतर्दशाओं के चित्रण में वे बेजोड़ माने गए हैं। शृंगार के अंतर्गत विरह का उन्होंने बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। इनका नायिका वर्णन भी बड़ा सूक्ष्म व सहज है। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार है। ‘सुजान सागर’, ‘विरहलीला’, ‘कोकसार’, ‘रसकेलि वल्ली’ और ‘कृपाकांड’ इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

#### आलम ( 18वीं शताब्दी )

कवि आलम औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम के आश्रय में रहते थे। वे ब्राह्मण थे किन्तु उन्होंने शेख नामक रंगरेजिन से विवाह कर लिया। वह भी कवयित्री थी। आलम के संग्रह का नाम ‘आलम केलि’ है। ये प्रेम की दीवानगी के कवि हैं।

#### बोधा ( 18 वीं शताब्दी )

बोधा पन्ना नरेश के राज्याश्रित कवि थे। पन्ना दरबार की सुभान या सुबहान नामक नर्तकी से इन्हें प्रेम था, इनका ‘बिरहबारीश’ उसी से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इनकी दूसरी रचना ‘इश्कनामा’ है। इनकी रचनाओं में ‘प्रेम की पीर’ की सुंदर व्यंजना हुई है।

#### ठाकुर ( 1774-1823 ई. )

ठाकुर का जन्म ओरछा में हुआ था। इनके पूर्वज काकोरी (अवध)के निवासी थे। इनकी कविता हृदय की सच्ची अनुभूति की कविता है। उन्होंने लिखा है कि मीन, मृग, खंजन जैसे उपमानों का प्रयोग सीख लेने से कविता नहीं आती। कविता की बात बहुत बड़ी होती है, लोग सभी के बीच कविता ऐसी गिराते हैं मानो ढेला -

ढेल सो बनाय आय मेलत सभी के बीच

लोगन कवित्त कीन्हों खेल करि जान्यो है।

#### गुरु गोविंदसिंह ( 1666-1708 ई. )

सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह का व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे मध्यकालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रतीक थे। वे योद्धा, संत, राजनीतिज्ञ, कवि, प्रशासक सब कुछ थे।

गुरु गोविंदसिंह के रचित अनेक ग्रंथ बताए जाते हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह 'दशम ग्रंथ' है। इसमें 16 रचनाएँ संकलित हैं। इन्होंने पंजाबी, फारसी और हिन्दी (ब्रजभाषा) में काव्यरचना की है। 'चंडी चरित्र' इनकी विशिष्ट काव्य रचना है। इसमें वीर रस प्रधान है। 'चौबीस अवतार' नामक रचना में शृंगार का पर्याप्त रंग दिखाई पड़ता है।

### रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

- रीतिकाल में अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इस काल में भक्ति, नीति, वैराग्य, वीरता के अनेक अच्छे कवि हुए हैं।
- रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य प्रधानतः दरबारी काव्य है जबकि रीति मुक्त काव्य दरबारी काव्य नहीं है।
- रीतिकालीन दरबारी काव्य में शृंगारिकता की प्रधानता है।
- कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम के सहारे आश्रयदाताओं की शृंगार लीलाओं का वर्णन किया है।
- इस काल में शृंगार की प्रधानता है लेकिन मुख्य साहित्यिक प्रवृत्ति रीति ही है।
- इस काल में रहीम, वृंद, गिरधर की नीतिपरक रचनाएँ बहुत लोकप्रिय रही हैं। वीर और भक्ति काव्य की भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं।
- कवित्त, सवैया, दोहा और कुंडलियाँ – इस काल के बहु प्रयुक्त छंद हैं।
- इस काल की मुख्य भाषा ब्रजभाषा है।

### आधुनिक काल ( गद्यकाल-1850- )

किसी भी भाषा के साहित्य के साथ 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग उस साहित्य की कई नवीन गतिविधियों की ओर संकेत करता है, जो उसे अपने पूर्वकालीन साहित्य से अलग करती हैं। इस संदर्भ में 'आधुनिक' शब्द केवल काल वाचक विशेषण मात्र न होकर साहित्य की नवीन भावभूमि, विचारबोध, नवीन प्रवृत्तियों एवं नवीन भाषा-शैली-स्वरूप आदि की ओर इंगित करता है। ई.स. 1850 के आसपास हिन्दी साहित्य में आनेवाली इसी परिवर्तनशीलता को आधुनिक की संज्ञा दी गई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी, क्योंकि इस काल में आरंभ से ही गद्यात्मकता का प्रभाव-दबाव बढ़ता दिखाई देता है। पश्चिम के प्रभाव से गद्य की नई-नई विधाएँ-निबंध, नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना, जीवनी, रेखाचित्र आदि उभर कर सामने आ रही थीं। रीतिकाल में पद्य की प्रधानता थी, जबकि आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता देखने को मिलती है। इसीप्रकार रीतिकाल में ब्रजभाषा का प्राधान्य था, जबकि आधुनिक काल में खड़ीबोली साहित्यिक अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बन गई, इसलिए आधुनिक काल को **खड़ी बोली का काल** कहा गया। रीतिकाल तक कविता में हृदय-पक्ष प्रधान था जबकि आधुनिककाल के साहित्य में बौद्धिक चेतना का महत्त्व बढ़ गया। रीतिकाल तक भक्ति एवं शृंगार की बहुलता रही जबकि आधुनिक काल में देशप्रेम, समाजसुधार जैसे विषयों का बोलबाल देखने को मिलता है। इसीलिए आधुनिक काल के आरंभिक साहित्य में पुनर्जागरण, राष्ट्रीय जागरण तथा समाज-सुधार की चर्चा केन्द्र में रही। इसप्रकार आधुनिक काल में हमें नवीन परिवर्तनों की लहर-सी देखने को मिलती है।

**खड़ीबोली गद्य का प्रारंभिक स्वरूप :** 19वीं शताब्दी के आरंभ में कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना ने खड़ीबोली गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू दोनों में पुस्तकें तैयार करवाईं। उनका उद्देश्य इन पुस्तकों द्वारा गद्य का प्रचार-प्रसार करना था। इसके लिए चार विद्वान नियुक्त किए गए। लल्लूलाल, सदल मिश्र, सदा सुखलाल और इंशाअल्लाखाँ। इन्होंने क्रमशः प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान, सुखसागर और रानी केतकी की कहानी की रचना की। इन रचनाओं का हिन्दी गद्य के प्रारंभिक विकास की दृष्टि से एक ऐतिहासिक महत्त्व है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार से परवर्ती भाषा-साहित्य के मार्गदर्शन के लिए यह एक अच्छा उपक्रम था।

हिन्दी गद्य के आरंभिक विकास में अन्य कई प्रवृत्तियों ने भी महत्त्व की भूमिका अदा की। इसमें ईसाई मिशनरियों का धर्मप्रचार, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, शिक्षा-प्रचार के लिए लिखी गई पुस्तकें, समाज-सुधार की प्रवृत्तियाँ तथा कुछ पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। गद्य के प्रचार-प्रसार में छापाखानो (प्रेस) ने भी अपनी भूमिका निभाई। अंग्रेज शासकों

ने शासन की सुविधा के लिए हिन्दी-उर्दू की शिक्षा उपलब्ध कराई। गद्य में पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ किया। राजाराम मोहनराय ने 'बंगदूत' नामक पत्र प्रारंभ किया। कानपुर से हिन्दी का पहला समाचार 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी में लिखा गया। इसतरह विभिन्न शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक प्रवृत्तियों के माध्यम से हिन्दी गद्य के विकास को एक निश्चित दिशा प्राप्त हुई। भारतेन्दु युग में इसका उत्कर्ष देखने को मिलता है।

**आधुनिक काल : उपविभाजन की समस्या :** आधुनिककाल के उपविभाजन की समस्या थोड़ी जटिल है। इस काल में गद्य और पद्य की नई-नई विधाओं और नवीन शैलियों का विकास हुआ। अतः इसके विभाजन में भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ देखने को मिलती हैं। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्य खंड और पद्य खंड जैसे दो वर्गों में बाँटकर उसके विकास को विभिन्न उत्थानों द्वारा स्पष्ट किया है। जबकि डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को केन्द्र मानकर उपविभाजन किया है, जो अधिक तार्किक है। उनके विचार से आधुनिक काल को तीन उपविभागों में बाँटा जा सकता है (1) पूर्व छायावाद युग (2) छायावाद (3) छायावादोत्तर युग। पूर्व छायावादी युग में क्रमशः 'पुनर्जागरण' और 'सुधार' की प्रवृत्ति प्रबल है, जिसके सूत्रधार क्रमशः भारतेन्दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी रहे। छायावादोत्तर काल में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नवलेखन के नये-नये स्वर उभर कर आते हैं, जिन्हें अलग-अलग दशकों में नए-नए नाम दिए गए।

कुछ इतिहासकारों ने आधुनिक गद्यसाहित्य का उपविभाजन विभिन्न विधाओं के आधार पर किया है। विभिन्न गद्य-विधाओं में किसी एक युगप्रवर्तक-प्रतिभासंपन्न रचनाकार को केन्द्र में रख कर उस विधा के विकास को रेखांकित किया गया है। जैसे कि कथासाहित्य (कहानी-उपन्यास) के क्षेत्र में प्रेमचंद, नाटक में जयशंकर प्रसाद, निबंध और समीक्षा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को केन्द्र में रखकर विभाजन किया गया है। कविता के विकास में छायावाद को केन्द्र में रखकर किया गया विभाजन बहुत सटीक है।

### भारतेन्दु युग : ( पुनर्जागरण काल - 1860-1900 ई. )

भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार है और स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र नई चेतना और नये युग के प्रवर्तक हैं। इस युग की विभिन्न परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं जिनके प्रभाव से साहित्य की दिशा और दशा बदल गई। स्वदेशप्रेम, स्वभाषा, स्वदेशी का आग्रह, नारी-शिक्षा एवं नारी-स्वातंत्र्य, अस्पृश्यता-निवारण जैसे विषय इस युग के साहित्य को परिचालित कर रहे थे। नई चेतना की इस अभिव्यक्ति को ही 'पुनर्जागरण' के नाम से पहचाना गया। भारतेन्दु इस नवीन चेतना के अग्रदूत बनकर सामने आए।

**भारतेन्दु युगीन साहित्य :** इस युग के साहित्य की प्रमुख भाषा खड़ीबोली है किंतु कविता में अभी भी ब्रजभाषा का प्रभाव बना हुआ था। निबंध, उपन्यास और कहानी जैसी नवीन गद्य-विधाओं का आरंभ इसी युग से होता है। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाश भी यहीं से आरंभ होता है। व्यक्ति-व्यंजक निबंधों की परंपरा का आरंभ भारतेन्दु युग में हुआ। लाला श्रीनिवासदास रचित 'परीक्षागुरु' हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया। देवकीनंदन खत्री के दो उपन्यास - 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। कहानी के विकास की दृष्टि से यह युग अल्प विकसित ही रहा। नाटक की दृष्टि से स्वयं भारतेन्दु ने बहुत अच्छे नाटक लिखकर अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। भारतेन्दु की प्रेरणा से कई नवोदित रचनाकार सृजन के क्षेत्र में अग्रसर हुए।

### भारतेन्दु युग के प्रमुख रचनाकार

भारतेन्दु हरिश्चंद्र इस युग के प्रणेता बनकर आए। उनका समय ई.स. 1850 से 1885 का रहा। अत्यंत अल्प आयु में ही उन्होंने साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की। उनका साहित्यिक योगदान इस प्रकार है -

**पत्रिकाएँ :** कवि वचनसुधा, हरिश्चंद्र मेगजीन।

**नाटक :** वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी आदि।

भारतेन्दु ने मौलिक नाटकों के अलावा कई संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया। उन्होंने कविता, निबंध और आलोचना

के क्षेत्र में भी अपनी कलम चलाई। वैचारिक सोच की दृष्टि से भारतेन्दु साम्राज्यवाद के विरोधी थे, स्वराज के समर्थक थे। देश की विषम स्थितियों का यथार्थ चित्रण उनकी कृतियों में हुआ है। उनका 'अंधेर नगरी' नाटक तत्कालीन राज-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है।

भारतेन्दुयुग के अन्य रचनाकारों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठाकुर जगमोहनसिंह, पं. राधाचरण गोस्वामी का योगदान उल्लेखनीय रहा। प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट ने अच्छे निबंध लिखे तथा दोनों ने क्रमशः 'ब्राह्मण' तथा 'हिन्दी प्रदीप' पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। प्रेमधन ने भी 'कादंबिनी' नामक पत्रिका निकाली।

### द्विवेदीयुग : ( जागरण-सुधारकाल - 1901 से 1919 ई. )

इस युग के प्रमुख चिंतक, सर्जक और मार्गदर्शक महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस कालखण्ड को द्विवेदीयुग कहा जाता है। उन्होंने 'सरस्वती' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का संपादन करते हुए हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नई दिशा दी। उन्होंने भारतेन्दुयुगीन खड़ीबोली का परिमार्जन एवं परिष्कार करते हुए अपने युग के साहित्य में पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाई। उन्होंने भारत-दुर्दशा के साथ-साथ स्वातंत्र्य-प्राप्ति की चेतना और बलिदान-भावना को जगाया। राष्ट्रीयता तथा मानवता जैसे मूल्यों की महिमा का गान इस युग की रचनाओं में मिलता है। इस युग के कवि नाथूराम शर्मा 'बलिदान गान' कविता में बलिदान के लिए आह्वान करते हुए कहते हैं :

‘देश भक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा।

प्राणों का बलिदान, देश की वेदी पर करना होगा ॥’

गुप्तजी के 'साकेत' के राम जन के सम्मुख धन को तुच्छ बदलाते हुए यहाँ जोड़ने नहीं बाँटने आये हैं। एक ओर आर्यों के आदर्श की स्थापना और दूसरी ओर धरती को स्वर्ग बनाने की मंगलकामना उनमें दिखाई देती है। वे कहते हैं कि -

‘संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।’

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

द्विवेदीयुग का सर्वाधिक महत्त्व कविता को लेकर है। कविता में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा इस युग की सबसे बड़ी देन है। इस युग की कविता में युग-जीवन के चित्रण के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के प्रति आदर भाव की अभिव्यक्ति है। पौराणिक आख्यानों एवं चरित्रों को लेकर अनेक प्रबंध काव्य इस युग में लिखे गए। इस युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने छोटे-बड़े अनेक प्रबंध काव्य लिखे। राष्ट्रकवि के रूप में स्वीकृत गुप्तजी गाँधीवादी मूल्यों से अनुप्राणित दिखाई देते हैं। उनकी रचना 'भारत भारती' में राष्ट्रीय चेतना की चरम अभिव्यक्ति हुई है। 'साकेत' जैसे महत्त्वपूर्ण महाकाव्य के अलावा उन्होंने यशोधरा, रंग में भंग, किसान, पंचवटी, द्वापर, जयद्रथ वध और विष्णुप्रिया जैसे प्रबंध काव्यों की रचना की। भारतीय साहित्य में उपेक्षित नारी चरित्रों को उन्होंने सच्ची संवेदना के साथ एक नए क्लेवर में प्रस्तुत किया।

गुप्तजी के अलावा द्विवेदीयुग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रिय प्रवास' एवं 'वैदेही वनवास' जैसी उत्कृष्ट प्रबंध रचनाएँ लिखीं। जगन्नाथदास रत्नाकर का 'उद्धव शतक' इसी युग की ब्रज-भाषा में रचित उत्तम रचना है। रामनरेश त्रिपाठी भी इस युग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इतिवृत्तात्मकता और वर्णन प्रधानता इस युग की कविता की अपनी सीमा रही, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद का जन्म हुआ।

**निबंध-लेखन** की दृष्टि से द्विवेदी युग का महत्त्वपूर्ण प्रदान रहा। स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी के अलावा बालमुकुन्द गुप्त, अध्यापक पूर्णसिंह, पं. माधवप्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुंदरदास जैसे निबंधकारों ने उत्कृष्ट निबंध लिखे। बालमुकुन्द गुप्त का 'शिवशंभू का चिट्ठा' में संकलित व्यक्तिप्रधान निबंध बहुचर्चित रहे। अध्यापक पूर्णसिंह के निबंध आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम तथा सच्चीवीरता जैसे निबंधों की काफी चर्चा रही।

**उपन्यास** की दृष्टि से द्विवेदीयुग एक तरह से पूर्वप्रेमचंदयुग कहा जा सकता है। पं. किशोरीलाल गोस्वामी ने लगभग

पेंसठ उपन्यास लिखे। बाबू गोपालदास गहमरी ने जासूसी उपन्यासों की रचना की। लेकिन इन उपन्यासों में उपन्यासकला की परिपक्वता के दर्शन नहीं होते। उपन्यास विधा के लिए यह बाल्य-काल ही था। इस काल में बंगला एवं मराठी उपन्यासों के अनुवाद भी किए गए। **कहानी** के विकास की दृष्टि से भी इसे प्रारंभिक काल ही कहा जा सकता है। पं. किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' कहानी इसी युग में प्रकाशित हुई। 'दुलाईवाली' और 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी कहानियों के बाद प्रसाद की 'ग्राम' कहानी इस युग की एक महत्वपूर्ण कहानी मानी गई। सन् 1915 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई, जो भाव और कला दोनों दृष्टियों से द्विवेदीयुग की सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

**नाटक** की दृष्टि से यह युग अनुवादों का युग रहा। कोई उत्कृष्ट मौलिक नाटक नहीं लिखा गया। संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला नाटकों के अच्छे अनुवाद हुए। इनमें कालिदास और शेक्सपियर के नाट्यानुवाद उल्लेखनीय हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी शुरुआत मात्र हुई। आलोचना गुण-दोष-विवेचन तक सीमित रही। समीक्षा निबंध-लेखन के रूप में आगे बढ़ रही थी। रामचंद्र शुक्ल का लेखन-कार्य इस युग के अंत में आरंभ हुआ था। कुल मिलाकर द्विवेदीयुग ने आने वाले युग के लिए एक सकारात्मक भूमिका बाँधने का कार्य किया।

### छायावाद युग : ( 1920-1935 ई. )

द्विवेदीयुग के समाप्त होते-होते सन् 1918-20 के आसपास हिन्दी में एक नवीन काव्यधारा जन्म लेने लगी थी, जिसे छायावाद के नाम से पहचाना गया। 'छायावाद' संज्ञा का सर्वप्रथम प्रयोग 'शारदा' एवं 'सरस्वती' नामक पत्रिकाओं में मिलता है। छायावाद को परिभाषित करने का प्रयोग कई विद्वानों ने किया किन्तु कोई भी परिभाषा अपने आप में पूर्ण नहीं थी। डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा है। डॉ. रामकुमार वर्मा आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने और परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने की स्थिति को छायावाद कहते हैं। किसी-किसी ने प्रकृति के मानवीकरण को छायावाद कहा। हकीकत यह है कि द्विवेदीयुगीन कविता अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण स्थूल, इतिवृत्तात्मक और आवश्यकता से अधिक बहिर्मुखी थी। जबकि छायावादी कवि अंतर्मुखी था। अतः स्थूलता की जगह सूक्ष्मता और इतिवृत्तात्मकता के बदले सांकेतिकता-व्यंजनात्मकता छायावादी कविता में दिखलाई दी। अधिकांश लोगों ने छायावाद का प्रवर्तक प्रसादजी को स्वीकार किया।

### छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- वैयक्तिकता अर्थात् वैयक्तिक सुख-दुःख, हर्ष-विषाद की मार्मिक अभिव्यंजना छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति है। द्विवेदी युगीन सामाजिकता की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद वैयक्तिक चेतना को अग्रिमता देता है।
- प्रेम और सौंदर्य को लेकर एक नवीन सूक्ष्म दृष्टि छायावादी कविता में देखने को मिलती है। स्थूल एवं बाह्य सौंदर्य के स्थान पर सूक्ष्म तथा भीतरी सौंदर्य का प्रतीकात्मक-बिम्बात्मक चित्रण इस कविता की विशेषता है।
- प्रकृति का मानवीकरण छायावाद की विशिष्ट पहचान है। प्रकृति के विविधरंगी चित्र छायावादी कविता की धरोहर है। प्रकृति में मानवीय भावों का आरोपण, विशेष रूप से नारी-सौंदर्य, नारी के मनोभावों का सजीव आरोपण छायावादी कविता को एक नई पहचान देता है।
- नारी के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण छायावाद में देखने को मिलता है। नारी मात्र वासना-पूर्ति का साधन न होकर सहचरी, प्रेयसी, जननी, देवी आदि अनेक रूपों में आई है। जूही की कली, संध्या सुंदरी, बीती विभावरी, वसंतरजनी जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं। प्रसादजी ने 'कामायनी' में श्रद्धा के माध्यम से नारी के बड़े ही गरिमामय रूप का चित्रण किया है।
- प्रकृति में किसी अज्ञात सत्ता की अनुभूति छायावादी कवि को रहस्यवाद की ओर ले जाती है। चराचर जगत का दृष्टा, नियंता कौन है ? यह प्रश्न कवि को किसी अलौकिक शक्ति के बारे में सोचने को प्रेरित करता है। महादेवी वर्मा की कविता में अज्ञात-प्रियतम का उल्लेख इसी बात का सूचक है।

- यथार्थ से पलायन की वृत्ति भी छायावादी कविता में कहीं-कहीं दिखाई देती है। छायावादी कवि कल्पना-लोक में विहार करता मालूम पड़ता है।
- भाषा एवं अभिव्यक्ति की नई-नई शैलियों का प्रयोग इस युग की कविता में हुआ है। छन्द के बंधन तोड़कर छन्द-मुक्त एवं मुक्त-छंद कविता लिखी गई। भावानुभूति की लयात्मक अभिव्यक्ति के लिए गीतिशैली का भरपूर प्रयोग हुआ। प्रतीक, बिम्ब एवं मानवीकरण जैसे अलंकारों का प्रयोग छायावादी कविता को एक नई साज-सज्जा प्रदान करता है।

### छायावाद के प्रमुख कवि

छायावाद के प्रमुख आधार-स्तंभ हैं-प्रसाद, निराला, पंत एवम् महादेवी।

**जयशंकरप्रसाद ( 1889-1937 ई. ) :** प्रसादजी को छायावाद का प्रवर्तक एवं प्रमुख आधार-स्तंभ माना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। इतिहास, संस्कृति और दर्शन का उन्हें अच्छा ज्ञान था। 'कामायनी' उनकी काव्य-प्रतिभा का चरम विकसित पुष्प है। 'कामायनी' को छायावाद का उपनिषद कहा जाता है। 'आँसू' में बौद्ध दर्शन के दुःखवाद का प्रभाव है। आँसू कवि की घनीभूत पीड़ा की अश्रुमयी अभिव्यक्ति का काव्य है। प्रेमपथिक, चित्राधार, लहर, झरना आदि उनकी अन्य कृतियाँ हैं।

**सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ( 1897-1961 ई. ) :** काव्य का देवता 'निराला' तथा 'महाप्राण निराला' जैसी संज्ञाओं से विभूषित निराला ओज, औदात्य एवं विद्रोह के कवि हैं। उन्हें मुक्तछंद के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। उनकी कविता में प्रेम, प्रकृति और प्रगति तीनों का समन्वय है। उनकी कविता उनके संघर्षशील व्यक्तित्व का परिचय कराती है। 'तुलसीदास' उनकी प्रबंध रचना है तथा 'सरोजस्मृति' एवं 'राम की शक्तिपूजा' लम्बी कविताएँ हैं। अनामिका, परिमल, गीतिका, बेला, नये पत्ते तथा कुकुरमुत्ता आदि अन्य काव्य-संग्रह हैं। छायावाद में रहकर छायावाद का अतिक्रमण कर प्रगतिशीलता एवं प्रयोगशीलता का परिचय कराने वाले वे एक मात्र छायावादी कवि हैं।

**सुमित्रानंदन पंत ( 1900-1977 ई. ) :** प्रकृति के चतुर चित्ते और सुकुमारता के कवि पंतजी का प्रकृतिप्रेम उनके जन्म स्थान कौसानी (अल्मोड़ा) की उपज है। उनकी काव्य यात्रा का प्रारंभ प्रकृतिप्रेम से होता है किंतु क्रमशः मानवीय प्रेम और आध्यात्म की ओर अग्रसर हो जाते हैं। उनकी कविता पर गांधीवाद, मानवतावाद और अरविंद दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। पल्लव, वीणा, गुंजन, ग्रंथि उनके प्रकृतिप्रेम की रचनाएँ हैं, युगांत, युगवाणी और ग्राम्य में युग-जीवन का यथार्थ है, स्वर्ण धूलि और स्वर्णकिरण में आध्यात्म की छाया है। 'लोकायतन' एवं 'चिदंबर' को क्रमशः साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुए।

**महादेवी वर्मा ( 1907-1987 ई. ) :** छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा आधुनिक काल की मीराँ के नाम से भी जानी जाती हैं। मधुमय पीड़ा और करुणा इनकी कविता का प्राणतत्व है। उनकी कविता में छायावाद और रहस्यवाद दोनों घुलमिल गए हैं। किसी अज्ञात प्रियतम के प्रति समर्पण भाव उनकी कविता को एक अलग पहचान देता है। 'तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा', 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, प्रियतम का पथ आलोकित कर' जैसी पंक्तियाँ में विरह की वेदना और अज्ञात प्रियतम के प्रति समर्पण-भाव-दोनों की अभिव्यक्ति हुई है। गीति तत्त्व उनकी कविता की लाक्षणिकता है। नीहार, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'यामा' के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

छायावाद की उम्र बहुत लम्बी नहीं रही। उसका अंत भी विशिष्ट परिस्थितियों में हुआ। निराला ने छायावाद का अतिक्रमण कर नई भावभूमि पर संचरण किया तथा पंतजी ने 'युगांत' के रूप में युग के अंत की घोषणा कर दी।

छायावादोत्तर काल में कविता में दो अलग-अलग प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। छायावादी कविता में व्यक्त वैयक्तिकता उसके बाद की कविता में स्वच्छंदतावादी रोमानी दृष्टि को लेकर एक नवीन कलेवर के साथ उभर कर आई जिसे **हालावाद** कहा गया। इस दौर की कुछ रचनाओं में एक ओर रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विरोध, संकीर्णताओं के प्रति आक्रोश का भाव था, तो दूसरी ओर वैयक्तिक सुख, उल्लास, आनंद अर्थात् जीवन की मस्ती की अभिव्यक्ति थी। हाला, मधुशाला, साकी

जैसे प्रतीकों के माध्यम से बच्चनजी ने हालावादी कविता का सृजन किया। हालावाद का जन्म और अंत दोनों हरिवंशराय बच्चन की कविता में देखा जा सकता है।

छायावादोत्तर काल में ही हालावादी काव्य-धारा के समान्तर ही एक दूसरी काव्य-धारा भी चल रही थी, जिसे **राष्ट्रीय-सांस्कृतिक** काव्य धारा कहा गया। इसके अंतर्गत एक ओर पराधीनता से राष्ट्र की मुक्ति का आह्वान था तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का गौरव-गान था। ऐसे कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान तथा रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि प्रमुख थे। इनमें दिनकरजी राष्ट्रीयता और पौरुष के कवि के रूप में सामने आए। अन्याय और शोषण के विरुद्ध हुंकार उनकी कविता की पहचान है। कुरुक्षेत्र, रेणुका, हुंकार, रश्मिस्थी, उर्वशी आदि उनकी मुख्य रचनाएँ हैं।

### प्रगतिवादी काव्य धारा : ( 1936-1942 ई. )

द्विवेदीयुग की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद और छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। छायावादी अंतर्मुखी चेतना के विरुद्ध मार्क्सवादी चिंतन से अनुप्राणित सामाजिक चेतना के साथ 1936 के आसपास जिस काव्य-प्रवृत्ति का जन्म हुआ उसे प्रगतिवाद कहा गया। प्रगतिवाद किसी भी प्रकार के वर्ग-भेद को दूर कर कृषकों, श्रमिकों, पिछड़ों के उत्कर्ष की कामना से प्रेरित है। अतः उसमें पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद के प्रति गहरा आक्रोश है। समाज के सर्वहारा वर्ग के प्रति गहरी संवेदनशीलता इस धारा के कवियों में दिखाई देती है। इस काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं – शोषण का विरोध, शोषित का समर्थन, सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति, साहित्य को जीवन की दृष्टि से देखना, स्त्री-बच्चों की सामाजिक शोषण से मुक्ति, ईश्वर के बदले मानवीय संघर्ष में आस्था आदि। प्रगतिवादी कवियों ने साहित्य को कल्पना के शिखर से उतारकर यथार्थ की ठोस धरती पर लाकर रख दिया। इन कवियों की भाषा और शिल्प भी छायावाद से एकदम भिन्न है। इनके शब्द, प्रतीक, बिम्ब, मुहावरे आदि सब कुछ जन-जीवन से जुड़े हैं। छायावादी कवियों में से पंत एवं निराला में प्रगतिशील चेतना देखने को मिलती है। पंतजी की ताज, युगांत, युगवाणी, ग्राम्य जैसी रचनाएँ तथा निराला की भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर तथा कुकुरमुत्ता में इसी चेतना की अभिव्यक्ति है। प्रमुख प्रगतिवादी कवियों में रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन त्रिलोचन, शिवमंगलसिंह सुमन, भारतभूषण अग्रवाल तथा मुक्तिबोध उल्लेखनीय हैं।

### प्रयोगवादी काव्य धारा ( 1943-1953 ई. )

सन् 1943 में अज्ञेयजी द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवादी कविता का दौर शुरू हुआ। नए सात कवियों के समावेश के कारण इसे 'सप्तक' की संज्ञा दी गई। बाद में क्रमशः दूसरा, तीसरा और चौथा सप्तक का प्रकाशन हुआ। प्रयोगवाद शब्द को लेकर हुए विवाद का उत्तर देते हुए अज्ञेय ने प्रयोग को साधन बताया, साध्य नहीं। संकलित कवि नए थे और नई-नई राहों के अन्वेषी। नए भाव बोध, नवीन संवेदनाएँ तथा नए-नए शिल्पगत प्रयोगों के कारण इन्हें प्रयोगवादी कहा गया। प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इसप्रकार हैं – घोर व्यक्तिवादिता एवं परंपरा के प्रति विद्रोह का स्वर, मध्यमवर्ग की अनास्था, कुंठा, जड़ता और जीवन-संघर्ष का बौद्धिक चित्रण, दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति, लघुमानव की प्रतिष्ठा आदि। शिल्पगत प्रवृत्तियों में कविता के पुराने औजारों-काव्य-भाषा एवं शिल्प का विरोध, नए प्रतीक, नए बिम्ब, नए उपमान आदि का प्रयोग। पुराने उपमानों के मैले हो जाने की घोषणा स्वयं अज्ञेय ने की थी। अज्ञेय, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, शमशेर, कुँवर नारायण, गिरिजाकुमार माथुर आदि प्रमुख प्रयोगशील कवि हैं। आगे चलकर प्रयोगवाद का पर्यवसान 'नई कविता' के रूप में हो गया।

### नई कविता : ( 1954-1962 ई. )

ई. सन् 1954 के आसपास प्रयोगवाद का रूपांतर 'नई कविता' के रूप में हो गया। 'नये पत्ते' और 'नयी कविता' नामक पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ 'नई कविता' नाम काव्यजगत में चर्चित होने लगा था। इस काव्यधारा की भावभूमि एवं शिल्प दोनों प्रयोगवादी कविता से भिन्न थे। नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इसप्रकार थीं – जीवन के प्रति आस्था, कथ्य की व्यापकता

एवं सृजन की उन्मुक्तता, अनुभूति की सच्चाई-ईमानदारी, शहरी और ग्रामीण दोनों परिवेश से संबंध, बदले हुए जीवनमूल्यों की यथार्थ अभिव्यक्ति, मानव-मुक्ति, लोकसंस्कृति के प्रति प्रेम आदि। नये-नये अनुभवों के दबाव से नये काव्य रूपों तथा काव्य-शिल्प की तलाश नई कविता की एक नई परंपरा सामने आई। संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी तथा अंधायुग जैसी रचनाएँ इस दौर में लिखी गईं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता आदि इस दौर के प्रमुख रचनाकार हैं।

### साठोत्तरी कविता : ( 1962-1980 ई. )

1962 से 1980 का दौर साठोत्तरी कविता का दौर है। इस दौर में कविता के नाम पर अनेक नारे और आंदोलन सामने आए, जिसके कारण अस्वीकृति का तेवर पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। इसमें परंपरा का विरोध था। अकविता, अस्वीकृत कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, क्रुद्ध पीढ़ी की कविता जैसे नये-नये नाम आए भी गए भी। इन सबके समान्तर एक स्वर सबसे अलग था - वह था **समकालीन कविता** का, जिसमें परंपरा के साथ आधुनिकता का भी स्वीकार है। वास्तव में सन् साठ के बाद की आजतक की कविता समकालीन कविता है, जिसमें कम से कम तीन-चार पीढ़ियों के उन सभी कवियों की सक्रिय उपस्थिति है, जिनमें युगीन चेतना की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। इस दौर की कविता में छायावादोत्तर कविता की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का पर्यवसान होता दिखाई देता है। नवगीत-लेखन भी इस दौरान चलता रहा। इस दौर के प्रमुख कवियों की सूची लम्बी है, जिसमें अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नरेश मेहता, भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, धूमिल, दुष्यंतकुमार, केदारनाथ सिंह आदि और आठवें दशक एवं उसके बाद के कवियों में लीलाधर जगूड़ी, वेणुगोपाल, राजेश जोशी, उदयप्रकाश, मंगलेश डबराल, असद जैदी, अरुण कमल, स्वप्निल आदि का समावेश होता है। मदन कश्यप, नीलेश रघुवंशी जैसे कई कवि इन दिनों काव्य-लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन कविता में प्रतिबद्ध कविता एवं जनवादी कविता का भी समावेश होता है। वस्तुतः समकालीन कविता ही आज की कविता है।

### हिन्दी गद्य ( 1920 से 1947 ) पूर्व स्वातंत्र्य युग

हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग को आरंभिक विकास का काल कहा जाएगा। हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं का बहुमुखी विकास उत्तर द्विवेदी युग में ही हुआ। पश्चिमी एवं बंगला भाषाओं के साहित्य के प्रभाव के गद्य की नई-नई विधाओं का विकास हिन्दी में हुआ।

**उपन्यास** के क्षेत्र में प्रेमचंद का आगमन एक क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुई। उन्होंने उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र बताते हुए उसे युग-जीवन की समस्याओं की यथार्थ अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उपन्यास और कहानी दोनों विधाओं में नये प्रतिमान स्थापित कर वे कथा-सम्राट कहलाए। 1918 से 1936 के बीच उन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, निर्मला, गबन और गोदान जैसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे। 'गोदान' उनकी उपन्यास-कला की पूर्णिमा कहा गया। 'गोदान' प्रेमचंद और प्रेमचंदोत्तर युग को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में देखा गया। प्रेमचंद ने देश की समस्याओं के समाधान के लिए दिशा-निर्देश भी दिए। वे सचमुच कलम के सिपाही सिद्ध हुए।

प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास-गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झांसी की रानी, मृगनयनी, यशपाल के उपन्यास दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, दिव्या, अमिता, झूठासच, उनके मार्क्सवादी दर्शन के कारण एक अलग पहचान रखते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, चारु चंदालेख के कारण विशेष महत्त्व रखते हैं। इसी दौर में भगवतीचरण वर्मा ने चित्रलेखा की रचना की। जैनेन्द्रकुमार ने मनोविश्लेषवादी दृष्टिकोण को लेकर त्यागपत्र, सुनीता, सुखदा आदि उपन्यास लिखे। इलाचंद्र जोशी में भी मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। अज्ञेयजी एक अलग अनुभव-विश्व के साथ 'शेखर : एक जीवनी' जैसे उपन्यास की रचना करते हैं। अशकजी के उपन्यासों में गर्मराख और गिरती दीवारें महत्त्वपूर्ण हैं।

**कहानी** के क्षेत्र में भी प्रेमचंद का दबदबा रहा। उनकी तीन सौ से भी अधिक कहानियों में विषय एवं शैली की पर्याप्त



विविधता है। ईदगाह, कफन, पूस की रात, पंचपरमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। प्रेमचंद के ही समकालीन होते हुए भी प्रसादजी ने अलग राह चुनी। उनकी कहानियों में प्रेम भावुकता तथा द्वन्द्व का तत्त्वप्रधान रहा। पुरस्कार, आकाशदीप, छोटा जादूगर उनकी चर्चित कहानियाँ हैं। प्रेमचंद युग के अन्य कहानीकारों में कौशिक 'ताई', सुदर्शन 'हार की जीत' जैसी कहानियों के कारण प्रसिद्ध हुए। बाद में जैनेन्द्र, अशक, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उग्र आदि कहानीकारों ने कहानी को कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से अपने-अपने नजरिए से आगे बढ़ाया।

**नाटक** के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक को एक नई दिशा, नया धरातल और नई गरिमा प्रदान की। उनके नाम से, अर्थात् प्रसाद युग के नाम से इस काल को पहचाना गया। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यतत्त्वों का समन्वय करते हुए अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक लिखे। प्रसादजी की भाँति हरिकृष्ण प्रेमी ने कई अच्छे ऐतिहासिक नाटक लिखे। प्रसाद युग में ही प्रसादजी के परंपरा से अलग हटकर लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कई समस्या नाटक लिखे।

**निबंध** की दृष्टि से यह युग चरम विकास का काल रहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि भाग 1/2 के अंतर्गत गंभीर, विचारपरक निबंध लिखे। उनके निबंधों में विषय के साथ व्यक्तित्व का पुट भी देखने मिलता है। उनके मनोविकार संबंधी निबंध बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। द्विवेदीजी ने इसी युग में निबंध-लेखन आरंभ कर दिया था लेकिन उनके निबंध ललित-निबंध की परंपरा में आते हैं। अशोक के फूल, कुटज, देवदारु उनके श्रेष्ठ ललित निबंध हैं।

**आलोचना** की दृष्टि से यह काल युगांतर का काल सिद्ध हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का आर्यभाव एक क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुआ। वे हिन्दी के सर्वाधिक सक्षम एवं विश्वसनीय आलोचक थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रामाणिक एवं शास्त्रीय इतिहास लिखा। उनके कई निबंध गंभीर आलोचना के उत्तम उदाहरण हैं। जायसी एवं सूर-तुलसी की कविता को लेकर उनकी रसवादी आलोचना दृष्टि महत्त्वपूर्ण मानी गई। इसी दौरान हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' एवं 'कबीर' जैसे ग्रंथ लिखकर शुक्लजी की आलोचना-परंपरा को आगे बढ़ाया। डॉ. नगेन्द्र और पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी उच्च कोटि के आलोचक थे। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद मार्क्सवादी आलोचना का उदय हुआ, जिसमें शिवदानसिंह चौहान और रामविलास शर्मा का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा।

### स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य साहित्य

स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य में भी कविता की तरह बहुआयामी विकास हुआ। स्वतंत्र देश की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्य को प्रभावित किया। मार्क्सवाद, गाँधीवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद आदि ने पद्य एवं गद्य दोनों को प्रभावित किया।

**उपन्यास** का विकास नई-नई प्रवृत्तियों एवं शैलियों को लेकर हुआ। फणीश्वरनाथ रेणु ने अंचल-विशेष को केन्द्र में रखकर आँचलिक उपन्यास का प्रवर्तन किया। 'मैला आँचल' रेणु-रचित हिन्दी का पहला आँचलिक उपन्यास है। नागार्जुन, भैरवनाथ गुप्त आदि ने भी आँचलिक उपन्यास लिखे। महानगरीय परिवेश एवं मध्यम वर्ग की मानसिकता से संबंधित उपन्यास भी लिखे गये। ऐसे उपन्यासकारों में मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' मुख्य हैं। फ्रायड से प्रभावित लेखकों में जैनेन्द्र एवं इलाचंद्र जोशी उल्लेखनीय हैं। अज्ञेयजी ने शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने-अपने अजनबी जैसे उपन्यास लिखकर नये प्रतिमान प्रस्तुत किए।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के अतिरिक्त अमृतलाल नागर का 'मानस का हंस' उल्लेखनीय है। यशपाल का 'झूठा सच', भीष्म साहनी का 'तमस' तथा कमलेश्वर के कई उपन्यास इसी काल में लिखे गए। महिला कथाकारों में मन्नु भंडारी, उषा प्रिवंदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया निरंतर लिखती रहीं। श्रीलाल शुक्ल-रचित 'राग दरबारी', मनोहरश्याम जोशी का 'कुरुकुरु स्वाहा' चर्चित उपन्यास रहे। कथ्य का वैविध्य एवं शिल्पगत प्रयोग इधर के उपन्यासों की विशेषता है। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' प्रयोगशील उपन्यास माना गया।

**कहानी** के विकास की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग में कथ्य एवं शिल्प दोनों में नवीनता और विविधता देखने को मिलती है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद गाँव, शहरों और मूल्यों में जो परिवर्तन आया उसका प्रभाव हिन्दी कहानी पर पड़ा। एक ओर ग्राम-चेतना से संबद्ध आँचलिक कहानियाँ लिखी गईं तो दूसरी ओर महानगरी जीवन से जुड़ा यथार्थ का चित्रण होने लगा। रेणु ने ठेस, पंचलाइट, रसपिरिया, तीसरी कसम जैसी श्रेष्ठ कहानियाँ लिखीं। नई कहानी आंदोलन के रूप में मोहन राकेश, कमलेश्वर तथा राजेन्द्र यादव ने नगर-जीवन के अनुभवों की कहानियाँ लिखीं। डॉ. नामवरसिंह ने निर्मल वर्मा को नई कहानी का पहला कहानीकार और 'परिदे' को पहली नई कहानी घोषित किया। संवेदना की सूक्ष्मता और भाषा की कोमलता उनकी कहानियों को एक अलग पहचान देती है। अन्य कहानीकारों में भीष्म साहनी, यशपाल, जैनेन्द्र, विष्णु प्रभाकर, अज्ञेय आदि आते हैं। महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मालती जोशी, मृदुला गर्ग आदि मुख्य हैं।

सातवें-आठवें दशक के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, अमरकांत, काशीनाथ सिंह, असगर वजाहत, उदयप्रकाश आदि अनेक कहानीकारों के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से कई कहानियाँ मोहभंग की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में आम आदमी की नियति का चित्रण भी हुआ है। सामाजिक बदलाव का स्वर भी इन कहानियों में सुनाई पड़ता है। दलित चेतना की कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं।

### नाटक एवं एकांकी

प्रसादोत्तर युग में नाटक का विकास रंगमंच को केन्द्र में रख कर हुआ। लोकनाट्य एवं लोकमंच का भी भरपूर सहारा लिया गया। स्वातंत्र्योत्तर युग में लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, अशकजी, जगदीशचंद्र माथुर आदि ने नाटक एवं एकांकी दोनों की रचना की। अशकजी का 'अंजोदीदी' और माथुरजी का 'कोणार्क' बहुचर्चित नाटक रहे। गीतिनाट्य की दृष्टि से धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' तथा दुष्यंत का 'एक कंठ विषपायी' सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। नाटक के क्षेत्र में मोहनराकेश का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में दिशा-परिवर्तन का काम किया। आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे जैसे कालजयी नाटक उन्होंने लिखे। उनके बाद रंगमंच और नाट्य भाषा को लेकर कई प्रयोग हुए। लक्ष्मीनारायणलाल, सुरेन्द्र वर्मा, सर्वेश्वर, मुद्राराक्षस, भीष्म साहनी आदि अनेक नाटककारों ने नये-नये प्रयोग किए। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण' (सुरेन्द्र वर्मा), 'बकरी' (सर्वेश्वर), 'हानूश' (भीष्म साहनी) आदि महत्वपूर्ण नाटक हैं। बंगला एवं मराठी रंगमंच, एन. एस. डी., आइ. एन. टी. जैसी नाट्य-संस्थाओं ने नाटक और मंच के विकास को प्रोत्साहित किया। नाटक के साथ-साथ एकांकी का भी समानान्तर विकास हुआ। जगदीशचंद्र माथुर, अशक, सेठ गोविंददास, रामकुमार वर्मा के एकांकी चर्चा के केन्द्र में रहे।

**निबंध** को समृद्ध करने का कार्य शुक्लजी एवं हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने किया। द्विवेदीजी ने ललित निबंध लिखकर भाषा की सृजनात्मकता को नये आयाम दिए। विद्यानिवास मिश्र भी इसी परंपरा में आगे बढ़े और उन्होंने अनेक ललित निबंध लिखे। प्रकृति और संस्कृति का रसात्मक सामंजस्य द्विवेदीजी और मिश्रजी दोनों के निबंधों में हुआ है। अज्ञेय, जैनेन्द्र, रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी इस क्षेत्र में अच्छा योगदान किया। राहुल सांकृत्यायन, धर्मवीर भारती, कुबेरनाथ राय ने भी इस विधा को समृद्ध किया। हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के माध्यम से निबंध को एक नया कलेवर प्रदान करते हुए सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ से जोड़ दिया। उन्होंने व्यंग्य को स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार किया। इस तरह निबंध में विषय का दायरा बढ़ता गया और भाषा के नये-नये तेवर देखने को मिले।

**आलोचना** (समीक्षा) की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग में हजारीप्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र इस प्रवृत्ति में निरंतर सक्रिय रहे। वाजपेयीजी ने छायावाद की सकारात्मक समीक्षा की। इस युग में व्यक्तिवादी (सौंदर्यवादी या रूपवादी) आलोचना एवं प्रगतिशील आलोचना का साथ-साथ विकास हुआ। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही रूपवादी आलोचक हैं। प्रगतिशील (मार्क्सवादी) आलोचकों में रामविलास शर्मा का योगदान सबसे बड़ा है। उन्होंने भारतेन्दु, प्रेमचंद, निराला आदि की इसी नजरिए से विद्वतापूर्वक आलोचना की। डॉ. नामवरसिंह भी प्रगतिशील आलोचकों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने समकालीन साहित्य को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। छायावाद, कहानी :

नई कहानी, कविता के नये प्रतिमान, दूसरी परंपरा की खोज, इतिहास और आलोचना उनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। मुक्तिबोध ने 'कामायनी : एक पुनर्विचार' जैसा गंभीर आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा। शिवकुमार मिश्र, परमानंद श्रीवास्तव का भी विशिष्ट योगदान रहा। हिन्दी आलोचना में शैली विज्ञान और संरचनावाद का प्रभाव भी देखने को मिलता है।

उपर्युक्त गद्य विधाओं के साथ-साथ आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृत्तांत आदि विधाओं का भी स्वातंत्र्योत्तर युग में पर्याप्त विकास हुआ। बच्चनजी की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर', 'बसेरे से दूर' एवं 'प्रवास की डायरी' चार खण्डों में प्रकाशित हुईं। राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवनयात्रा', यशपाल की 'सिंहावलोक' जैसी आत्मकथाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। जीवनीयों के अंतर्गत अमृतराय की 'कलम का सिपाही', शरदचंद्र के जीवन पर आधारित विष्णुप्रभाकर की 'आवारा मसीहा' जैसी जीवनकथाएँ लिखी गईं। रामविलास शर्मा-रचित 'निराला की साहित्य साधना' तीन खंडों में लिखी गई उत्कृष्ट जीवनी है।

रेखाचित्र की विधा की प्रतिष्ठा का श्रेय महादेवीजी को जाता है। 'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएँ' उनके उत्तम रेखाचित्र संग्रह हैं। महादेवीजी ने मित्रों एवं महापुरुषों के जीवन से संबद्ध संस्मरण भी लिखे। इनके अलावा बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' रामवृक्ष बेनीपुरी आदि ने भी इस विधा में अच्छा काम किया। यात्रावृत्तांत लिखने वालों में राहुल सांकृत्यायन का प्रदान बहुत बड़ा है। उन्होंने अपने घुमक्कड़ जीवन के फल स्वरूप तिब्बत, चीन, यूरोप एवं रूस की यात्राओं से संबंधित कई ग्रंथ लिखे। अज्ञेयजी ने 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' में अपनी यात्राओं का कवित्वपूर्ण वर्णन किया है। इनके अलावा सेठ गोविंददास, बेनीपुरीजी, यशपाल, विष्णु प्रभाकर आदि ने देश-विदेश की यात्राओं का विविध शैलियों में वर्णन किया है। कथा, डायरी एवं पत्रशैली का प्रयोग भी हुआ।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास भी महत्त्वपूर्ण है। इसका आरंभ भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग से ही हो चुका था। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद हंस, प्रतीक, कल्पना, सारिका, धर्मयुग, दिनमान एवं नई कविता जैसी पत्रिकाओं ने युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित किया। वर्तमान समय में दस्तावेज, पहल, आलोचना, समकालीन साहित्य, वाक्, वाम जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ गंभीरतापूर्वक अपना दायित्व निभा रही हैं।

**उपसंहार :** हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने व्यापक फलक पर हिन्दी की उपभाषाओं और बोलियों का भी साहित्य है। खड़ी बोली तो पिछले सौ वर्ष से हिन्दी का पर्याय बनी है। यह साहित्य वास्तव में हमारा राष्ट्रीय साहित्य है। भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना गया है। आधुनिककाल में पद्य एवं गद्य दोनों में अनेक युग प्रवर्तक रचनाकारों ने महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखकर इस साहित्य को ऊँचाई पर पहुँचाया है। कथा एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से हिन्दी साहित्य भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग कहा जा सकता है।

